मन्त्रशक्ति एवं उपासना रहस्य

- लेखन एवं संपादन -

पंडित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर)

दीक्षानाम - अरुणानन्द

प्राप्तिस्थान - डिसी-५, प्लोट नं. १०८, आदीपुर-३७०२०५

ppp.sidhpur@gamil.com

।। तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

कोरे कागज के उपर जो अंकीत होता है, उससे ही कागज का मूल्य बनता है । यदि वेद या भागवत के मंत्र अंकीत होते तो, कागज शिरोधार्य बन जाता है, अन्यथा किसी किराना कि दुकान में पस्तीके रूपमें उपयुक्त होता है ।

मेरे विचारों में, व्यवहार में जो संस्कार एवं ज्ञान सिंचन हुआ है, वह केवल माता-पिता-गुरूजनो की कृपा मात्र ही है, यथा इस नवम पुस्तकपुष्प को इनके करकमलों में श्रद्धासुमन के रूप में समर्पित करता हुं ।

इस प्रयास को पुस्तक रूप में आप तक पहोंचाने के लिए अर्थ सहयोग गांधीधाम के श्रेष्ठी श्रीयुत् रामावतारजी गोयल एवं श्रीयुत् मधुसूदन भट्ट ने किया है, यथा उनका ऋण स्वीकार करता हुं ।

पुस्तक लेखन का विचार साउदी अरेबिया में तीन मास के निवास दरम्यान, दिनांक १८.१२.२०१७ में हुआ और प्रारम्भ दि. ३०.१२.२०१७ में हुआ, मेरे लेखनकार्य की सहभागिनी मेरी धर्मपत्नी पं. ज्योतिकादेवी का भी मैं धन्यवाद करता हूं ।

मंत्रशक्ति एवं उपासना रहस्य

- लेखन एवं सम्पादन -

पण्डित परन्तप प्रेमशंकर

दीक्षानाम – अरूणानन्द

प्राप्तिस्थान – डीसी-५, प्लोट नं.१०८, आदीपुर, ३७०२०५

ppp.sidhpur@gmail.com

श्री द्वारका

शारदापीठम्

प्रेषक : सचिव,
पू. पाद जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज

द्वारका - ३६१ ३३५ ❀ गुजरात ❀ भारत
दूरभाष : (०२८९२) २३४०६४, २३५१०९ फॅक्स : २३४४५७

संदर्भ :

दिनांक : 26-3-18
स्थान : द्वारका

स्वस्तिश्री **पं. परन्तप प्रेमशंकर** (सिद्धपुर)
डी.सी.5, आदिपुर, कच्छ-370205 (कच्छ)

पूज्यपाद द्विपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी महाराज का
मङ्गलात्मक शुभाशीर्वाद

आप द्वारा प्रेषित पत्र से ज्ञात हुआ कि आपने **मन्त्रशक्ति एवं उपासनारहस्य** नामक एक लघु ग्रन्थ तैयार किया है जो निकट भविष्य में प्रकाशित होने जा रहा है । वैदिक काल से ही भारतीय चिन्तन परम्परा में मन्त्र एवं उपासना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अनेक ऋषियों ने मन्त्र शक्ति एवं उपासना के बल पर अनेक युद्धों में विजय भी प्राप्त किया है।

वर्तमान सन्दर्भों में उसे पुनः प्रमाणित करने तथा संसार में प्रचारित, प्रसारित करने की आवश्यकता है । इसके द्वारा न केवल भारतीयता की रक्षा होगी प्रत्युत् आर्ष परम्परा का महत्त्व भी बढ़ेगा और भारतवर्ष पुनः जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो सकेगा, हमें ऐसी आशा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार में सफलता प्राप्त हो, एतदर्थ हम भगवान् चन्द्रमौलीश्वर और भगवान् द्वारकाधीश जी से प्रार्थना करते हुये पूज्य द्विपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी महाराज की ओर से शुभाशीर्वाद प्रेषित करते हैं ।

(स्वामी सदानन्द सरस्वती)
श्रीशारदापीठ, द्वारका

|| श्रीविद्या पातु मां सदा ||

श्रीजगद्गुरु बदरी शङ्कराचार्य संस्थानम्

श्रीविद्यापीठम्-श्रीक्षेत्र शकटपुरम् .

स्वस्ति ! श्रीमदखिलजगद्विद्योतमानहृद्यानवाद्यविद्याद्युतिखद्योतिकृतभेदविद्यानां; प्रणवमनुस्मरमार्हणा प्रमयप्रीणितस्मरहरण-भवतरण-नतशरणजितकरण-शर्वाणीरमण-रमणीयचरणश्रीपर्णानां, सर्वसर्वसंसहासञ्चरण देवपरिचरण-विद्याचरण-स्तवकरण-भक्तचिद्धरण-समेधितसदाधारसनातनधर्मधाम्नां, पाषण्डम्तषण्ड खण्डनोद्दण्डप्रकाण्डपाण्डितीसम्मण्डिताशामण्डलानां; आर्यवर्यपाराशर्यवचः कार्यभाष्यसपर्यापर्यायमोदितार्यधुर्याणां, अभिरूपवल्लभसभासम्भायक सम्भासम्भावितकलासम्भृताम्भो भवभूभामिनीभ्रूभङ्गाभिमानसम्भेदकानां, विगतनीति वसुमतीपतिसुनीतिबोधनाधीनीकृतयशोधनानां, निखिलविपुलातलसञ्चलन सञ्चालितदाशबलकोलाहलबलावलेप विदलनविलासकलित वेदान्तमतमतल्लिकासमुल्लासितोपलब्धिमल्लेखानां, महामोह ग्राहनिर्हरणहरिप्रहरणायमानानां, दनीध्वस्तसमस्तनास्तिकस्तोमविस्तृतवाग्विस्तराणां, श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्चवर्य सच्चर्यभगवदाचार्य जगद्गुरूश्रीशंकरभगवत्पूज्यपादानां, सच्छिष्यवर्य श्रीमज्जगद्गुरूतरामानायज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीमदाचार्य जगद्गुरूश्रीशंकरपूज्यपादानां, सच्छिष्यवर्य श्रीज्जगद्गुरूतराम्नायज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीमदाचार्य श्रीतोटककभगवत्पादप्रवर्तित श्रीमद्वेदान्तसद्गुरूपरम्पराविभ्राजनयोगीराज श्रीश्रीसत्यतीर्थमहामुनीन्द्र सत्सम्पदाय विलसितततुङ्गभद्रातीरनिवास श्रीशकटपादाख्यमहर्षिपरिपाविताश्रमश्रीक्षेत्रशकटपुरवराधीश्वर श्रीसद्गुरूदत्तात्रेय श्रीचन्द्रमौलीश्वर-श्रीविद्याविश्वेश्वर-श्रीविद्याम्बिकाश्रीमद्राजरारजेश्वरीदेव्यम्बा-श्रीसन्तानवेणुगोपालकृष्ण दिव्यपादपद्माराधक श्रीविद्यापीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरू श्रीश्रीरामचन्द्रानन्दतीर्थमहास्वामिगुरूकरकमलानुग्रहसञ्जात...

जगद्गुरुश्रीविद्याभिनवश्रीकृष्णानन्दतीर्थस्वामिभिः

अस्मदन्तेवसतां **परन्तप प्रेमशङ्कर पण्डित** इत्येषां विषये
श्रीदेवताराधनसमयो कालत्रयविरचिताः शुभंयुतरा आशीःपरम्पराःसमुल्लसन्तुतराम् ।।

मन्त्रशक्ति एवं उपासनरहस्य नामकः कश्चन मन्त्रशास्त्रीयग्रन्थः भवद्भिः हिन्दीभाषायां व्यरति इति विज्ञाय महान् संतोष समजनि । मननात्त्रायततेति मन्त्र इति व्युत्पत्तिमनुसृत्य मननात् नाम निरन्तरानुचिन्तनाद्यः साधकजनान्त्रायते नाम संसारदुःखोद्भवबन्धनाच्च संरक्षति स एव मन्त्र इति कथ्यते । ब्रह्मणो मुखाद्विनिर्यातत्वात् प्रणवो नाम ॐकार एव महामन्त्र इति परिगण्यते । अयं प्रणवः परब्रह्मणः वाचको भवति । प्रणवानुसन्धानमेव जप इत्युच्यते । अत एव योगसूत्रेषु तस्य वाचकः प्रणवः **तज्जपस्तदर्थभावनम्** इति निगद्यते । तुरियाश्रमिण एव प्रणवचपानुष्टानं विधातुं प्रभवन्ति । अन्येषां साधकानामुपकाराय नैकेवैदिकाः पौराणिकास्तान्त्रकाश्च मन्त्राः परमकारुणिकैः ऋषिमुनिभिर्निरूपिताः सन्ति । श्रीमज्जगद्गुरू श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यवर्यैविरचिते प्रपञ्चसारनामके ग्रन्थे एतेषां समेषां मन्त्राणां समावेशः सन्दृश्यते ।

एतदतिरिच्य **अमन्त्रमक्षरं नास्ति** इति वचनानुसारं वर्णमालायां विद्यमानाः सर्वेऽपि वर्णाः मन्त्रा एव भवन्ति। अक्षराणां संयोजनेन निष्पन्नाः विशिष्चफलप्रदाः विविधाः मन्त्राः मन्त्रमहोदधि-मन्त्रमहार्णव-शारदातिलक-मेरूतन्त्र-शाक्तप्रमोदादिमन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थेषु वैपुल्येन समुपलभभ्यन्ते । एवमेव योगिनीहृदय-तन्त्रमन्त्र-कामधेनुतन्त्र-वामकेश्वरतन्त्र-रूद्रयामलादितन्त्रग्रन्थेषु मन्त्रजपहोमार्चनतर्पणमार्जनादिनि विविधानि उपासनाविधानानि सविस्तरं निरूपितानि सन्ति । एतेषां समेषां ग्रन्थानां समालोडनेन तत्रत्यान् विषयान् संग्रह्य ग्रन्थोऽयं संग्रथितः इत्यवगत्य नितान्तं सन्तुष्यत्यस्मदन्तरङ्गम् । ग्रन्थेऽस्मिन् मन्त्रोत्पत्तिप्रकारः मन्त्रदेवतास्वरूपन्यासमुद्रार्चनादयः मन्त्रोपासनोपकारकाः बहवो विषयाः समाविष्ठाः सन्ति । ग्रन्थरचनाकर्मणि विहितः भवदीयः परिश्रमो भूरिप्रशंसनीय इत्यत्र न काऽपि संशीतिः । भवदीय लेखनकौशल्यं इतोऽपि संवर्धतामित्यशास्महे । श्रीमठीयोपास्यदवतायाः श्रीविद्याम्बिकाश्रीमातुः श्रीराजराजेश्वर्यम्बायाः कृपापाङ्गतराङ्गितेन तथा श्रीमदाद्यजगद्गुरुशङ्करभगवत्पादाचार्यवर्याणां निरवग्रहानुग्रहेण भवदीयायुराराग्यभाग्यवृद्धिरभूयोदिति संप्रार्थ्य श्रीविद्याकुङ्कुमाभतप्राद इतः प्रहीयते ।

श्रीविलम्बसंवत्सरीयवैशाख पूर्णिमायां
भानुवासरे २९-०४-२०१८, श्रीक्षेत्र शकटपुरे.

इति श्रीनारायणस्मृतिः

કરૂણામણિ મંગલા સેવા ટ્રસ્ટ
સંચાલિત
બ્રહ્મર્ષિ સંસ્કાર ધામ

રજી.નં. ઈ.-૪૨૫૭ ખેડા. તા. ૯-૮-૯૧

ડાહ્યાભાઇ કે. શાસ્ત્રી
(વ્યાકરણ સાહિત્યચાર્ય)
મેનેજીંગ ટ્રસ્ટી

तारीख : २५-०५-२०२५

मन्त्रशक्ति एवं उपासना रहस्य ग्रंथ की प्रुफकोपी श्री परन्तप प्रेमशंकर पंडित (सिद्धपुर) से प्राप्त हुई । ग्रंथ पर विहंगावलोकन करने से ज्ञात हुआ कि उक्त लेख विद्वत्तापूर्ण है, जिसमें ब्राह्मणग्रंथ, पुराण, तंत्रागमों के साथ योग, व्याकरणादि अनेक प्रमाण ग्रंथोका अर्वाचीन विचारधारा के साथ समन्वय किया है । लेख, में अनेक शास्त्र प्रमाणो के साथ उपासकों को उपयुक्त माहिती प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है ।

वेदों के विषय से लेकर नादशक्ति, वर्णों का प्रादुर्भाव, शब्दब्रह्म, मंत्रो की रचना, वर्णों के देवता, च्छन्द, ऋषि, कवच, ध्यानादि का शास्त्रोक्त सहित, माला, माला के प्रकार का विवेचन मिलता है । प्रत्येक वर्ण मन्त्र है और वर्णो का योग, ज्यातिष, कर्मकाण्ड के साथ महत्वपूर्ण चर्चा उपलब्ध कराई है। इस के अतिरिक्त गुरू, गुरू के प्रकार, दीक्षा महत्व, दीक्षा के प्रकार पर चर्चा की है । प्रथम विभाग में मन्त्रविषय पर विचार है ।

द्वितीय विभाग में उपासना का महत्त्व, उपासन में आनेवाले अवरोध, उनका उपाय, उपासना के विविध अंगो पर सविस्तर चर्चा की है, जो पूर्ण शास्त्राधारित होने के उपरान्त, अर्वाचीन विचारको का भी आकर्षण करे ऐसी है । ग्रंथ से अनुकरणशील मनीषावालों को नया दिग्दर्शन मिलता है ।

श्री पंडितजी के परिश्रम को, मंत्रशास्त्र की उपासना कह सकते है । भगवान नारायण उनको अच्छा लेखन सामर्थ्य दे और वे अविरत शास्त्रसेवा करें ऐसी अभ्यर्थना करते है ।

કરૂણામણિ મંગલા સેવા ટ્રસ્ટ, નડીઆદ
[signature]
મેનેજીંગ ટ્રસ્ટી

કરૂણામણિ મંગલા સેવા ટ્રસ્ટ
બ્રહ્મર્ષિ સંસ્કાર ધામ, ડાકોર રોડ,
નડીઆદ - ૩૮૭ ૦૦૧. જી. ખેડા. (ગુજરાત)
☎ : ૦૨૬૮ - ૨૫૫૬૭૬૦, ૨૫૬૧૪૦૧, ૨૫૫૬૭૫૯

दो शब्द.....

दैवाधीनं जगत्सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ।। यथाप्रेरितमेतेन तथैव कुरुतें द्विज ।। ना.पु.४१-७ ।।

संपूर्ण जगत् दैवाधीन है - देवता - देवगण मन्त्रों के अधीन है । **अभेदोमन्त्रदेवयोः** - शाक्तानंद तरंगिणी ।। **मन्त्रोच्चारणमात्रेण देवरूपंप्रजायते** - बृहद्गंधर्वतंत्र ।। मंत्र ही देवता का अभेद स्वरूप है । मन्त्रों का अध्ययन, अधायपनादि की परम्परा का वहन ब्राह्मण करते है, मन्त्रो को यदि यथार्थरूप में न समझा जाए तो, वे पशुभाव मे होते है **पशुभावे स्थिता मन्त्रा**, मन्त्रो का यथेष्ट फल नहीं मिलता, हानी भी हो सकती है, इसमें चेतना एवं शक्ति का सञ्चार यथेच्छोच्चारण से ही होता है । यथा आगे कहा है कि **तस्माद्ब्राह्मण देवता** इसलिए ब्राह्मणों को भी देव समान माने गए, जो मन्त्रों को यथार्थरूप में जानते है ।

प्रायः देखा गया है कि, जो ब्राह्मण बडे बडे सम्राटों के लिए, देवताओं के लिए वंदनीय था, आज वह अपनी अस्मिता - गौरव - गरिमा खो चूका है । मात्र इतना ही नहीं, वह उपेक्षापात्र बनता जा रहा है, तब सदुःख आत्मावलोकन करने की आवश्यकता हुई है ।

मेरा व्यक्तिगत अवलोकन यह है कि, ब्राह्मण मन्त्रों की शक्ति खो चूका है, उनकी पठन-पाठन की प्रक्रिया का लोप हो चूका है, यथा जो ब्राह्मणों की शक्ति एवं सामर्थ्य मन्त्रो के कारण था, और जो समग्र ब्रह्माण्ड के लिए शिरोमान्य था, वह सन्मान अब क्षीण हो चूका है । अयुक्त मन्त्रोच्चारण से सर्वथा हानी हो सकती है । मन्त्र की महाशक्ति को ध्यान में रखकर, उसे गुरूगम्य बताया और दिक्षोपरान्त ही उसका उपयोग की बात कहकर, गुरूपसदन की प्रधानावश्यकता बताई है ।

आज, मन्त्र कैसेट में बनते है, गाए जाते है, शिखे जाते हैं । उसमें स्वर एवं मात्रा का कहीं भी मेल नहीं होता, मात्र संगीत प्रधान हो जाता हैं । संगीत अवश्य एक उत्तम विद्या है, यद्यपि उसका उपयोग विवेक से किया जाना चाहिए । संगीत की उत्पत्ति भी वेद से मानी गई है । वैसे तो छास (तक्र) की उत्पत्ति दुध से होती है, छास भी आरोग्यवर्धक है, दुध भी आरोग्यवर्धक है, तथापि दुध का छास के साथ सेवन आयुर्वेद के मतसे हानीप्रद होता है । दुध अपने स्थानपर महत्व रखता है, छास अपने स्थानपर । इसी प्रकार संगीतमय गायत्रीमन्त्र, महामृत्युञ्जय मन्त्र, गणपति महामन्त्रादि की कैसेट का उपयोग यथेच्छ नहीं है - यहां वेदमंत्र गौण एवं संगीत प्रधान बन जाता है ।

मंत्रो के उच्चारण को लेकर ऋषियों ने अथक यत्न किए है । **मन्त्रहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो स्वरतोवर्णतो न तमर्थमाह । सवाग्वज्रोयजमानं हिनस्ति तथेन्द्रशत्रुःस्वरतोऽपराधात् ॥** पा.शि.५२ । इन्द्र के पराभव के लिए वृत्त ने यज्ञ किया, किन्तु, मिथ्योच्चारण के प्रभाव से अर्थ हानी हुए - स्वयं का पराभव हुआ । वेद-तंत्रादि के मन्त्रो का परम्परागत उच्चारण अनिवार्यता है । वेद या तन्त्र के मन्त्र मात्र गद्यपद्य या संस्कृत के अक्षर ही नहीं है, वे अनन्त शक्ति का स्रोत है । स्वर, मात्रा, लय को ध्यानमें रखकर वेद के मन्त्रों के पठन मे उदात्तानुदात्तस्वरित की मात्रा नियत होती है और इसके लिए शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्य, कात्यायान प्रतिज्ञासूत्र, प्रवरसूत्र, लघुमाध्यन्दिनी, केशवीय पद्यात्मिका शिक्षा इत्यादि ग्रंथो की रचना हुई है (इस ग्रंथ के अन्त में परिशिष्ट में इसका उल्लेख मिलेगा) ।

शब्द-नाद ब्रह्म है । **त्वं चत्वारि वाक्पदानि** वाणी के वैखरीरूप में प्राकट्य पर्यन्त, चार अवस्था होती है - परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी । परा वाक् का मूल रूप है, जिसमें अर्थ एवं शक्ति रूपमें भगवान् शिव-शक्ति सहित स्थित है । जिस प्रकार बादलमें घन-ऋण विजभार होता है, जिसमें प्रकाश एवं ध्वनि की शक्ति होती है अपितु दिखती नहीं है वह पराशक्ति है । बादलों के टकराव पर बिजली होती है और प्रकाश दिखता है वह पश्यन्ती है, कुछ समयोपरान्त ध्वनि सुनाई पडता है वह वैखरी है । ध्वनि एवं प्रकाश के मध्य की जो स्थिति है वह मध्यमा है । मन्त्रोमें अनन्त शक्ति है, यदि इसे सुनियन्त्रित करे तो । इसकी विस्तृत चर्चा वाक्यपदीय, कामधेनुतंत्र, वर्णोद्धारतन्त्र, शारदातिलकादि में है ।

स्वयं भगवान वेद नारायण ने भी यह संकेत देते हुए कहा है कि, **बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतिरिष्यति** महा.१.१.२७३ - मानव मेरे अर्थ एवं शक्ति को अघटित उपयोग एवं अर्थ करेगा, और इस पर दूरदृष्टि रखते हुए, हमारे महामनिषीयोंने, ऋषियोने मन्त्रोच्चारण विज्ञान का निर्माण किया । पूर्वकाल में वैदिक मन्त्रो को पर्याप्त समझाने के लिए मंत्र को **जटामालादण्डरेखा, रथध्वजशिखाघनाः । क्रममाश्रित्य निर्वृत्रा विकाराऽष्टविश्रुताः ॥** जटा-माला-दण्ड-रेखा, रथ,ध्वज,शिखा,घन ऐसे आठ प्रकार से वेद पठन की परिपाटी बताई । इसके उपरान्त अनेक तंत्रागमो सहित, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, म.म.मञ्जरि, वर्णोच्चारण शिक्षा जैसे महाग्रंथों का निर्माण हुआ ।

दुर्गा पाठ एवं रूद्राष्टाध्यायी के साथ, थोडे पूजन के मन्त्र शिखनेपर, आज विप्र आचार्य बनकर यज्ञ कराते हैं, ढोलक, हारमोनियम, वाजिंत्र लेकर संगीतमय यज्ञ का प्रादुर्भाव हो चूका हैं । पता नहीं चलता कि यज्ञ कराने जा रहे है या नाटक । यह यजमान को तो हानी करता ही है, स्वयं का भी विनाश होता है, यथा ब्राह्मण आज निस्तेज एवं गौरवहीन

होता जा रहा है । मन्त्र-विधियों का स्थान संगीत एवं भजन ने ले लिया है । स्वयं वशिष्टजी ने कहा है **विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता प्रणश्यति । कर्मश्रद्धाविहीना ये पाषंडा वेदनिंदकाः ।। अधर्मनिरता नैव नरकार्हा हरिस्मृतेः ।। वेदमार्गबहिष्टानां जनानां पापकर्मणाम् ।।** ना.पु. ४१-५.६ ।। इसी परम्परा को, हम पाखण्ड (पापस्य खण्डाः) कह सकते है । ब्राह्मणों का परम कर्तव्य है कि शक्तितः सर्वकर्माणि वेदोक्तानि विधाय च ।। समर्पयेन्महाविष्णौ नारायणपरायणः ।। ना.पु.४१-८ ।। विधियुक्त कर्मकाण्ड करें । गीता मे भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है - **तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।१६.२४।।** विधिप्राधान्य होना चाहिए ।

इन सभी बातों पर विचार करके, मैने, मति एवं सामर्थ्यानुसार, इस ग्रंथ का प्रारम्भ किया है । विश्वास है कि, विद्वज्जन मेरे इस प्रयत्न का अवश्य प्रतिसाद देंगे । पुस्तक के निर्माण को विद्वज्जनों को ध्यान में रखकर ही किया है ।

पुस्तक द्वारा विद्वानों की सेवा करनेका मेरा उद्देश्य है, अपितु, अर्थव्यय भी एक मर्यादा थी, इसका मूल्य नहीं रखा है, यथा प्रतें भी मर्यादित छपी है । कहींपर, कुछ आवश्यक विषयपर संक्षिप्त विवरण करनेका समाधान भी करना पडा है । इन सब बातों को ध्यान मे रखते हुए, पूरे ग्रंथ का टाईपींग कार्य, मैने स्वतः किया है, एवं इसका प्रुफरिडींग भी, मेरी धर्मपत्नी श्रीमति ज्योतिकाबेन पण्डित ने किया है । ह्रस्व-दीर्घ, व्याकरण की क्षतियां होना पूर्णतः सम्भवित है, यथा इसके लिए मै क्षमायाचना करता हुं । जिस महानुभावोंने मेरे इस प्रयत्न को प्रोत्साहित किया है, उन सबका मैं ऋण स्वीकार करता हुं ।

इस पुस्तक का मूल्य एवं साफल्य इसमें है कि, यह विद्वज्जन के करकमलों मे, अनुग्रहीत रहे और यह मेरे लिए प्रेरणास्रोत बनें ।

।। ॐ शं भवतु ।।

विद्वज्जनचरणानुरागी... पण्डित परन्तप प्रेमशंकर (सिद्धपुर), डी.सी.५, प्लोट नं. १०८, आदिपुर - ३७०२०५, कच्छ ।

इसी ग्रंथसे.........

दर्शनशास्त्र कहता है कि, **येन यद्दृश्यतेतत्तु तेनतत्सृज्यतेजगत् । दृष्टस्यभ्रान्ति रूपस्त्वात्दर्शनं सृष्टिरूच्यते** । हमें जो भी दिखता है, वह हमारी स्थिति का परिणाम मात्र हैं । एक बडी अर्धनारीश्वर की मूर्ति को कुछ लोग वाम भाग से देखते है, उनको मूर्ति में माताजी दिखते है, जो दक्षिण भाग से देखते है, उसे उसमें शिवजी लगते है, किसीको पीठ दिखती है, किसीको मुखारविन्द दिखता है तो, किसीको चरणकमल, यह दृष्टा की स्वयं की स्थिति का ही परिणाम है । परमात्मा के पूर्ण दर्शन के लिए तो मूर्ति की चारों तरफ परिक्रमा करनी पडेगी । वैसे ही शास्त्रकारों ने परमात्मदर्शन के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण - अभिगम बताए, जो शास्त्र बन गए । ऋचिनां वैचित्र्यात् - इस वसुन्धरा पर अनेक विचारधारावाले लोग है, उनके प्रश्न एवं विचारशैली भी भिन्न-भिन्न है, सबका समाधान करने हेतु, अनेक विचारधाराओं का निर्माण हुआ है.......

व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वान वस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाह - यो.द.स.पा.३०। समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात्। अपरोक्षानुभूति १२७। वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् । वि मे मनश्चरति दूर आधीःकिं स्विद्वक्ष्यामि किमु नु मनिष्ये - ऋग्.६.९.६। उपासना में विघ्न आएंगे ही । हम प्रातः कालमें चलना प्रारम्भ करते है, तब गली के कुत्ते भोंकते हुए पीछे भागते है, लेकिन उनकी एक सीमा है, उससे आगे नहीं आते । इसके उपरान्त भी यदि प्रयास नहीं छोडेंगे, तो एक समय ऐसा आएगा, कुत्ते आपके पीछे भौंकना या भागना बन्द कर देंगे, आपकी निष्ठा के आगे विघ्न परास्त हो जाएंगे और विषय रूपी श्वान, जो आपकी साधना में अवरोधक बनते है, वे आपको अवरोध करना बन्द कर देंगे । ट्रेडमील पर चलने के व्यायाम का सीधा लाभ यह है कि, आपके शरीर की चरबी कम हो जाती है, किडनी, न्यूरो सिस्टम्स, रूधिराभिसरण ठीक होता है, स्फूर्ति लगती है, वैसे ही मन का व्यायाम तप-उपासना है, मन के विकार-दोष, अहंकार स्वरूप चरबी जल जाती है, मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है । कभी कभी ऐसा लगने लगता है कि, उपासना का फल नहीं मिल रहा है, किन्तु आप श्रद्धा रक्खे, चलने पर गन्तव्य के समीप पहोंचते ही है, चाहे मन से चले या केवल श्रमसे, मार्ग कटता तो ही है और गंतव्य समीप आ ही जाता है......

हमने तो पूरे ब्रह्माण्ड को एक परिवार माना है - **वसुधैव कुटुम्बकम्** और इसलिए तो कहते है सूरजदादा, धरतीमाता, चांदामामा इत्यादि । कोई मानव भारत में हो या अमरिका में, चीन में या श्रीलंकामें, आफ्रिका में हो या ओस्ट्रेलिया में, सब को दो आंखे, दो हाथ इत्यादि समान अंग होते है, सबका पचनतंत्र, श्वसनतंत्र, उत्सर्जनतंत्र, रूधिराभसरण एवं यकृत एक जैसे ही काम करता है । पक्षी - वृक्ष का सामान्य स्वरूप एक जैसा ही है । कौए क्राउ-क्राउ करते है व काले होते है, गाय दूध देती है, वृक्षों के पांव नही होते, भेंस भारत में होया आफ्रिका में दो शिंग ही होते है। जीव

मात्र में एक जैसी क्षुधा-तृषा-काम-भय-निद्रा की ऊर्मियां होती है, जो धर्म - संप्रदाय - जाति निरपेक्ष होती है । सूर्य - चन्द्र - वर्षा - ऋतुए भी कभी नाम, देश, जाति पूछकर अपनी शक्ति प्रभावित नहीं करते । यथा इस समस्त ब्रह्माण्ड का रचनाकार एक ही है, हम किसी धर्म के भगवान का नाम नहीं देते, हम कहेंगे अनन्तकोटी ब्रह्माण्डों का सर्जनहार ....

शक्तिपातानुसारेण शिष्योनुग्रहमर्हति योग्यताके आधारपर ही इस परमतत्वका बोध होता है । **अनुग्रह प्रकारस्यक्रमोयमविवक्षतः शि.पु.वा.सं.३.४।** सामान्यतः देखे तो, प्राथमिक कक्षा में अक्षरज्ञान करानेवाले शिक्षक पीटीसी होते हैं - पीएचडी नहीं, माध्यमिक कक्षा में स्नातक या बी.एड होते हैं - उच्चतर में प्रायः मास्टर डिग्री, स्नातककोत्तर में पीएचडी, ऐसे ही क्रमशः गुरू की कक्षा भी स्वयं की योग्यता-दक्षता पर अवलंबित है .... यथा गुरूप्राप्ति के लिए भी व्रत-तप करना पडता है ...

ब्राह्ममूहुर्त में स्नान विषये - आजकल प्रायः देखा है कि, बडे शहरों में दिन के समय में वाहनव्यवहार की व्यस्तताको ध्यानमें रखते हुए, रात्री के समय सफाई कार्य होता है । प्रातः काल गार्बेजवान आकर, एकत्रित किया हुआ कूडा उठा ले जाती हैं । यह एकत्रित किए हुए कूडे में बैठकर कोई चाय - पानी - नास्ता नहीं करता । ठीक परमात्माने हमारे शरीर में भी ऐसी ही व्यवस्था की है । दिवस दरम्यान इन्द्रिय व्यापार एवं ऐहिक प्रवृत्तिया इतनी होती हैं कि, शरीर के आन्तरिक मलों की निवृत्ति नहीं हो सकती । यथा रात्री के सुषुप्तिकाल में, जब सभी इन्द्रिया अपने कार्यकलाप को त्यागकर विश्राम करती है, तब हमारा उत्सर्जनतंत्र मलोपहार का कार्य प्रारम्भ कर देता है ...स्नान से पूर्व ही नास्ता करने या सूर्योदय के बाद जगनेवाले को कैसे शिक्षित मान सकते है .... विज्ञान भी कहता है, की शरीर के जहर-मल (टोक्षीन) को बहार नीकालकर ही खाना चाहिए...

न गच्छति विनापानं व्याधिरौषधशब्दतः केवल औषधि के ज्ञान से व्याधिशमन नहीं होता । उसका सेवन भी करना पडता है । यथा केवल शास्त्रो का ज्ञान ही नहीं अपितु, उपासना, व्रत, तपादि से ही ध्येय सिध्धि हो सकती है । टक्नीशियन की शिक्षा के बाद प्राप्त ज्ञान को, अनुभूति के स्तर पर तो लाना ही पडेगा ...

व्याधि में यदि वैद्य, औषध की जो मात्रा देते है, उसे पर्याप्त रूप में लेना ही पडता हैं, वैद्य के बताए पथ्यापथ्य का भी अनुसरण करना पडता है, अन्यथा व्याधि नहीं जाएगी...

Dr. Manisha Gajre

M.A., M.Phil, Ph.D.(Philosophy), L.L.M, Ph.D. (Law),
Professor – Tolani Institute of Law, Adipur (Kutch)
A4, Shaktinagar, Gandhidham (Kutch)

Ref. *Dt. 26.05.208*

I have gone through the book Mantra Shakti And Upasana Rahasya. The Book is in two part (1) About Mantra Shakti, in which huge details regarding Mantra Shastra like incarnation of Nada, formation of Varna, Mantra etc., is described, using lot of quotes from Vedopnishad, Puran, Tantra, Yoga, Agama literature. Part (2) consists of various part and methods of Upasana. It seems, Shri Parantap Panditji has done lot of study prior to write this book.

In Vedic sage, the horizons of culture was expanded to unreachable boundaries. But, gradually, the ignorance of Sanskrit, such great knowledge is forgotten and gap between rituals and spiritual developed. I feel the book will be the bridge between Modern Science and Ancient Vedic Science.
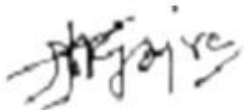
The way topics explored with examples, stories and analogies, I am sure, the book will attract, modern philosophers who don't have good knowledge of Sanskrit.

अदृढं च हतं ज्ञानं, प्रमादेन हतं श्रुतम् । स्निग्धो वो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः।।
As per Shri Mad. Bhagwat, confidenceless and meaningless knowledge of Mantra is harmful or is of no use. Also, आर्ष धर्मोपदेश च वेदशास्त्र अविरोधिना, यस्त्र्केणानुसंधते सः धर्म वेद नेतरः Manu Smruti says all Mantra, Upasana gives benefits, only if they are chanted or performed as per Shastras.

Most important thing, I observed is, the title page of this book (Mukhprushta). After reading entire book, one can recollect so many things by Darshan of this book.

Hope, the book will be useful to all Upasakas, Pandits and Philosophers also. It contains lot of Shastra Pramans also.

(Dr. Manishha Gajre)

।। श्री विद्या पातु मां सदा ।।

सिद्धपुर के भगवत्युपासक श्री परन्तप प्रेमशंकर पण्डितजी विरचित **मन्त्रशक्ति एवं उपासना रहस्य** नाम्नि पुस्तक (प्रुफ कोपी) प्राप्त हुई । ग्रन्थ में मन्त्रसास्त्र के विषय में बहुत जानकारी मिलती है, जो साधकों के लिए अत्यन्तोपकारक सिद्ध होगा, इसमे संदेह नहीं ।

मन्त्रशास्त्र अतिगहन विषय है, एवं इसकी सर्वोपकारक शास्त्र में परिगणना की गयी है - **अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं, प्राप्तेषु वा तेषु न तैश्च किञ्चित् । चिकित्सित ज्योतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रयत्ययमावहन्ति** । अर्थात् अन्य शास्त्र की अपेक्षा आयुर्वेद, ज्योतिष एवं मन्त्रशास्त्र सर्वजनहितार्थ है । ये शास्त्र अपने अस्तित्व का प्रत्यय पग-पग पर दिया करते है ।

इस ग्रन्थ में पण्डितजी ने इस सर्वोपयोगी मन्त्रशास्त्र का विश्लेषण वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किया है । शब्दों से ही मंत्र बनते है, शब्दों में अपरिमित शक्ति निहित होती है । शाब्दशक्ति से ही इस ब्रह्माण्ड का प्रादुर्भाव हुआ है, जो अर्वाचीन विज्ञान भी मानता हैं, श्री पण्डितजी ने, उसमें ऐसे कई प्रमाण देकर सादोहरण समझानेकी चेष्टा की है ।

मन्त्रो में ही अनन्तशक्ति का आविर्भाव होता है । शब्द दो प्रकार के होते है, एक ध्वन्यात्मक, दूसरा वर्णात्मक । **सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाःप्रिये । शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञेया शिवात्मिका –** कामधेनुतंत्र । इत्यानुसारेण वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण मन्त्र है, ये सभी मन्त्रवर्ण देवता वाचक है । मन्त्र एवं देवता में द्वैत नहीं है - वे अभेद है ।

मन्त्र पुरश्चरण की परंपरा पूरे भारतवर्ष में प्राचीनकाल से प्रचलित है । मन्त्रशास्त्र एक विज्ञान है, यथा उनकी तथा उनके उपयोग की पूरी जानकारी होने से ही लाभ हो सकता है, उपसना प्रणाली ऋषि-देवता-च्छन्दादि एवं उपसना की विधि का भी इस ग्रंथ के विभाग दो में, सविस्तर निरूपण किया है । इसके उपरान्त मन्त्रों की जाति, प्रकार, न्यासादि की भी सप्रमाण प्रस्तुति की है, जो साधकों को उपसाना ऐवं सुप्तशक्तियों को जागृत करने में सहायक रहेगी । मन्त्रानुष्ठान के पूर्व दीक्षा - दीक्षाप्रकार, गुरू - गुरूके प्रकार, गुरूपसदनादि के विषयपर भी अति व्यवहारिक एवं सुन्दर दृष्टान्तों के साथ वर्णन मिलता है ।

समग्र ग्रन्थ में प्रचुर संख्यामें प्रणाण, सहजोदाहरण, पौराणिक कथानकों के साथ वेदोपनिषद, पुराण, तंत्रागमों के रहस्यों को समझाने का सुन्दर प्रयास दृष्टिगोचर हो रहा है । यह ग्रंथ उपासको को अवश्य लाभान्वित होगा ऐसा मुझे विश्वास है ।

सांस्कृत्युत्थानार्थ श्री पण्डितजी ऐसे ओर ग्रंथो का, उन की सरल शैली में रचना करें, ऐसी अभ्यर्थना करता हूं । मा पराम्बा इनके समस्त पुरूषार्थों को सिद्ध करे, ऐसी प्रार्थना के साथ मेरी लिखनी को विराम देता हुं ।

विद्वद्विभूषण – श्री मधुसूदन शास्त्री,

धारवाड - कर्णाटक

विषयानुक्रमणिका.....	**पृष्ट सं.**

- सत्यनारायण कथा - शंका समाधान (पृष्ठ सं. २१० अंदाजित) प्रकाशनार्थ अर्थसहयोग अपेक्षित है।

विभाग १

मन्त्रशक्ति

प.पू. श्री रंगावधूत महाराज श्री नारेश्वर, गुजरात

मन्यते ज्ञायते आत्मादि येन, मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन, मन्यते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः देवताः, प्रयोग समवेतार्थस्मारकाः मंत्राः, साधकसाधनसाध्य विवेकः मंत्रः, मंत्रो हि गुप्त विज्ञानः,मंत्राः ज्ञेया शिवात्मिकाः।।

अर्थात् जिससे आत्मा और परमात्मा साक्षात्कार हो, अंतरात्मा की आवाज पर विचार किया जाए, जिसके द्वारा परमपद में स्थित देवता का सत्कार पूजन-हवन आदि किया जाए, द्रव्य एवं देवता आदि के स्मारक और अर्थ के प्रकाशक, साधना में साधक, साधन एवं साध्य का विवेक, मंत्र गुप्त विज्ञान है और शिव का स्वरूप है।

गुरूंगणपतिंदुर्गांबटुकं शिवमच्युतम्। ब्रह्माणं गिरिजांलक्ष्मीं वाणीं वन्देविभूतये।।

प्ररोचना - मन्त्रशास्त्र अति गहन विषय हैं । **मंत्रार्थंदेवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदोमन्त्रदेवयोः** - शाक्तानंद तरंगिणी ।। मन्त्र स्वयं ही परमात्माका स्वरूप है । **शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि बीजानांदेवरूपताम् । मन्त्रोच्चारणमात्रेण देवरूपंप्रजायते** - बृहद्भूंधर्वतंत्र ।। प्रत्येक वर्ण मन्त्र है, परमात्म स्वरूप है, ब्रह्मरूप है, सब कुछ उसमें है । परमात्मा तो अनादि अनंत है, **हरिअनंत हरिकथा अनंता** इस अखण्डानन्त परमात्मा के पूर्णरूपका आलेखन करना किसीके सामर्थ्य की बात नहीं है । किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि इसका वर्णन त्याग दे, उनकी स्तुति न करें ।

परमात्मा की पूर्णता तब ही सिद्ध हो सकती है, जब हम उस पूर्ण का कोई छोटासा हिस्सा हो, हम भी उस विराट में समाये हुए एक अंश हो, एक छोटा-सा हिस्सा हो । गीता में कहा है **ममैवांशो जीवलोके** जीवभूत सनातन अतः हम भी उस महत्तत्त्व का अंश ही है, वो हमारा अंशी है । जल का स्वल्प भाग कहीं पर भी हो, येन केन रूपेण आया तो समुद्र से ही है । यथा उस अनन्त का हम भी सूक्ष्मतम अंग है । दूसरी बात यह भी है कि इस सूक्ष्मरूप में भी उस महत् की सत्ता है, यथा अंश मे भी अंशी की शक्ति प्रस्थापित है ही । सर्वस्यचाहं हृदिसन्निविष्टो - गीता, जिस प्रकार विशाल वटवृक्ष के छोटे से बीजमें असंख्य कणिकाए है और यह प्रत्येक कणिका पुनः वटवृक्ष का स्वरूप धारण कर सकती है - बीज से वृक्ष बनता है वैसे ही वटबीज कणीकायां वत् । परमात्मा भले ही अनादि अनन्त हो - काल के प्रत्येक क्षण में एवं ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में उनकी सत्ता विलसित है और तभी तो वह पूर्ण है, इसका ज्ञान होते ही परमात्मा का परिचय करने की हिंमत आ जाती है । अनन्त महाशक्ति का चैतन्य रस समग्र पदार्थो में विद्यमान है, इतना जानते ही, मन्त्रस्वरूप शिवजी के विषय में लिखनेका साहस आ गया । श्रुति कहती है, **एकेनविज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति** - एक के ज्ञान से सबका ज्ञान, जैसे कोई बडे पात्र में चावल पकाते हैं, तो मात्र दो-चार चावल के दाने पात्र से निकालकर,उन्हें दबाकर निश्चय कर लेते है कि, चावल पके है या नहीं । अंश के ज्ञान से अंशी के ज्ञान का परिचय पाना दुष्कर भले ही हो, असम्भव नहीं है ।

मन्त्रशास्त्र के विषय में वेदों, पुराणों, स्मृतिग्रंथों, आगमों में बहूत कुछ कहा है । भगवान् दक्षिणामूर्ति, भगवान् परशुराम, अगत्स्य, नारद, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वेदव्यास, शंकराचार्यजी से लेकर श्रीभस्कर राय, आचार्य तुलसी पर्यन्त सबने मन्त्र महिमा गाई है ।

मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र उपासना के त्रिभूज है । उदाहरणार्थ मोटरकार का स्थूल स्वरूप, धातु से बनी body बॉडी, यन्त्र है । उसमें समाविष्ट-नियुक्त टेक्नोलोजी, उपयोग प्रणाली तन्त्र है और कार में बैठकर ध्येय सिद्ध करनेवाला स्वयं मन्त्ररूप है, यथा मन्त्र स्वयं देवताका रूप है । मंत्र को देवताओं की आत्मा कहा गया है, तो यंत्र को उनका शरीर - **यंत्रं देवानां गृहम्** तथा **यंत्र मंत्रमंयप्रोक्तं मंत्रात्मा देवतवहि । देहात्मनोर्यथा भेदो यंत्र देवयोस्तथा।**

तन्त्र है - शरीर के अन्तर्गत चलनेवाले तंत्र, जैसे शरीर का श्वसनतंत्र, पचनतंत्र, रूधिराभिसरण तंत्र । यंत्र यानी भौतिकढांचा, तन्त्र प्रणाली, मन्त्र स्वयं देवस्वरूपहै । इस लेखमें केवल मन्त्र विषय पर हि चर्चा करेंगे ।

मंत्रों के विषय में शास्त्र कहता है - **मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता - अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधिप्रभावः** - परशुरामकल्पसूत्र । **वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे** - श्रुति । **वाची मन्त्राः स्थिता सर्वे वाच्यं मन्त्रे प्रतिष्ठितम् । मन्त्ररूपात्मकंविश्वं सबह्याभ्यन्तरंततः** - ईश्वरसंहिता ३.९२। मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानांग्यानरूपिणी । ग्यानानां चिन्मयानन्दा शून्यानांशून्यसाक्षिणी - देवीअथर्व।। मन्त्रार्थदेवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्य वाचकभावेन **अभेदो मन्त्रदेवयोः** - शात्कानन्दतरंगिणी । **सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाःप्रिये । शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञेया शिवात्मिका** - कामधेनुतंत्र. म.महोदधौ अपि । **मननात् प्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् मन्त्र मित्युच्यते ब्रह्मन् यद्धिष्ठानतोपि वा** - योग शिखोपनिषद २.७। **शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि बीजानां देवरूपताम्** । मन्त्रोच्चारणमात्रेण देवरूपं प्रजायते - बृहद्रंधर्वतंत्र । **मंत्रजाप मम दृढ विश्वासा** । पंचम भक्ति यह बेदप्रकासा ।। **मंत्र परम् लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सर्व** । महामत्त गजराज कहुं बस कर अंकुश खर्वं ।। आखर अनमिल नाम न जापू । प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू ।। ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामनाम न रूपा - रा.च.मा.बा.का. ।। यहां श्री तुलसीदासजी ने बडा मर्म छूपाया है, अकथ का एक अर्थ है बरनी न जाय ऐसी, तन्त्रागमों के हिसाब दूसरा अर्थ है अकथासन जहां शिवस्वरूप गुरू, ज्ञानरूप पराशक्ति के साथ विराजमान है, ऐसा त्रिकोणासन (अ से अः एकभूज, क से त द्वितीयभूज, थ से स तृतीय भूज और हंक्षं रूपेण बिन्दुगत, जो समस्त मन्त्रो का दर्शनस्थान मानते) है ।

संक्षिप्त सारांश, मन्त्रो में अचिन्त्य शक्ति है, वैश्विक ऊर्जाका दूसरा नाम मन्त्र है । मन्त्र देवता का स्वरूपहै, वर्णावतार है । समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का स्रोत भी प्रणव, नाद (मन्त्र) को माना है । मन्त्रों में सबकुछ है, मंत्र स्वयं देवता का रूप है ।

श्रुति-स्मृति-पुराण-आगम-गीता-रामचरित मानस से लेकर शिख संप्रदाय के जपजी या कबीर के सुमिरन में मन्त्र महिमा विद्यमान है । डोप्लर, आल्बर्ट आईनस्टाईन, न्यूटन जैसे अर्वाचीन महान वैज्ञानिक व विद्वान भी प्रयोगात्मक रूपेण इस सत्य-तथ्य की प्रतिपूर्ति करते है ।

केवल भारतीय ऋषियों ने हि नहीं, किन्तु विश्व की प्रायः सभी संस्कृतियां एवं संप्रदायों ने मन्त्र की अपरिमित शक्ति का स्वीकार किया है । सनातन वैदिक सभ्यता या आगमों के उपरान्त बौध, जैन, शिख, इस्लाम, इसाई आदि सबने इसमन्त्रो की महाशक्तिका स्विकार किया है ।

मन्त्र ही जीवन है - जीव मात्र के जीवन का आधार मन्त्र है और यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि, मन्त्र के बीना जीवन ही असंभव है । **व्यक्ति आस्तिक हो या नास्तिक मन्त्र का आश्रित तो है ही** । विश्व के किसी भी कौने में हो, कोई भी रूप में हो, मन्त्र ही उनका जीवन होता है । **मानव ही नहीं, समग्र जीव सृष्टि का आधार भी मन्त्र ही है** । चाहे कोई भी योनी क्यों न हो, पशु-पक्षी-कीट-पतंग, वृक्ष या मानव, सबका आधार मन्त्र है । कैसे ? जब से जीव मात्र का श्वसन चालू होता है, वह अजपामंत्र - सोहं का जप अविरत करता है । चाहे वह जाग्रत हो या स्वप्नाधीन हो, सुषुप्त या मूर्छित हो । हंसमंत्र का जप अविरत, आजन्म चलता ही रहता है । **हकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः । अजपानाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा** । ध्यान से सुनेंगे तो साँस के प्रवेश समय सकार एवं निश्वास के समय हकार ध्वनि स्वतः स्वरित होता है, भले ही हम जाग्रत हो या स्वप्नाधीन या सुषुप्त । हंस मंत्र को अजपा जप भी कहते हैं, बिना यत्न या ज्ञान चलनेवाला निरन्तर जप ।

तन्मात्रामव्यतिक्रान्तं चैतन्यं सर्वजन्तुषु - वाक्यपदीय ब्र.का.१२६ । **चितिक्रिया रूपमलब्धवाक्शक्तिग्रहं न विद्येते** ।। प्राणी मात्र शब्द चैतन्य से रहित नहीं है (हंसमंत्र तो प्राणीयों में भी चलता है) । वह परावाक् हि तो है, जिनसे वे व्यवहार करते है ।

एक नवजात शिशु का जीवन प्रारम्भ श्वास से होता हैं । श्वासोश्वास नियमित रूपसे चलने पर सोऽहं का ध्वनि स्वरित होता हैं । परमात्माने मन्त्र से ही जीवनका प्रारम्भ किया है एवं इनकी समाप्ति पर जीवन पूर्ण होता है । बहोत सारी क्रियाओं के लिए हम यत्न नहीं करते, किन्तु यह स्वयं संचालित हैं, जिस प्रकार श्वास का चलना, खाये हुए अन्नका पचन होना, अपाच्यन्न का मल बनना, मलों का प्रश्वेद, मूत्र, मलरूपेण बहार नीकलना, अन्न से रक्त, मज्जा, हड्डीयां, त्वचादि की वृद्धि होना (श्वसन, रूधिराभिश्रण, उत्सर्जनादि) इत्यादि । हमारी जाग्रत, स्वप्न या सुषुप्ति अवस्था में भी, यह कार्य पंचप्राण नियमितरूप से करते है । यह प्राण इस सोऽहं मन्त्र के साथ चलता है - यही है, मन्त्रमय जीवन का आरम्भ । जब परमात्माने मंत्रमय जीवन दिया है, तो हम विशेष जानकर क्यों न सम्पन्न बने ।

किसी वस्तु-विद्या की यदि स्वतः प्राप्ति है तो, इस विषयमें ज्यादा जानकर लाभान्वित होना, अच्छा ही है । जैसे एक व्यायामवीर प्रातः व्यायाम को ध्यान में रखकर चलता है, एक पोस्टमेन चलता है, एक चौकीदार चलता है, चलनेकी क्रिया तो सब करते है, किन्तु चलनेके फलमें अवश्य अंतर होता है । कोई चलना स्फुर्ति या शक्तिप्रद है, तो कोई चलनेकी क्रिया थकान या कष्टप्रद है । एक बच्चा कम्प्युटर या मोबाईल से खेलता है और एक आई।टी एक्स्पर्ट इसका श्रेष्ठतम उपयोग करता है, एक ही साधनका ज्ञानभेद के कारण उपयोग में भिन्नता रहती है । ऐसे ही, मन्त्रों के विषय में, ज्ञान से अपरिमित शक्ति की अनुभूति होती है। मन्त्रो में अचिन्त्य शक्ति है । मन्त्रो का वैखरी रूप, वाणी है,

वाणी में शब्द है, शब्दों मे वर्ण है, जो केवल हमारे पास ही है। **शब्द बिना श्रुति आंधरी कहो कहां लौं जाय, द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका जाय** - कबीर । शब्द के बिना चिन्तन अधूरा रहता है। **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** शब्द को समझना अत्यावश्यक है और शब्द केवल मनुष्य को ही प्राप्त है।

एक ओर सत्य यह है कि, **यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः –** ऋग्.१.१६४.३७, अतः भौतिक शरीर की प्राप्तिके उपरान्त ही भाषा उद्भवित होती है, तथा पूरे ब्रह्मांड में मानव के पास ही पूर्ण विकसित वर्णमाला है। संसार के अन्य जीव जैसे कि पशु, पक्षी, जलचर, वृक्ष आदि के पास ध्वनि है, किन्तु वर्णाक्षर नहीं। मानव के पास भी जन्मके उपरान्त ही कालान्तर में विकसित होती है। नवजात शिशु के रूदन या हास्य में वर्ण नहीं होते, भाषा कालान्तर में ही विकसित होती है और बालक जन्म के कुछ काल के बाद शनैः शनैः बोलना सिखता है। पूर्ण वर्णमाला मात्र मानव के पास ही है, अन्य योनियों में केवल ध्वनि है, जिसे हम एक दो वर्णो की परिकल्पना करते है, जैसे कुत्ते की भौं-भौं। जो वस्तु केवल मानव को ही पूर्णरूप से मिली इसमें कोई इश्वरीय संकेत एवं कृपा अवश्य है।

नादब्रह्म - हमारे यहां शब्द को, नाद को ब्रह्म कहा है। **अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते। ध्वनेरन्तर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः ॥ मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमंपदम् - हठयोग प्रदीपिक ४.१००।** अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है, उस ध्वनि के भीतर स्वप्रकाश चैतन्य रहता है और उस ज्ञेय के भीतर मन रहता है और मन जिस स्थान में लय को प्राप्त होता है, उसी को विष्णु का परमधाम कहते है - विश्व-विकल्प की पूर्वकोटि में उल्लसित नाद ही मन्त्र है। **बीजभावेस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी (यो.हृ.तंत्र), ध्वनिरूपा यदास्फोटस्त्वदृष्टाच्छिववविग्रहात् । प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनापूरयन् जगत् (ने.तंत्र , विज्ञान भैरव)।** ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का मूल स्रोत ध्वनि है। अर्वाचीन विज्ञान भी अब मानने लगा है। **Everything in Life is Vibration – Albert Einstein.Earth is cause of high vibrations.** वैज्ञानिकों की सर्वमान्य परिकल्पना (**Hypothesis**) है कि, छोटे से कण से ब्रह्माण्डोत्पत्ति है। वैज्ञानिक **God Particle** कह रहे हैं। इस अत्यन्त सूक्ष्म कण में महाविस्फोट (**Big-bang**) के कारण सुविस्तृत ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई, जो लगातार फैलता जा रहा है। आज वैज्ञानिक मानते हैं कि ब्रह्माण्ड में जितना दृश्य सामान्य पदार्थ (**Visible Ordinary Matter**) है,उसमें इलेक्ट्रोन्स, प्रोटोन्स, आयन्स, गैस, द्रव, ठोस और प्लाज़्मा शामिल है। ध्वनि इन्फ्रा एवं सुपरसोनिक साउण्ड से अब चिकित्सा, शल्य, कीट और कीटाणुओं का संहार जैसे छोटे-मोटे काम ही नहीं धातुओं को क्षण भर में काट डालना, गला देना, एक दूसरे में जोड़ देना इत्यादि काम होने लगे हैं, जिसके लिए बड़ी-बड़ी मशीनें भी काफी समय लगा देती है।

विद्युत तरंगों में उभारा जाय तो हर ध्वनि की फोटो अलग बनेगी, आज इस आधार पर पुलिस को अपराधियों को पकड़ने में ९७ प्रतिशत सफलता मिली है, न्यूयार्क के वैज्ञानिक लारेन्स केर्स्टा ने यह खोज की थी और यह पाया कि मनुष्य चाहे कितना ही बदल कर, छुपकर या आवाज को हल्का और भारी करके बोले ध्वनि तरंगें हर बार एक सी होंगी । वैसे हर व्यक्ति की तरंगों के फोटो अलग-अलग होगे। वैज्ञानिक इन ध्वनि-तरंगों के आधार पर व्यक्ति के गुणों का भी पता लगाने के प्रयास में हैं, यह सफल हो गया तो किसी की आवाज द्वारा ही उसके अच्छे-बुरे चरित्र का पता लगा लिया जाया करेगा । विज्ञान का यह आविष्कार कुछ वर्षो के यत्नों का फल है । हमारे यहा संगीत चिकित्सा के रूप में भी संदर्भ मिलता है । सत्यता ज्ञात नहीं, यद्यपि सूना है नासा भी ॐकार ध्वनि एवं नाद के विषय में अनुसंधान कर रही है । आध्यात्म विज्ञान ई.पू. ६००० वर्षो से यथा उपनिषद एवं महाभारत के पूर्व से बहूत कुछ जान चूका है, क्योंकि महर्षि वेदव्यास के वाङ्मय में भी नादब्रह्म के विस्तृत वर्णन मिलते है ।

नाद ब्रह्म के विषय में वेदों में, उपनिषदों में, पुराणों में, योग एवं तंत्रागमो में बहोत चर्चा मिलती है (प्रश्नोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, ऐतेरेयोपनिषद्, श्वेताश्वरोपनिषद्, श्रीमद्भागवत इत्यादि) । इसके इतिरिक्त बौध, जैन, नाथ संप्रदाय, सूफी साहित्य, शिख संप्रदाययों में भी बहोत चर्चा मिलती है । कबीर साहित्य में भी अति महत्वपूर्ण विचारणा उपलब्ध है ।

नाद में अनन्त शक्ति होती है । जब हवामें आर.डी.एक्ष या बडे पटाकों के विस्फोट होते है, तब उनके आवाज से मकान की मजबुत दिवालों में भी कंपन होता है । नाद की ऊर्जा को सुनिश्चित रूप में सुनियोजित करने का आविष्कार ही मंत्रविज्ञान है । उसी नाद से प्रबल ऊर्जा का आह्वाहन अभ्यास से करते है । **नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च सः** (शिव संहिता) अतः अभ्यास करनेसे नाद सूना जा सकता है ।

यह नाद दो प्रकार का है एक आहद और दूसरा अनाहद । आहद नाद जो है वो किसी दो वस्तुओं के टकराव या घर्षण से होता है, जैसे संगीत बजाना, घण्टा बजाना इत्यादि । इसमें भी एक प्राकृतिक है, जैसे कि समुद्र का घूंघराव, झरनों के बहाव का खल-खल, मेघगर्जना इत्यादि । दूसरा जो है वह दिव्यनाद हैं जो ब्रह्माण्ड में सदैव ऊर्जावान है ।

बाजे बीन सितार बांसुरी झंकार मृदु बानी है... कहें कबीर भेद की बातें बिरला कोई पहिचानी हो । **अनहद सबद होत जनकार, जिहि पौड़े प्रभु श्रीगोपाल** । पंचशब्द धुनकर धुन तहँ बाजै शब्द निसान । **तार घोर बाजन्तरा तहाँ सांच तख्त सुल्तान** । सुखमन के घर राग सुन, सुन्न मंडल लौ लाय । शब्द खोज यह घर लहै नानकता का दास । गुरू नानक । **सुर्त के कानों से फिल तू शब्द सुन । शब्द कहो चाहे कहो अन्तर वचन** - ७१

मौलाना रूम । **आसमाँ से आती है हर दम आवाज़, क्यों पडा है । दुनियाँ में नहीं सुनता उसे** - ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ।

अब इस बात को थोडा विस्तृत रूप से देखे । **निः अक्षर अक्षर रचा, अक्षर रचिया स्वांस । तीनों सत्ता मेलकर देही किया विकास ।।** हमारा जो शरीर है यह पूरे ब्रह्माण्ड की ही प्रतिकृति है । जितना प्रतिशत जल पृथ्वीपर है, उतने ही हमारे शरीर में रक्तपीत्तकफादि रस रूप में विद्यमान हैं । ब्रह्माण्ड की मूलाकृति गोल है, यथा सभी ग्रह गोल है, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्यादि ग्रह गोल है, नक्षत्र गोल है, सभी वनस्पति के बीज गोल है, पक्षी के अण्डे गोल है । शुक्राणु के बीज गोल है । गर्भ में शिशुकी स्थिति भी गोल है । ब्रह्माण्ड के वायु ही शरीर में भी प्रवेश करते है, पृथ्वी के औषधि, अन्न, जल, वायु आदि हमे पुष्ट करते है और चेतना से भर देते है । उपरोक्त दिव्यनाद ऊर्जावान है वह हमारे शरीर के भीतर भी निरंतर चलता है । सप्तमुखा मुद्रा से प्राप्त करने की प्रणाली है । **नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च सः** - शिव संहिता इस नाद को अभ्यास से प्राप्त करके शाश्वती परमान्द की अनुभूति की जा सकती है । अनहद नाद प्रारम्भ में सुनने का उपाय - एकांत में ध्वनिरहित, अंधकारयुक्त, स्थान पर बैठकर करें । तर्जनी अंगुली से दोनों कानों को बंद करें, आँखें बंद रखें । कुछ ही दिनों के अभ्यास से अग्नि प्रेरित शब्द सुनाई देगा, इसे शब्द-ब्रह्म कहते हैं, यह शब्द या ध्वनि या अनाहत नाद हैं, इसको सुनने का अभ्यास करना है । यह नौ प्रकार की होती है ।

१. घोष नाद - यह आत्मशुद्धि करता है, शरीर भाव को धीरे धीरे नष्ट कर के व मन को वशीभूत करके अपनी और खींचता है।

२. कांस्य नाद - यह नाद जडत्व भाव नष्ट करके चेतन भाव की तरफ साधक को ले जाता हैं ।

३. श्रृंग नाद - यह नाद जब सुनाई देता हैं तब साधक की वासनाएं और इच्छाए नष्ट होने लगती हैं।

४. घंट नाद - इसका उच्चारण साक्षात शिव करते हैं, यह साधक को वैराग्य भाव की तरफ लेजाती हैं।

५. वीणा नाद - यहाँ इस नाद को जब साधक सुनता हैं तब मन के पार की झलक का पता चलता हैं ।

६. वंशी नाद - इसके ध्यान से सम्पूर्ण तत्व के ज्ञान का अनुभव होता हैं।

७. दुन्दुभी नाद - इसके ध्यान से साधक जरा व मृत्यु के कष्ट से छूट जाता है।

८. शंख नाद - इसके ध्यान व अभ्यास से स्वम् का निराकार भाव प्राप्त होता हैं।

९. मेघनाद - जब ये सुनाई दे तब मन के पार की अवस्था का अनुभव होता हैं, जहा शुन्य भाव प्राप्त होता हैं।

इन सबको छोड़कर जो अन्य शब्द सुनाई देता है वह तुंकार कहलाता है, तुंकार का ध्यान करने से

साक्षात् शिवत्व की प्राप्ति होती है। शिवोहम शिवोहम शिवोहम शिवोहम शिवोहम शिवोहम शिवोहम । मुसलमान फ़कीर इसे अनहद कहते है, अर्थात् एक कभी न खत्म होने वाला कलाम(ध्वनि) जो फ़ना(नश्वर) होने वाली नहीं है ।

सद्गुरूओं ने कहा है कि, अनहद शब्द के अन्दर प्रकाश है और उससे ध्वनि उत्पन्न होती है । यह ध्वनि नित्य होती रहती है, प्रत्येक के अन्दर यह ध्वनि निरन्तर हो रही है अपने चित्त को नौ द्वारो से हटाकर दसवे द्वार पर लगाया जाय तो यह नाद सुनायी देता है ।

सहस्रारमध्य में स्थित चंद्राकार बिंदु से स्रवित होनेवाले **अमृत** नामक द्रव को सूर्याकार स्थान तक आते आते सूखने से बचाकर उसका रसास्वादन करने से अमरत्व का लाभ होता है। सूर्य एवं चंद्र अथवा नाद एवं बिंदु के मिलन से अनाहत तुरही बजने लगाती है (गोरखबानी, सबदी ५४ तथा कबीर ग्रंथ)। यह मिलन ही शिवशक्ति का मिलन है, जो परमस्थिति का सूचक है ।

शब्द-ध्वनि की अनंत शक्ति को **डोप्लर क्रिश्चयन** जैसे महान् विज्ञानीने आविष्कृत किया, जिसे डोप्लर सिद्धान्त से जानते है । आईन्स्टाइन ने भी इस की पुष्टि की और विकास हुआ, अल्ट्रासाउन्ड तकनीकि का । तरंगलंबाई (वेललेन्थ), आवृत्ति (फ्रिक्वन्सी), अनुपूर्वी, मात्रा, वेग आदि के उपयोग से रचनात्मक कार्य हो सकते हैं । भिन्न-भिन्न रेडियो स्टेशन के कार्यक्रमों को एक ही उपकरण - रेडियो से सुनना संभव हो गया है । वैसे तो आकाश में कई ध्वनि तरंगो का अस्तित्व होगा । तरंगलम्बाई एवं फ्रिकवन्सी (नाद-ब्रह्म-कला) के प्रतिष्ठित सम्बन्ध मे विज्ञान है । ताली बजाकर घरके लाईट-पंखे चालू होना । या आवाज सूनकर खिलौने के तोते का बोलना इसी सिद्धि का आविष्कार है ।

हमने देखा हैं, ध्वनि की सुनिश्चत असर प्राणी मात्र पर होती हैं । रोटी लेकर गाय गाय पुकारने पर गाय आती है, तू तू करनेपर कुत्ता आता हैं । हमने टीवी में देखा था, एक युवान कौएकी आवाज निकालता था और सेंकडो कौए आ जाते थे, अन्य पक्षी भी सूनते ही होंगे । हमारी दादी मां ने गायका नाम गौरी रक्खा था, गौरी बोलते ही वह उनकी ओर देखती थी । मेरे एक मित्र के घर पालतु कुत्ता था, टफी नाम था उसका, टफी आवाज करता था तो, घर के लोग बोलते थे - टफी स्टोप, टफी कम हिअर, टफी सीटडाउन इत्यादि । टफी वही करता थो, जो उसे आदेश मिलता था । ऐसा कई जगह पर देखा होगा । क्या टफी अंग्रेजी पढा होगा या, गाय अपना गौरी नाम जानती होगी ?

ये तो है वाणी के संस्कार या ध्वनि का असर। ब्रह्माण्ड में ऐसा ही ध्वनि का असर देखने मिलता हैं।

ब्रह्माण्ड में कर्णातीत दिव्य ध्वनि अविरत चलता है, जो तीव्र एवं अति ऊर्जावान है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति में जो नाद कारणभूत है - उसे ॐकार कहते हैं। माण्डूक्य, नादबिंदू, तेजोबिन्दु, हंसोपनिषद्, हठयोग, संगीतशास्त्रादि में नाद की विशद चर्चा मिलती है।

क्रम - नाद से वर्ण, वर्ण से अक्षर, अक्षर से मन्त्र की रचना होती है। भिन्न-भिन्न शक्तियों-देवाताओं के लिए, भिन्न-भिन्न मंत्र बने है। ५१ अक्षरों से बने अनेक मन्त्र जिस शक्ति या देवता के लिए होता है, उसी को प्राप्त होता है। श्रीविद्यारण्य स्वामि ने पञ्चदशी में एक सुन्दर उदाहरण दिया है - **अध्येतृवर्ग मध्यस्थ पुत्राध्ययन्शब्दवत्** - पाठशाला में, अनेक सहाध्यायी उच्चस्वर से पाठ करते हैं, यद्यपि गुरू अपने प्रत्येक शिष्य का, या पिता अपने पुत्र का स्वर, इन मिश्र स्वरो में से पृथक सून सकते हैं। **सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः** - नेत्रतन्त्र। भगवान शिवजी ने सप्तकोटि मन्त्रोका गढन किया है और मन्त्र जिस साध्य या देवता के लिए प्रयुक्त किया जाता हैं, वह उसी देवता को प्राप्त होता है - **वाच्यवाचकभावेन अभेदोमन्त्रदेवयोः** - शाक्तानंद तरंगिणी। साध्य-साधक में मन्त्रका एक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं, यही मन्त्रविज्ञान है।

इस लेख के माध्यम से ब्रह्मविद्या, वाणी, ध्वनि, वर्ण, अक्षर, शब्द, मन्त्रो की उत्पत्ति, देवता, मन्त्रो के स्वरूप, प्रकार, जाति, छन्द, ऋषि,उपासना क्रम, विधि व अवरोध, गुरू, दिक्षा इत्यादि विषय पर यथा मति विचारों को साकृत करनेकी चेष्टा करतेहै। कामधेनु तंत्र, योगिनी हृदय, नेत्रतंत्र, रूद्रयामल, कुछ तंत्र एवं यामल, पुराण, ब्राह्मणग्रंथ, मंत्र एवं मातृकाए, इन्टर्नेट-विज्ञान के सहयोग से इस लेखको सुरूप करने का प्रयत्न किया है। प्रधान उद्देश्य मन्त्रशास्त्र के रहस्यों को अवगत करना-कराना है, यह संपूर्ण नहीं है तथापि उपासना मार्ग को प्रकाशित करने के लिए प्रयाण का प्रथम चरण है। विद्वानों का मार्गदर्शन इसे सुंदर बना सकता है।

आर्ष ग्रंथ, वैश्विक ग्रंथ है और ये बात अब शनैः शनैः पूरा विश्व स्वीकारने लगा है, हमारे ऋषियों की विचारधारा पूर्णतया वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित है। उन्होनें ज्ञान-विज्ञान को जन सामान्य तक प्रचलित करने हेतु, धर्म एवं आचार के स्वरूप में, कुछ नियम, विधि-विधान बताए। यहीं विधि-विधान -विज्ञान, रूढियां एवं परंपरा का रूप धारण कर गई - उद्देश यह था कि, जिनकी प्रज्ञा-बौद्धिक क्षमता, इस ज्ञान विज्ञान को समझने को समर्थ नहीं है, वे लोग भी धर्मानुसरणी बनकर इससे लाभान्वित हो, वैज्ञानिक तथ्यों से लाभान्वित हो। नित्य स्नान, शौच-शुद्धि, दन्त धावन, गंडूष में धर्म दिखाया। ऋषियों ने पर्यावरण की पवित्रता को ध्यान में रखते हुए, पर्वत, नदीया,

आकाश, वृक्ष, पृथ्वी में देवता बताए । नदीमें स्नानादि करने से नदी का जल प्रदूषित होता है, उनकी खनिज सम्पत्ति क्षीण (Miniral Property Loss) होती है, यथा उनकी शुद्धि व Regain of Miniral Property जलज तत्त्वों को शुद्ध करने के लिए, उसमें तांबे, चांदी, सोने के सिक्के प्रवाहित करने की विधि बताई । इस परंपरा को धार्मिक विधि का रूप दे दिया । सुश्पष्ट है कि प्रत्येक आर्ष परंपरा में ज्ञान-विज्ञान निहित है, उनका उद्देश्य इस वसुन्धरा को आनन्द एवं पवित्रता सभर रखना था - वहीं धर्म है । समग्र विश्व के सभी जीवों में आत्मभाव एवं करूणा दिखाई - वसुधैव कुटुम्बकम् की ही उदात्त भावना से भरा है हमारा आध्यात्म । इसी श्रृंखला में यह छोटा सा प्रयास है, मन्त्रो को यथार्थ जाननेका ।

इस प्रयास के प्रारम्भ में ही, किसीने हमें सूचित किया था, कि इतना परिश्रम क्यों करते हो, केवल रामनाम में सब कुछ निहित है । बात बिलकुल सत्य है, भगवान शिवजीने कहा - राम रामेति रामेति रमेरामे मनोरमे, फिर इतने आगम क्यों कहे ? भगवान् स्वयं वेदरूप में इतने मंत्रो को स्वरूप में क्यों प्रगट हुए ? राष्ट्रमें सबको नैतिक बनना है, इतनी बात ही पर्याप्त है, इतने कानून क्यों है ? धनाढ्यों के पास पर्याप्त सम्पत्ति है, क्यों नए नए आयाम शरू कर रहे है ? भगवान् आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्यजी, वल्लभाचार्यजी आदि का प्रयास भी क्या व्यर्थ है ? संत शिरोमणी तुलसी दासजी ने रामनाम से राम को प्राप्त कर लिया था, रामचरित मानस की रचना करनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या ऋषियोंके प्रयास को व्यर्थ माना जा सकता है ?

दर्शनशास्त्र कहता है कि, **येन यद्दृश्यतेतत्तु तेनतत्सृज्यतेजगत् । दृष्टस्यभ्रान्ति रूपस्त्वात्दर्शनंसृष्टिरूच्यते** । हमें जो भी दिखता है, वह हमारी स्थिति का परिणाम हैं । एक बडी अर्धनारीश्वर की मूर्ति को कुछ लोग वाम भाग से देखते है, उनको मूर्ति में माताजी दिखते है, जो दक्षिण भाग से देखते है, उसे उसमें शिवजी लगते है, किसीको पीठ दिखती है, किसीको मुखारविन्द दिखता है तो, किसीको चरणकमल, यह दृष्टा की स्वयं की स्थिति का ही परिणाम है । परमात्मा के पूर्ण दर्शन के लिए तो मूर्ति की चारों तरफ परिक्रमा करनी पडेगी । वैसे ही शास्त्रकारों ने परमात्मदर्शन के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण - अभिगम बताए, जो शास्त्र बन गए । **ऋचिनां वैचित्र्यात्** - इस वसुन्धरा पर अनेक विचारधारावाले लोग है, उनके प्रश्न एवं विचारशैली भी भिन्न-भिन्न है, सबका समाधान करने हेतु, अनेक विचारधाराए-शास्त्रग्रन्थों का निर्माण हुआ है ।

विद्युत की चुंबकीय ऊर्जा का ज्ञान होने के साथ ही, इलेक्ट्रीक मोटर से लेकर अनेक उपकरणों का आविष्कार हुआ । इलेक्ट्रोनिक्स-इलेक्ट्रीकल्स क्षेत्र में अनेक सिद्धियां प्राप्त हुई, अनेक शाखाओं का विकास हुआ, टेक्नोलोजी की अनेक पुस्तकें छपी । बस इसी प्रकार अनन्त चेतना का दिव्य साक्षात्कार होनेके साथ ही, उस महाशक्ति की असीम शक्ति-कला का दर्शन ऋषियों ने किया, जो अनेक शास्त्रग्रंथो के रूप में, आज हमारे मार्गदर्शक बने है । अनेक शास्त्रों में से, जिस पर हमारी श्रद्धा दृढ हो उस मार्ग पर

चलना चाहिए । गीता में अष्टादश योगों का उपदेश के उपरान्त अर्जून को कहा कि बुद्धियोगं ददाम्यहं - सर्वस्य बुद्धिरूपेण - मेरी प्रदत्त तेरी बुद्धि द्वारा जो ठीक लगे इसे तु अंगीकार कर ।

एक सामान्य उदाहरण देते है - **आपकी कार आपका ड्राईवर चलाता हैं । वह अपने हिसाब से ही ड्राईविंग सीट आगे-पीछे करता है, लेफ्ट-राईट मिरर को अपने हिसाब से सेट करता हैं, अन्दर का काच भी पीछे का वाहन दिखे, ऐसे सेट करता है । यदि अब आप कार चलाएंगे, तो यह सब अपने हिसाब से पुनः सेट करेंगे या नहीं, क्योंकि अब आपको देखना हैं, आपकी उंचाई-चौडाई के हिसाब से सीट भी आगे-पीछे करेंगे । आपको जो शास्त्र का जो मार्ग ज्यादा उचित लगे, आप प्रशस्त होकर उपासना करें** ।

अन्ततोगत्वा प्राप्य तो सभी शास्त्रों में एक ही सत्य है । यथा नद्यास्यन्दमाना समुद्रेस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय.. समुद्र से बाष्पीभूत हुआ पानी हिमालय की पर्वतमाला में जमा होकर, भिन्न-भिन्न नामरूप धारण करके, गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपूत्रा, सिन्धु आदि नदी के रूपमें प्रवाहित होकर, अन्तमें समुद्र में ही मिलता है । बस ठीक उसी प्रकार सभी शास्त्रों का उद्देश्य ब्रह्मानुभूति ही है । शास्त्र अभ्यास का प्रमुख उद्देश्य वही तो है, सभी शास्त्रों की गति परमात्मा की तरफ ही है ।

हमारी विवशता ये है कि, ४०० से अधिकवर्ष पर्यन्त विधर्मीयों से, हम शाशित रहे और इसके फलस्वरूप हमारी विचारधारा, तथ्यों को आत्मसात् करनेकी अपनी प्रणाली, परंपरा, परिभाषा, परिमाण सबकुछ क्षीण हो गया । हम स्वतंत्र तो हो गए, किन्तु हमारा मानस आज भी पाश्चात्य विचारधारा का अनुसरण करता रहता है । हमें सान्ताक्लॉज या वेलन्टाईन डे मनाने का कोई तार्किक कारण भले ही न मिले, तब भी हम पूर्ण रसमय होकर मनाते है, किन्तु, हमारे महान पूर्वज स्थापित तथ्यों को, अतार्कीक मानते है । इसमें श्रद्धा नहीं है, उसकी उपेक्षा करते है ।

हमारा उद्देश्य किसी सभ्यता या संस्कृति का विरोध करना नहीं है । क्योंकि इस समस्त सचराचर ब्रह्माण्ड परमात्मा में निहित है - सिया राममय सब जग जानी । करउं प्रणाम जोरि जुग पानी । तभी तो वह पूर्ण परमेश्वर है । हमारे यहां तो राक्षसों का भी सत्कार करते है, क्योंकि उसके बीना भी परमात्मा तो पूर्ण नहीं होगा, हमारे अद्वैतमें ब्रह्म के सिवा कुछ है ही नहीं । मात्र राजा की मुद्रा वाला सिक्का ही सही मानेंगे, तो पीछे दी हुई नम्बर की मुद्रा भी सही है, अन्यथा रूपया पूरा नहीं होगा ।

प्रायः विश्व के सभी सम्प्रदाय मृत्योपरान्त स्वर्ग, हेवन, जन्नत प्राप्ति की बात करते है । किन्तु हमे गर्व है कि **इहैव फलमश्नुते, इहचेत् अवेदीः अथ सत्यमस्ति,यदेवेह तदमुत्र** द्वारा, अमारा वेदान्त, तन्त्र एवं योग इसी जन्म में मुक्ति की अनुभूति कराता है । तप

द्वारा सब कुछ प्राप्य है, क्योंकि, हमारे यहां ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की उत्त्पत्ति तप से बताई है और तपसा चीयते ब्रह्म सृष्टि में ओतप्रोत परब्रह्म की अनुभूति भी तप से होती है ।

एक सुन्दर उदाहरण देते हैं, जिस प्रकार इलेक्ट्रिक मोटर में विद्युत सप्लाय देने से, उसमें गति आती है, इस से विपरित इसी मोटर का आर्मेचर बनाके गति देने से पुनः विद्युत उत्त्पन्न होती है । तप माध्यम है - परमात्मा से सृष्टि एवं सृष्टि में पुनः ब्रह्मानुभूति का ।

सत्य तो यह है कि, जिस क्षेत्रका ज्ञान अवगत करना है, उसी क्षेत्र की परिभाषा, परम्परा व प्रणाली का आश्रय लेना होता है । जैसे कि, रसायण विज्ञान को मिकेनिक ईन्जिनीयरीं के रूप में नहीं समजा जा सकेगा । किसी कवि के काव्यरस को गणित की भाषामें नहीं समझ सकते । सिविल ईन्जिनीयरींग की बाते उसी की (Methods and Terminology) परिभाषा एवं परिमाणों से जान पाएंगे । भावसभर कविता की तरह इलेक्ट्रिकल ईन्जिनीयरींग नहीं समझा जाएगा । परिमाण एवं परिभाषाए विद्या के क्षेत्राधीन होती है । वेदोपनिषद एवं आध्यात्म (वेदान्त) की भी अपनी, परिभाषा एवं परिमाण है । उष्णता एवं गति, दूध एवं अनाज को नापने का मान और साधन एक नहीं हो सकता । हर वस्तु को हम हमारे पास प्राप्य परिमाण से नहीं माप सकते, परिमाण बदलने पडते है । जो हम नहीं समझ पाते, उसे उपेक्षा करके छोड देते है । पं. मेक्समूलर जैसे जिज्ञासु बहोत कम होते है ।

दुसरा दुर्भाग्य यह है कि, हम, हमारें विद्वान शंकराचार्यो, वैष्णवाचार्यो, शाक्ताचार्यो, विद्वानों के समीप गुरूपसदन करना भूल गए है और जिन्होंने शास्त्रों को केवल मनोरंजन का माध्यम बना रखा है, उनके पास ही जाकर हम हमारी शंकाओं का समाधान ढूंढते है, जो प्रायः शास्त्रो का उपहास ही करतेहै । पू. डोंगरेजी महाराज, पू. अखण्डानन्दजी, पू. करपात्रीजी महाराज, पू. कृष्णानन्द सरस्वतिजी, पू.कृष्णशंकरशास्त्रीजी जैसे वक्ता, आठ-दस घण्टे पर्यन्त भगवद् गुणाराधन द्वारा, लोकमानस पर शास्त्र व भगवद् चरित्र के बीज बो कर, बिना किसी संगीत एवं नृत्य के कृषि करते थे ।

अनुकरणशील मनीषावाले जनसामान्य के लिए, शास्त्र को प्राचीन प्रणाली, परंपरा एवं परिमाणो से समझाना थोडा कठीन-सा लगता है । इस परिप्रेक्ष्यमें, आज वही सत्यों को, परिभाषा एवं परिमाणों में परिवर्तनकी आवश्यकता बन गई है, यद्यपि शास्त्र सम्मत - शास्त्र विरूद्ध नहीं । अतः इस दिशामें हमारा यह आयाम, कुछ उपयुक्त हो ऐसी अपेक्षा है । विद्वद्वर्गके करकमलों में यह लेख अनुग्रहित रहे, इस में ही हमारा साफल्य है ।

प्रेरणा एवं प्रयोजन - हिन्दी में लिखनेका मेरा अभ्यास अति कम है, यथा इसमें कई क्षतिया दिखने का पूर्ण सम्भव हैं, अतः प्रारम्भ में ही मैं वाचकवर्ग से इसके लिए क्षमायाचना करता हुं । मैं कोई सिद्धहस्त लेखक नहीं हुं, यद्यपि लेखन की रूचि मेरा

वंशीय संस्कार है । मेरे पिताजी, वैद्यशास्त्री पण्डित प्रेमवल्लभ शर्माजी एक सिद्धहस्त लेखक थे, डॉ.वाकणकरजी, कोटा के बडे देवताजी, डॉ.अमृतवसंत पण्ड्याजी, श्री लननप्रसाद व्यास, श्री दयानन्द शास्त्रीजी जैसे अनेक महानुभाव उनकी लेखनशैली से प्रभावित थे । उनका लेखनक्षेत्र इतिहास, पुरातत्त्व एवं आयुर्वेद रहा । मैं तो केवल विद्वज्जन चरणरेणु हुं । यद्यपि, इस रेणु को कुछ सिद्धों का, संतो का, विद्वानों का, गुरूजनों का पुनित चरणश्पर्श हुआ है, फलतः इस रेणुमें संस्कार, विचार एवं दिव्यचेतना संचारित हुई है । इसे गुरू कृपा कहुं या इष्टबल कहुं । इसे वंशीय विरासत कहुं, उपासना से संप्राप्त आत्मचेतना कहुं । इस रेणुमें, अगम्य ग्रंथोमें से, कुछ पानेकी क्षमता प्राप्त हुई । इससे पूर्व गुर्जर एवं हिन्दी भाषामें कुछ लेख प्रकाशित हुए है, जिसको प.पू. जगद्गुरू श्रीस्वरूपानन्दजी द्वारकापीठ, प.पू.जगद्गुरू श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी, कांचीपीठ, ब्रह्मलीन पू.श्री कृष्णशंकर शास्त्रीजी, ब्रह्मलीन प.पू.श्री प्रमुखस्वामि महाराज जैसे महानुभावों द्वारा प्रशस्ति प्राप्त हुई है, इसे मेरा सद्भाग्य एवं प्रेरणास्रोत मानता हुं ।

आजकल मन्त्रो की कैसेट मिलती है, जो पूर्णतया अशास्त्रीय है । अनुकरणशील मनीषायुक्त जनसामान्य में इसका प्रचलन बढ गया है, कैसेट का उपयोग स्तोत्रादि की उच्चारण शुद्धि या कण्ठस्थ करने तक ठीक है, यद्यपि आसनस्थ होकर साथ-साथ पाठ करना होता है । कैसेट विष्णुसहस्त्र पठति रहे और आप अपने कार्य में मस्त रहे तो, यह पाठ नहीं गिना जा सकता । लोग इससे ही अनुष्ठानादि करने लग गए है । **माला केवल संख्या का साधन नहीं है** - प्रायः आध्यात्म शिक्षा से दूर रहकर - वंचित रहकर, गुरू, दीक्षाक्रम, जप पद्धति, वर्णोच्चार आदि विषयमें हम अनभिज्ञ हो गए है । सामान्य उपासक वर्ग प्रयत्नशील है, यद्यपि उनकी स्थिति तैली के बैल जैसी है । पूरा दिन चलने पर भी वहीं के वहीं, कोई गंतव्य की प्राप्ति नहीं । जब कोई प्रयत्न तो करता ही है, तो उसके प्रयत्न को सुनियोजित, अर्थपूर्ण बनाना और साधक वर्ग को बिभुक्षित करके, शास्त्रतृषा-पिपासा बढाना, इस लेख का प्रधान आशय है । शास्त्र ही सत्पथ प्रशस्ति का - प्रयाण का सर्वोच्च माध्यम माना जाता हैं । शास्त्र पढना ही पर्याप्त नहीं है, शास्त्र जीवन का आधार है ।

धर्मशास्त्र में जिनका कोई अभ्यास नहीं, वे लोग उपदेशक बनेंगे तो क्या होगा ? फिल्म अभिनेता यदि बिना कोई अभ्यास, अर्थशास्त्र, संरक्षण या विदेशनीति में अपना निर्णय बताए, यह सर्वथा अनुचित ही होगा । कोई राजनेता पंडित बनके पुराणों की शिक्षा देगा तो क्या होगा, जो किसी श्लोक का अन्वयपूर्वक सामान्य अर्थ करनेमें भी असमर्थ हो, इससे अनुकरणशील मनीषावाले व्यक्ति मार्ग भ्रमित होते है । उपासक एवं जिज्ञासुओं के लिए, दिग्दर्शनार्थ यह लेख प्रकाशित करते है, क्योंकि - **अविज्ञाते परेतत्त्वे शास्त्राधीतिस्तुनिष्फला । विज्ञातेऽपि परेतत्त्वे शास्त्राधीतिस्तुनिष्फला - ५९॥** साथ साथ यह भी है कि - **शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमण कारणम् । अतःप्रयत्नाज्ज्ञातव्यं**

तत्त्वज्ञैस्तत्त्वमात्मनः - विवेक चूडामणि ६०। जैसे किसी व्यक्ति को मुंबई जाना हो, तो अनेक बाते जाननी आवश्यक होती है । कैसे जाए, कहां जाए, कहां रूके, ट्रेन का समयपत्रक, पहुंचने का समय, दर्शनीय स्थल इत्यादि । किन्तु जो मुंबई के बारे अच्छे से जानता है, इसे कोई मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है, कोई गाईड की आवश्यकता नहीं और जिसे मुंबई जाना ही नहीं है, उसे भी यह जानकारी निरर्थक है । दूसरी बात, पुस्तकोंमें, मार्गदर्शको के पास, बहूत सारी जानकारी उपलब्ध हो जाती है, तब भी प्रश्न उठता है, कोन-सा विकल्प उचित रहेगा, कौन-सा नहीं । यहीं बात उपासना क्रम में भी आती है । जिनको आध्यात्मिक उत्कर्ष या उपासना में कोई रस ही नहीं, उनके लिए ऐसे लेख से कोई मतलब नहीं है और जो विद्वान है, जिन्होंने शास्त्राभ्यास किया है, गुरूपसदन किया है, उनके लिए, मन समाहित करना सहज है ।

अब देखे तो, शास्त्रोमें बहूत बाते है, सभी को पढ़ पाना, पूर्णतया संभव नहीं है, उससे तो मन बहूधा संकल्प-विकल्पात्मक बन जाता है, भ्रमित हो जाता है । ऋषियों ने इतना संशोधन किया है कि, प्रायः सभी दृष्टिकोण से सत्य को आत्मसात् करना अतिसरल बन जाए । प्रत्येक तथ्य को अतिसूक्ष्मता से प्रकाशित करके, पूरे विश्वको हमारे महामनिषीओ नें उपकृत किया है । इस अवस्था में यह एक छोटा सा प्रयास, जिसमें वेदोपनिषद, पुराण, स्मृति व तंत्रागम ग्रंथो का समन्वयात्मक अभ्यास है ।

आचार्यात्पादमाद्त्ते पादंशिष्य स्वमेधया, कालेन पादमादत्ते पादं स ब्रह्मचारिभिः।। कुछ बाते विद्याकाल में, शिक्षा दरम्यान समझ आती है । कुछ- विद्वद्वर्ग जब परस्पर चर्चा करते है, तब समझ में आती है । कुछ विद्वानों की शरणागति से पूछने पर, तो कुछ सहपाठीयों के साहचर्य से, कुछ योग्यता प्राप्ति के बाद, परिपक्वता के बाद, तो कुछ दीक्षान्तर्गत उपासना से और मन्त्रशास्त्र तो अति गहन विषय है । हमारे महान् ऋषियों ने वर्षो की तपस्या के उपरान्त जो प्राप्त किया है, उसे समझने या आत्मसात् करनेकी क्षमता इस स्वल्प प्रयास में करना अति दुष्कर है ।

जैसे, अमावास्या की रात्री में कहीं तीन-चार किलोमीटर दूर गंतव्य पर जाना है, मार्ग दिखता नहीं, क्या करें ? हां, हमारे पास एक टोर्च है, किन्तु इसका प्रकाश तो नौ-दश मीटर से ज्यादा दूर नहीं जा सकता, कोई बात नहीं चलना प्रारम्भ तो करे, क्योंकि, प्रत्येक नौ मीटर से आगे के नौ मीटर दृष्टिगोचर होंगे । गन्तव्य आ जाएगा । **स्वल्पोपि दीप कणिका बहुलं नाशयेत्तमः** एक छोटे से दिपक से बहोत सारा अन्धकार दूर होता है, प्राप्य पदार्थ दिखने लगता है - ऐसा ही यह एक छोटा सा प्रयास है, जिसमें कुछ पौराणिक कथानक है, कुछ आगम-निगमका, तंत्र-योग का आश्रय है, तो कहीं कहीं विद्वानों के मत भी है । इसी के साथ अब मूल विषय पर प्रशस्त होते है ।

वेद - वाक् का प्रागट्य - अब ब्रह्मविद्या, वाणी, वेद, वर्ण, अक्षर, मन्त्र आदि के प्रागट्य के विषय में चर्चा,एक कथा प्रसंग से प्रारम्भ करेंगे।

एक कालमें, ब्रह्मलोक में, ब्रह्माजी अपनी सभा में बैठे थे । देवी ब्रह्मविद्या ने आकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और निवेदन किया कि, उन्हें मृत्युलोकमें जानेका संकल्प हुआ है । ब्रह्माजी प्रसन्न होकर बोले - देवी, आपका संकल्प अति शुभ संकेत देता है । अब अनेक प्रश्न हुए, जैसे कि कहां अवतरण होगा, कैसे होगा, कौनसा स्वरूप होगा इत्यादि । इस चर्चा के दरम्यान ब्रह्माजीने सूचक दृष्टि से भगवति सरस्वति के प्रति संकेत किया, और अचानक ही भगवति की तर्जनी का वीणा को श्पर्श हुआ । वीणा से झंकार ध्वनित हुआ और समस्या का समाधान भी मिल गया । भगवति वाणी स्वरूप में प्रगट होगी । अब स्थान एवं कुल कौनसा होगा ? इसका भी समाधान हो गया । सुदीर्घ काल से पृथ्वी पर ऋषि - मुनि व्रत-तप-अनुष्ठान कर रहे है । इनका तन-मन सब पवित्र एवं निर्मल बन चुका है । इनके अन्तःकरण से ज्यादा पवित्र स्थान कहां हो सकता है । समाधिस्थ अवस्था में जब महर्षिगण, पूर्णतया परमात्माको समर्पित हो, तब वाणी के साहचर्य से, ऋचा के रूपमें प्रकट होना अति शुभ संकेत है । इस प्रकार ब्रह्मविद्या-वाक् का ऋचाओं के रूपमें प्रागट्य हुआ ।

अन्य एक कथानक इस प्रकार भी है । अध्यात्म की अध्येता ऋषिकुमारी वाक् कौशिकी नदी के तटपर प्रकृति के सौन्दर्य का रसास्वादन कर रही थी । अचानक ही आकाशमण्डल में मेघकालिमा छा गई । तेज वायु के प्रचण्ड प्रवेग में वृक्षों का स्थिर होना सर्वथा असंभव था । विद्युत के साथ मेघ गर्जना को देखकर मन में प्रश्न हुआ - ये कौनसी शक्ति है, यह विद्युततेज एवं मेधगर्जना का स्रोत कौन है । कहां से जल आकाश मण्डल में जाकर, बीना किसी आधार स्थिर होता है । इतना तेज प्रकाश, तीव्र वायु, गगन में जल का समुद्र, पृथ्वी कि सुगंध, ये कौनसी शक्ति है और कहां से आ रही है । इस महाशक्ति के स्रोत का अनुसंधान - चिन्तन मन में प्रारम्भ हो गया ।

विदुषी वाक् महर्षि अम्भृण की पुत्री थी । स्वयं तपस्विनी एवं पवित्र व्यवहारवाली थी । प्रश्नार्थ मुद्रा से उसने पिता की तरफ देखा । पिताजी समझ गए । उसे ब्रह्मज्ञान का आस्वादन कराया एवं तपमार्ग के प्रति प्रशस्त किया । तपसे सुपक्व प्रज्ञा में, ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में, अणु में विलसित चिद्विलास का दर्शन हुया । वाक् ने उग्र तपस्या से दिव्य ऊर्जा को आत्मसात् किया और स्वयं तप से अग्निरूपा बनकर पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गई । आज भी वह दिव्य तेजरूपा वाक् प्रतिष्ठित है । ऋग्वेद में इसकी संगति इस प्रकार है - परोदिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव (ऋग्. वागाम्भृणी) ।

इस दोनों कथानकों के पुष्टिकर कुछ प्रमाण वेद एवं ब्राह्मण ग्रंथो में निम्नानुसार है ।

त्वामग्नेपुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः - सामवेद । मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयम् । वाग्वै देवान् मनुष्यान्प्रविशन्तयैत्तस्या यदत्यरिच्यत तद्वनस्पतीन् प्राविशत् सैषा वनस्पतिषु वाग्वदतिया दुन्दुभौ या नाड्यां या तूणवे यद्दण्डो भवति वाच एवातिरिक्तमवरुन्द्धे तंमैत्रावरुणाय प्रयच्छति वाचमेवास्मै तत् प्रयच्छति - काठ.सं. २३.४ । वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवः ...। वाक् च वा एष प्राणश्च ग्रहो यदैन्द्रवायवः .. । वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुरित्याह प्राणो वा आयुः प्राणो रेतो वाग्योनिः योनिं तदुपसंधाय रेतः सिञ्चति - ऐ.ब्रा.२.३८ वाग्वै ब्रह्म - ऐ.ब्रा.६.३, जै.ब्रा.१.१०२। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौप्राविशन् .....। चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत् - ऐतरेय ब्राह्मण २.४.२ ।

सारांश - वाक् ब्रह्म है । अग्नि ने वाक् बनकर मुख में प्रवेश किया । नाक में वायु होकर देवता-प्रविष्ट हुए । सूर्य ने नेत्रों में निवास किया।दिग्पाल कानों में प्रवेश कर गये। चन्द्रमा मन बनकर हृदय में समाया, वाक् ही ग्रह-प्राण-नक्षत्रों का रूप है । यदि हम देव, वेद मन्त्र, वाक्, जप, स्वर के तात्विक स्वरूप को समझ सके, तो निस्सन्देह मन्त्र शक्ति के अद्भुत चमत्कार, मूर्तिमान होकर सामने आसकते है । मन्त्र दर्शन के समय ऋषि अपने व्यक्तित्व से स्वतन्त्र थे, ऋचाओं के रूप में, कोई दैवी शक्ति द्वारा ही उनका प्रादुर्भाव हुआ हैं ।

वाग्वै देवान्मनुष्यान्प्रविशन्तयैत्तस्या यदत्यरिच्यत तद्वनस्पतीन् प्राविशत् सैषा वनस्पतिषु वाग्वदतिया दुन्दुभौ या नाड्यां या तूणवे यद्दण्डो भवति वाच एवातिरिक्तमवरुन्द्धे तंमैत्रावरुणाय प्रयच्छति वाचमेवास्मै तत् प्रयच्छति-काठ.सं. २३.४, वाक्च प्राणश्चैन्द्रवायवः। वाक्च वा एष प्राणश्च ग्रहो यदैन्द्रवायवः । वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुरित्याह प्राणो वा आयुः प्राणो रेतो वाग्योनिः योनिंतदुपसंधाय रेतः सिञ्चति - ऐ.ब्रा.२.३८ । **वाग्वै ब्रह्म** - ऐ.ब्रा.६.३, जै.ब्रा.१.१०२। **देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः** पशवो वदन्ति - ऋग्वेद ८.१००.११ । **वाचं धेनुमुपासीत** । तस्याश्चत्वार स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकार स्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारंमनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः - शतपथब्राह्मण - १४.८.९.१ वाग्वैवसिष्ठा -मा.श. १४.९.२.२, शां.आ.९.२ । यदामागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः- ऋग्.१.१६४.३७ । एकाक्षरा वै वाक् । सरस्वतीं (आमयाविनः) वाक् (गच्छति) -तै.सं.२.३.११.१।

सभी प्रमाणों का सारांश इस प्रकार है की, भगवति वाक् का ऋचा रूपेण (वेदों के रूप में) स्वतः प्रागट्य हुआ है । उस वाक् स्वरूपा कामधेनु के चार स्तन हैं - स्वाहा, स्वधा, हन्त, वौषट् जिसमें से स्वाहा-वषट् दो स्तन देवों को पुष्ट करते हैं, स्वधा से पितृओं ऐवं हन्त से मनुष्यों को पुष्टि मिलती हैं, प्राण उनका स्वामि हैं, मन वत्स हैं । प्राक्संवित्प्राणे

परिणता - प्राण का संवित् दो प्रकार का हैं, जो स्पन्दन का आधार हैं - स्पन्दात्मक या स्वाभाविक - प्रयत्नजन्य या क्रियात्मक । यह स्पन्दात्मक शक्ति से सामान्य भाषा का व्यवहार होता हैं, जबकि, प्रयत्नजन्य किसी विशेष सिद्धि हेतु प्रयोजित किया जाता है, उदाहरणार्थ शंखनाद, घण्टारव, वेदघोष का प्रयोजन पर्यावरणस्थित प्रदूषणों को दूर करके, उसे मंगलमय, ऊर्जावान बनाने का, सकारत्मकता का उद्दिपन करनेका हैं । यज्ञादि एवं विवाहादि मंगल कार्यो मे इसी प्रयोजन से मृदंग, वीणा, भेरी, झालर, शहनाई जैसे मंगलवाद्यो का उपयोग प्रचलित है, मन्त्र रूप में पूरे ब्रह्माण्ड का विज्ञान घोषित होता है ।

मन्त्राणांमातृका देवी शब्दानांग्यानरूपिणी । ग्यानानां चिन्मयानन्दा शून्यानां शून्यसाक्षिणी ।। भावार्थ - सब मन्त्रोंमें मातृका मूलाक्षर रूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें ग्यान रूपसे रहनेवाली, ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी - देवीअथर्व.२४।। **ऋचोअक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वेनिषेदुः** । यस्तंन वेद किम् ऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुः त इमे समासते - श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.८ ।। **यस्मिन्परमे व्योम्नि अक्षरे वेदाः प्रतिष्ठिताः, सर्वे देवाश्च प्रतिष्ठिताः सन्ति**, तं परमात्मानं यः मूढः न जानाति, स केवलेन शुष्केण वेदाध्ययनेन किं करिष्यति ? ये तद् ब्रह्म स्वात्मत्वेन विदुः ते सन्तृप्ताः सन्तः अमृता भवन्ति । स्वरेण सल्लयेद् योगी - त्रिपुरतापिन्युपनिषद् ५.७।। स्वरेण सन्धयेद् योगम् - ब्रह्मबिन्दूपनिषद् ७।। अर्थात् - स्वर के माध्यम से योग साधना करनी चाहिए । स्वरन्ति घोषं विततं ऋतायवः - ऋग्. ५.५४.१२।।

इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र संव्याप्त ब्रह्मघोष को, योगवेत्ता स्वर के रूप में परिणत करते है । वाक्शक्ति को अग्नि भी कहा गया है । यह अग्नि सर्वत्र तेजस्विता,ऊर्जा,प्रखरता एवं आभा उत्पन्न करती है । इसलिए वाक् अग्नि भी है । बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः । यदेषां श्रेष्ठंयदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः - ऋग्.१०.७१.१।। **यज्ञेन वाच: पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्** - ऋग्वेद १०.७.१३ ।। **त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः ।** ऋग्.६-१६-१३, यजु. १५-२२।। अतःसृष्टि के आरम्भमें विभिन्न पदार्थो के नामकरण की इच्छावाले ऋषियों ने जो वचन उच्चारित किए वह वाणी का आदि स्वरूप (वेद) था । परमात्मा की प्रेरणा से ही इनकी हृदयगुहा में ज्ञान प्रकट हुआ । वाणी की खोज यज्ञ से की गई है । उसे ऋषियों में प्रविष्ट पाया गया । इस प्रकार ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति हुई है ।

श्रुति एवं वेदों के विषय में लिखा है - वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूः इति शुश्रुम - भाग. । अस्य महतो भूतस्यनिश्वसिततमतद्यतृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वाङ्गिरसः बृह.२.४.१०, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै - श्वेता.६.४ । मनुस्मृति कहती है - श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेय:- ६, आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभि: सर्वा: सत्यविद्या: श्रूयन्ते सा

श्रुति: । वेद कालीन महातपा सत्पुरुषों ने समाधि में जो महाज्ञान प्राप्त किया और जिसे जगत के आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये प्रकट भी किया, उस महाज्ञान को श्रुति कहते है। वेद परमात्मा के निश्वास से प्रकट हुए है और वेद स्वयं नारायण स्वरूप ही है । वेद चार है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ।

वेदों का अपौरूषेयत्व - वेद स्वयंभू है, जिसे प्रथम ऋषियोंने सुना - यथा उसे श्रुति भी कहते है । श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च । तन्त्र-वेद का अनुपम सम्बन्ध है । मुख्य तन्त्र तीन माने गये है - महानिर्वाण तन्त्र, नारदपाञ्चरात्र तन्त्र, कुलार्णव तन्त्र । वेद के भी दो विभाग है - मन्त्र विभाग और ब्राह्मण विभाग - वेदो हि मन्त्रब्राह्मणभेदेन द्विविध: । वेद के मन्त्र विभाग को संहिता भी कहते है । संहितापरक विवेचन को आरण्यक एवं संहितापरक भाष्य को ब्राह्मण ग्रन्थ कहते है । वेदों के ब्राह्मण विभाग में आरण्यक और उपनिषदका भी समावेश है।

आगे दिए गए प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि वेद की ऋचाओं का प्रागट्य स्वतः हुआ है, जिस प्रकार मेघगर्जना का रचनाकार कोई नहीं है, वे प्राकृतिक ही है, जैसे प्राकृतिक वायु संचार, समुद्र का गूंघराव, वृक्षोमें से आवाज का कारण महाप्रकृति होती है, उनका सर्जन (प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में भी) मानव निर्मित नहीं हैं । ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । सर्वेवेदाः, सर्वे देवाश्च परस्मादेव आत्मनः जाताः सन्तः परमात्मन्येव प्रतिष्ठिताः सन्ति । परं ब्रह्मैव समस्तस्यापिविश्वस्य आस्पदभूतं कूटस्थं तत्त्वम् । सर्वाणि वेद वेदान्त शास्त्र पुराणानि तमेवपरमात्मानं प्रतिपादयन्ति । परब्रह्मणः विज्ञानमेव परमं लक्ष्यम् - यथा ब्रह्मविद्या एवं वेदों का प्रागट्य स्वयं ही हुआ है । वेद अपौरूषेय है ।

अन्य विचार से, वाणी के चार दोष है - भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, कर्णापाटव । भ्रम कहते है - किसी वस्तु को न पहचान करके दूसरा रूप समझना, जैसे शुक्ति में रजत या रज्जू में सर्प देखना । मन की असावधानी, आलस्य - किसी बात तो विलम्बित को प्रमाद कहते है । बड़े-बड़े बुद्धिमानों में भी उपरोक्त दोष होता है । तो मन की असावधानी, ये प्रमाद है । विप्रलिप्सा कहते है, अपने दोष को छुपाना । हर चीज में दखल देने को अहंकार कहतेहै । स्वयं के दोष छुपाना विप्रलिप्सा कहते है । अनुभवहीन होने पर भी अपने को अनुभवी सिद्ध करना यह कर्णापाटव है । कुछ इन्द्रियजन्य दोष है, नेत्र ने जो देखा या कान ने जो सूना वही सत्य मानना - नेत्र गलत भी देखती हैं, जैसे सूर्य को छोटा, प्रवास में वृक्षो व पर्वतो को दौडते देखना भ्रम है, यह है करणापाटव । इसका यदि कोई रचनाकार होता तो उसमें उपरोक्त करणापाट - विप्रलिप्सादि वाणी के दोष आ ही जाते, किन्तु वेदों में ऐसा नहीं पाया जाता ।

आथर्वणायाश्विनादधीचेश्व्यंशिरः प्रत्यैरतम् । (ऋग्वेद १.११७.२२) । बृहदारण्यकोपनिषद से संकलित यह कथा है । संक्षेप में - दध्यंग ऋषिने, अश्वनी कुमारोंको घोडे के मुख से ब्रह्मविद्या का उपदेश किया । यदि ब्रह्मविद्या - वेदों को किसी मानव के विचारों की प्रस्तुति मानेंगे, तो बिना मानवशीर्ष उपदेश करना संभव नहीं था, अश्व के मुख द्वारा ही हृदयस्थ ब्रह्मविद्या को स्वरित किया । परमात्मा ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान का स्थान सर्वत्र है, बुद्धि व विचारों का स्थान मस्तिष्क है, यथा वेदों को बुद्धि की उपज मानेंगे तो बिना मानव मस्तिष्क कहना असंभव होता । हमारे विचार, संकल्पादि की प्रस्तुति हमारी वाणी के द्वारा होती है, जब हमारा मष्तिष्क ही न हो तो, प्रस्तुति में हमारे विचार या बुद्धि का अंश कैसे आ सकता हैं । ऋषिने ब्रह्मविद्या को अश्वमुख से कहे है, यथा वेदों की अपौरूषेयता स्वयंसिद्ध है ।

सारांश यही है कि ऋचाओं के रूपमें वेदों का प्रागट्य हुआ है एवं आर्षदृष्टा ऋषियोंने उस दिव्यज्ञान को तप द्वारा आत्मसात् किया । वे तो मात्र मंत्रो के अर्थ एवं शक्ति को आत्मसात् करके मंत्रो के दृष्टा बन गए ।

कुछ विचारक वेदों को मानव रचित मानते है । उनका आधार है कि - **नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो** (तैत.आ.४.१.१ व शाङ्खा.आ.७.१) और ऐसी ही उक्ति ताण्ड्य व ऐते. ब्राह्मण में भी है । प्रथम दृष्टि में यह लगता है कि मन्त्र के रचनाकार ऋषिगण है । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि बहुत सारे सुक्त ऐसे है, जिनके दृष्टा से पूर्व भी वहीं सुक्त विद्यमान थे । जैसे कि, **अयं सोऽग्नि**. ऋग्.३.२२ के ऋषि विश्वामित्र है, किन्तु सर्वानुक्रमणी से सिद्ध होता है कि, यही सूक्त उनके पिता गाधी के समय में भी था । ऐसे कई सूक्त है । एक ही सूक्त के वेदान्तर में एक से ज्यादा ऋषि भी है, अब एक ही पूरे सूक्त के दो रचनाकार तो नहीं हो सकते । महर्षि जैमिनिने **आदाने करोति शब्दः** ४.२.६ । **करोति** शब्द का अर्थ ग्रहण करना माना है । **यज्ञादौ कर्मण्यनेन मन्त्रेणेदं कर्म तत्कर्तव्यमित्येवं रूपेण यो मन्त्रान्करोति व्यवस्थापयति स मन्त्रकृत्** - यज्ञादि कर्मो मे इस मन्त्र से इस कर्म को करना चाहिए, ऐसी जो व्यवस्था करता है-विनियोग करता है, वही मन्त्रकृत् कहने का तात्पर्य है । निरक्ति में, महर्षि यास्क व औपमन्यवाचार्य का भी मत है कि, कर्ता का अर्थ दृष्टा ही है । **ऋषयः मन्त्र दृष्टारः** - ऋषि मन्त्र के दृष्टा ही है । मन्त्रो में निहत अर्थ व शक्तियों को जिन्होंने आत्मसात किया वे ऋषि उस मन्त्र के दृष्टा बने अन्यथा उसमें वाणी के विप्रलम्भकर्णापाटवादि चतुःदोष दिखते ।

(Apple) सेव के नीचे गिरने की क्रिया को देखकर न्यूटन ने कार्य-कारण संबंध प्रस्थापित किया, जिसे गुरूत्वाकर्ण का सिद्धान्त कहते है, किन्तु गुरूत्वाकर्षण शक्ति तो इसके पूर्वसे भी विद्यमान थी, और पहले भी सेव पकने पर पृथ्वी पर ही गिरता था । न्यूटन तो इस गुरूत्वाकर्षण शक्ति के दृष्टा ही हुए है । वनस्पति सजीव तो पहले भी थी, लेकिन सर जगदिशचन्द्र ने उसका प्रायोगिक रूप से हमे दर्शन कराए ।

वेदों एवं गीतोपनिषनादि का वैश्विक होना - वैदिक वाङ्मय की स्विकृति अब वैश्विक ग्रंथो के रूप में हो रही है, क्योंकि यह साहित्य में पूरे ब्रह्माण्ड के कल्याण की बात निहित है । **कीटादि ब्रह्म** पर्यन्त सब के कल्याण की बातों का उल्लेख यहां मिलता है । शष्या, याज्या या पुरोनुवक्या सभी मंत्रो में सार्वत्रिक उत्थान की ही प्रार्थना गाई है । कोई एक देश, काल, जाति या योनि की बात नहीं है, जैसे कि भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा, भद्रं पश्येम, समानी वः आकूति, संगच्छध्वम्, द्योः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवीशान्तिः इत्यादि में हम सबका कल्याण हो, हम सब मिलकर उन्नत बने - न केवल हिन्दु, न केवल भारतीय, न केवल पुरूष, अरे..मानव ही नहीं पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर, खेचर, वृक्ष, मानव-दानव आदि समग्र ब्रह्माण्ड की बात गाई है - नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च । अपरजाय च, मध्यमाय च । बुध्नाय च, जघन्याय च, सबका आदर बडा-छोटा, अपर-मध्यम, बुध-अबुध, जघन्य अपराधि हो सबको नमन - सबका आदर । हमने तो पूरे ब्रह्माण्ड को एक परिवार माना है - वसुधैव कुटुम्बकम् और इसलिए तो कहते है सूरजदादा, धरतीमाता, चांदामामा इत्यादि । गीता में भी सर्वत्र श्रीभगवानुवाच है - कहीं भी कृष्ण उवाच नहीं हैं - यह पूरे विश्वके लिए है ।

कोई मानव भारत में हो या अमरिका में, चीन में या श्रीलंकामें, आफ्रिका में हो या ओस्ट्रेलिया में, सब को दो आंखे, दो हाथ इत्यादि समान अंग होते है, सबका पचनतंत्र, श्वसनतंत्र, उत्सर्जनतंत्र, रूधिराभसरण एवं यकृत एक जैसे ही काम करता है । पक्षी - वृक्ष का सामान्य स्वरूप एक जैसा ही है । कौए क्राउ-क्राउ करते है व काले होते है, गाय दूध देती है, वृक्षों के पांव नही होते, भेंस भारत में होया आफ्रिका में दो शिंग ही होते है । जीव मात्र में एक जैसी क्षुधा-तृषा-काम-भय-निद्रा की ऊर्मियां होती है, जो धर्म - संप्रदाय - जाति निरपेक्ष होती है । सूर्य - चन्द्र - वर्षा - ऋतुए भी कभी नाम, देश, जाति पूछकर अपनी शक्ति प्रभावित नहीं करते । यथा इस समस्त ब्रह्माण्ड का सर्जनहार एक ही है, हम किसीका नाम नहीं देते ।

यही बात आर्षग्रंथो में पूर्णरूपमें स्विकृत करी है । इस सत्यको हमारे महान ऋषियोनें वेदकाल में आत्मसात किया था और सिद्ध किया था कि, समग्र ब्रह्माण्ड का रचनाकार ऐक हीं है - **एकोसद्विप्रा बहुधा वदन्ति**, इस नाते समग्र ब्रह्माण्ड एक परिवार है - कुछ इस प्रकार - **वसुधैव कुटुम्बकम्** का प्रथम विचार यहां उदित हुआ । गीता में भी कहीं कृष्ण नहीं बोलते - जो गीता में ज्ञान हैं, वो उपनिषदों का, वेदान्त का दोहन हैं और भगवान ने अपनी अवतारलीला से उपर की अवस्था में किया है, इसलिए वह वैश्विक भी है । गीतामें कोई बात ऐसी नहीं जो वैश्विकस्तर पर अस्विकार्य हो, चाहे बुद्ध हो, जैन हो, ईसाई हो, इस्लाम हो या यहूदी, गीता की बातों का प्रभाव सभी सभ्यता एवं सम्पदायों में कोई न कोई रूप में दृष्ट है । भगवान की व्याख्या भी उसी मे है - भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकार इतीयम्मे भिन्नाप्रकृतिरष्टधा ७.४।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिंविद्धि मे पराम् । जीवभूतांमहाबाहो ययेदंधार्यते जगत्- ४.५, ममैवांशो जीवलोकेजीव भूतसनातन ।। सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो ।। उत्पत्तिं प्रलयंचैव भूतानामा गतिंगतिम् ।। वेत्तिविद्यामविद्यांच सवाच्योभगवानिति ।। भूमि, जल, अग्नि,वायु, आकाश, मन, बुद्धि व अहंकार(विशुद्ध) ये सब मेरी (कोई नाम नही-परमात्मा की) प्रकृति है, इसी प्रकृति से पूरे संसार की रचना करके स्वयं इन सबमें ओपप्रोत है । कहीं उसे राम, दुर्गा, शीव, हनुमान, तो कहीं अल्लाह, जिसस कहते है, हम तो भागवत में, उसे **सत्य** कहते है **सत्यं परं धीमहि** - कोई नाम नहीं । जिसे भी हम इस - सृष्टा, नाम देना चाहे वो, जिसके कारण ऋतुए होती है, समग्र ब्रह्माण्ड ऊर्जावान् है, हमने तो उसे परम सत्य ही कहा है ।

सही बिनसाम्प्रदायिकता का दर्शन भी हमारे यहां होता है - श्रीमद्भागवतजी के मंगलाचरण में - **जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् । तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।। तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोमृशाः । धाम्नास्वेन सदा निरस्तकुहकंसत्यं परं धीमहि** ।। सारांश हमारे जन्म से पूर्व से जो है (अनादि), जिसकी शक्ति से समग्र ब्रह्माण्ड की उत्त्पत्ति, स्थित-पोषण, एवं संहार होता है - सर्वशक्तिमान्, जो किसी नवजात शीषु के, जन्म से पूर्व ही उनके योगक्षेम का विचार करके, उसकी माता के स्तनमें पयामृत भरता है - पक्षीयों को घोसला बनाना - आकाश विचरण करना सीखाता है, वह शक्ति । पशु-पक्षी-जलचर-स्थलचर सभी में आहार, विहार, मैथुन, भयादि का संचार करनेवाली महा शक्ति, जो तीनो काल में अबाधित है और विद्वान भी जिसे पूरा नहीं समझ सके, उस परम सत्य का हम ध्यान करते है । अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्य से पूर्णतः मुक्त रहनेवाले सत्यरूप परमात्मा का हम ध्यान करते है । यहां रामं परं धीमहि भी चल सकता था, किन्तु नहीं है । कृष्णं परं धीमहि - देवीं परं धीमहि भी नहीं है, ऐसा भी नहीं है कि भारत के लोगो का कल्याण हो, या सत्युग में जन्मे लोगो का कल्याण हो, केवल हिन्दुओं का, केवल पुरूषों का कल्याण ऐसा भी नहीं । पूरे ब्रह्माण्ड की बात है - सच्ची बिनसाम्प्रदायिकता, आजके भ्रष्ट राजनेताओं की तरह, जो अल्पसंख्यक, दलित, गोरे-काले, प्रदेशवाद, जातिवाद का विष भरकर, अपना स्वार्थ साधनेवाली बिन-साम्प्रदायिकता नहीं । इसी के कारण आज, युगो के बाद भी इस आर्षग्रंथो की पूजा होती है, शीर्ष पर रखे जाते है । आर्षग्रंथो में - रसो वै सः Chemistry, Quantum theory, Physics, न कालनिरपेक्षं Relativity - Time & Space, विद्युद्रथा रश्मिवन्ताः मरूतः, एकोसद्विप्रा बहूधा, Electron–Proton–Neutrons, E=MC२, Astronomy, एकाधिकेन पूर्वेण, एकाच मे तिस्रश्च में Vedic Maths, तस्माद् जिघ्रन्ति पादपाः वनस्पतिशास्त्र इत्यादि सब कुछ है, आवश्यकता है केवल सकारात्मक अभिगम एवं अभ्यासयुक्त अनुसंधान की । यहां ज्ञान है, विज्ञान है, यहां संगीत है, नृत्य है, यहां आयुर्वेद है, गणित है, भूगोल है, समग्र जीवो की आचार संहिता है - इसलिए ही ये वेदोपनिषद-गीतादि वैश्विक ग्रंथ है ।

वेदों के विषय में, अन्यत्र एक बात और भी है, **वेदांकूरो तंत्रबीजस्य, चतुःषट्यागमः प्रोक्तः पंचधानिगमस्तथा । यामलं च चतुर्धोक्तं तस्माच्छास्त्रं प्रकाशितं ।। यामलं च चतुर्धोक्तं तस्ममाच्छास्त्रं प्रकाशितम् । निगमादागमो जातः आगमाद्यामलो भवेत् ।। यामलाद्वेद उत्पन्नो वेदाज्जातं पुराणकम् । पुराणास्स्मृतिरूत्पन्ना स्मृतेः शास्त्राणि यानि च ।। मम पंचमुखेभ्यश्च पंचाम्नाय समुद्भूताः। पूर्वश्च पश्चिमश्चैव दक्षिणश्चोत्तरस्तथा । रूद्रयामलादि तंत्र ग्रंथेषु। उर्ध्वाम्नायच पंचैते मोक्षमार्गाः प्रकीर्तिता । सद्योजातास्तु ऋग्वेदो, वामदेवोयजुस्मृतः ।अघोरःसामवेदस्तु पुरूषोर्थव उच्यते । ईशानश्च सुरश्रेष्ठ सर्वविद्यात्मकः स्मृतः -** स्वच्छन्द पटल **११।**

शास्त्रीय ग्रंथो में स्मृति-पुराणों को अतिप्राचीन माना जाता हैं, उनकी मान्यता भी वेदतुल्य ही है, पञ्चमवेद ही मानते है । आत्मपुराणंवेदानां पृथगङ्गानितानि षट् । यच्चदृष्टंहिवेदेषु तद्दृष्टस्मृतिभिः किल ।। उभाभ्यां यत्तुष्टंहि तत्पुराणेषु गीयते । **पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्** ।।

सारांश - यथा वेदरूपी अंकूर का बीज तंत्रमें है । वेदो की उत्पत्ति भगवान शिव के मुखसे हुई है,परमशिव की अनंत शक्तियां है, किंतु मुख्यत: पाँच शक्तियां है - चित्, आनंद, इच्छा, ज्ञान, क्रिया । चित् का स्वभाव आत्मप्रकाशन है- ज्ञान । वस्तुत: चित् और आनंद परमशिव के स्वरूप ही है काश्मीर का शैव मत यही प्रतिपादित करता है । अपने को सर्वथा स्वतंत्र और इच्छा संपन्न मानना इच्छाशक्ति है । इसी से सृष्टि का संकल्प होता है । वेद्य की ओर उन्मुखता को ज्ञानशक्ति कहते है । इसका दूसरा नाम आमर्श है । सब आकार धारण करने की योग्यता को क्रिया शक्ति कहते है । शिवजी के पञ्चवक्त्र से चारो वेद एवं सभी वेदान्तादि विद्याओं का प्रागट्य हुआ है।

प्रथम निगम से आगम, आगम से यामल एवं यामल से वेद, वेदों से पुराणों का प्रागट्य हुआ है । इसलिए वेद को पिता एवं तंत्र को माता भी मानते है । सर्वेवेदाः सर्वे देवाश्च परस्मादेवआत्मनः जाताः सन्तः परमात्मन्येव प्रतिष्ठिताः सन्ति । परं ब्रह्मैव समस्तस्यापिविश्वस्य आस्पदभूतं कूटस्थं तत्त्वम् । सर्वाणि वेदवेदान्तशास्त्रपुराणानि तमेवपरमात्मानं प्रतिपादयन्ति । परब्रह्मणः विज्ञानमेव परमं लक्ष्यम्नित्यया वाचा - अर्थात् (नित्यारूप) वेदवाणी को आद्यवाणी कहा है - अर्थात् वैदिक संस्कृत यह सब वाणीयों(भाषाओ) में अग्र और प्रथम है - बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं - ऋग्वेद १०.७.१ । मनसा वा इषिता वाग् वदति - ऐ.ब्रा.६.५।।

वाणी के चार स्वरूप - अकारो वै सर्वावाक् सैषा स्पर्शान्तस्थोष्माभिर्व्यज्यमाना वन्ही नानारूपा भवति - ऐ.आ.२.३.१३ । प्रजापति मनके योग से बोले वही वाणी पूर्व ऋषियों ने योगावस्था में सुनी । यही परावाक् का, वैखरी तक उद्भम की प्रक्रिया कैसे होती है - देखो, वाणी कहां से उत्पन्न होती है, इसकी गहराई में जाकर अनुभूति की

गई है । इस आधार पर पाणिनी कहते है, आत्मा वह मूल आधार है जहां से ध्वनि उत्पन्न होती है । वह इसका पहला रूप है । यह अनुभूति का विषय है । किसी यंत्र के द्वारा सुनाई नहीं देती । ध्वनि के इस रूप को परा कहा गया।आगे जब आत्मा, बुद्धि तथा अर्थ की सहायता से मन: पटल पर कर्ता, कर्म या क्रिया का चित्र देखता है, वाणी का यह रूप पश्यन्ती कहलाता है । परावाङ्मूल चक्रस्था पश्यन्ती नाभि संस्थिता । हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा ।। परावाक् का स्थान मूलाधार है, पश्यन्ती का नाभि, मध्यमा का हृदय एवं वैखरी का कण्ठदेश है । प्रथमे वैखरी भावो-मध्यमा हृदये स्थिताभ्रूमध्ये पश्यन्ती भाव:पराभाव स्वद्विन्दुनी ।। सूतसंहिता के यज्ञवैभव खंड में कहा गया है - मन्त्राणां मातृभूता च मातृका परमेश्वरी । बुद्धिस्थामध्यमाभूत्वा विभक्ता बहुधा भवेत् ।। सा पुनः क्रमभेदेन महामन्त्रात्मना तथा।। मन्त्रात्मना च वेदादिशब्दाकारेण च स्वतः । सत्येतरेण शब्देनाप्याविर्भवति सुव्रताः।। मातृका परमादेवी स्वपदाकारभेदिता । वैखरीरुपतामेति करणैर्विशदा स्वयम् ।। परापश्यन्त्याद्यवस्थातः प्राक् बिन्दु नादाद्यात्मकं यन्मातृकायाः सूक्ष्मं रूपम् - तन्त्रालोक-२३३ में बीजयोनि समापत्तिर्विसर्गोदय सुन्दरा । मालिनी हि पराशक्तिनिर्णीता विश्वरुपिणी ।। यानि यहीपरा शक्ति सम्पूर्ण विश्व को अपने रुप में धारण करती है एवं अन्तर्भूत भी है।महानिर्वाण तन्त्र -उत्तमोब्रह्मसद्भावो यह परावाक् नाम अन्तिम स्थिति है । शिव-शक्ति की सायुज्यता हैं - द्वैतका प्रथम चरण ।

सर्जन का प्रथम चरण ज्ञान है, दूसरा इच्छा है, तीसरा चरण क्रिया हैं । जैसे हमे कोई यन्त्र या मकान बनाना है तो सर्व प्रथम इसे बनाने का ज्ञान होना चाहिए, फिर कैसा बनाना है उसका पूरा चित्र मानस पर निश्चित होना चाहिए और अन्त में उसे हम क्रियान्वित करते है, जैसे मकान बनाने के लिए इन्जीनीयर को मकान बनाने का ज्ञान होना आवश्य है, फिर वो मकान का चित्रण मन में करता हैं, इसके बाद कागज पर नक्शा बनाता है और अन्त में मकान निर्माण का प्रारम्भ करता है । हम जो कुछ बोलते है, पहले उसका चित्र हमारे मन में बनता है। वाणी का आद्यरूप परा शक्ति के रूपमें हमारे भीतर है ही । जब वो साकृत होने की चेष्टा करता है तो, इस कारण दूसरा चरण पश्यन्ती कहते है । इसके आगे मन व शरीर की ऊर्जा को प्रेरित कर न सुनाई देनेवाला ध्वनि का बुद्बुद् उत्पन्न करता है । वह बुद्बुद् ऊपर उठता है तथा छाती से नि:श्वास की सहायता से कण्ठ तक आता है । वाणी के इस रूप को मध्यमा कहा जाता है । ये तीनों रूप सुनाई नहीं देते है । इसके आगे यह बुद्बुद् कंठ के ऊपर पांच स्पर्श स्थानों की सहायता से सर्वस्वर, व्यंजन, युग्माक्षर और मात्रा द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में वाणी की अभिव्यक्त होता है। यही सुनाई देने वाली वाणी वैखरी कहलाती है और इस वाणी से ही सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञान, जीवन व्यवहार तथा बोलचाल की अभिव्यक्ति संभव है।

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। ब्रह्म अनादि अनंत है, उसका क्षरण नही होता । बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी।

वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता । इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता - योगिनीहृदय । ब्रह्मकृता मारूतेना गणेन- ऋग्.३.३३.२। देवीं वाचमजनयन्त देवाः ऋग्. ८.१००.११ । वाक् मंत्र करनेवाले मरूतगण के साथ, देवी को, देवोंने उत्पन्न किया । ज्ञान का वाणी के रूप में प्रागट्य स्वतः मानते है, तंत्र शास्त्र कहता है कि शब्द के उद्भम या अभिव्यक्ति होने का क्रम बिंदु-नाद-बीज है । भगवान शिव, अर्थ के प्रतिक है और वे स्व-स्वरूप में अवस्थित होने से निष्कल है । जब वे प्रगट होना चाहते है, तब स्वशक्ति के आश्रय से विक्षोभ उत्पन्न करते है । **परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधासौ भिद्यते पुनः। बिन्दुर्नादबीजमिति तस्य भेदाः समीरताः ।। सोन्तरात्मातदादेवि नादात्मा, नदतेस्वयं ।। यथा संस्थानभेदेन भूयोऽसौवर्णतां गतः। वायुना प्रेर्यमाणोऽसौ पिण्डाद्व्यक्ति प्रयास्यति ।।** जो नाद ध्वनि - स्फोट या वैखरी रूपेण, वायु के सहारे, प्रकाशित होते है । उपांशु जप में आंतर्स्फोट होता है । भर्तृहरि कहते है - **आत्मा बुद्ध्या समेतार्थान्मनोयुंक्ते वियक्षया । मनःकामायाग्निमहन्ति सप्रेरियतिमारूतम् ।। मारूतस्तूरसिचरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।।** अतः बोलने के लिए सबसे पूर्व आत्मा(शिव) अर्थरूप मे है । फिर बोलने की इच्छाशक्ति से बुद्धि एवं मन से युति करता है । मन कार्यशक्ति द्वारा आघात करता है और अग्नि के माध्यम से वायु विस्तारित होता है, वायु हृदय प्रदेश में प्रवेश करके विचरण करने लगता है और स्वर स्वरित होते है । **ध्वनिरूपा यदास्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात् । प्रसरत्यतिवेगेनध्वनिनापूरयन् जगत् । सनादो देवदेवेश प्राक्तश्चैवसदाशिवः** - नेत्रतंत्र २१.६२-६३, विज्ञानभैरवेपि । मन्त्रो देवाधिष्ठितोऽसावक्षर रचनाविशेषः - देवता से अधिष्ठित यह एक अक्षर रचना विशेष है । वर्णो की जो आकृतियां है वह वर्णो के यंत्र है, विग्रह है, शरीर है - जो शक्ति का निवास भी है ।

वाणी के इस चार स्वरूप के विषय में - **चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण: गुहा त्रीणिनिहिता नेङ्गयन्ति तुरीयंवाचो मनुष्या वदन्ति-** ऋग्.१.१६४.४५ । अर्थात् वाणी के चार पाद होते है, जिन्हें विद्वान मनीषी जानते है। इनमें से तीन शरीर के अंदर होने से गुप्त है परन्तु चौथे को अनुभव कर सकते है।

इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए पाणिनी कहते है, वाणी के चार पाद या रूप है । **चत्वारि श्रृंगास्त्रयो अस्य पादा: द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश-** यजुर्वेद ।। भगवान् पतंजलि ने इसकी जो व्याख्या की है, उसकेअनुसार एक वृषभ है, जिसके चार श्रृंग-चार, पद-समूह (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) है।तीन पैर है-तीन काल (भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्) इन तीन कालों के बोधक है लट् आदिप्रत्यय, स्वयं काल नहीं, क्योंकि काल की पादत्व-कल्पना अयुक्त है, (वे अखण्ड काल से हैं, उनका प्रारम्भ या अन्त किसी को ज्ञात नहीं है) । कारण कि काल वर्णरूप नहींहै, इसलिए उसमें शब्द के अवयव पाद की कल्पनानहीं हो सकती । द्वे शीर्षे=दो शिर है यानी दो प्रकारके शब्दात्मा-नित्य और कार्य, जो नश्वर है । वैखरीरूप ध्वनि कार्य और अनित्य है तथा आन्तर प्रणवरूप स्फोट या शब्दब्रह्म नित्य है । सप्त

हस्तासोअस्य=इसके सात हाथ है सात विभक्तियाँ।त्रिधा बद्धः= यह तीन स्थानों में बद्ध है । उरसि, कण्ठे, शिरसि च-हृदय, कण्ठ और शिर में।वृषभ इति=वृषभ के रूप में यहाँ शब्दब्रह्म कानिरूपण है । वर्षणाद् वृषभ: - वर्षण करने से यहवृषभ है । वर्षण से तात्पर्य है, ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान से फल प्रदान करना । रोरवीति यानी शब्दं करोति, शब्द करता है । शब्द्यते ब्रह्मस्वरूपे स्फोटात्मके शब्दे भासते विवर्त्तते इति शब्द: - ब्रह्मस्वरूप स्फोटात्मक शब्द में जो विवर्त्तन रूपभासित हो, वह शब्द है । अन्यत्र श्रुति एवं शास्त्र प्रमाणों से भी व्यक्त एवं परोक्षतया वर्णोत्पत्ति - नाद - शब्द की उत्पत्ति ऐसे ही बताई गई है । श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यःप्रयोगेणाभिज्वलितः आकाशादेवदेशः शब्द - महाभाष्य अ.१.पा.१.सू.२.आ.२।

वर्णोच्चारण शिक्षा में भी यही है - आकाशवायुप्रभवः शरीरात्समुच्चरन्वक्त्रमुपैति नादः । स्थाननान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ।। वर्णा अक्षराणि इति वर्णोच्चार शिक्षा । नेत्रतंत्र एवं विज्ञान भैरव में भी यही संकेत है । ध्वनिरूपा यदा स्फोटस्त्वदृष्टाच्छिववविग्रहात् । प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनापूरयन् जगत् । सनादो देवदेवेश प्राक्तश्चैव सदाशिवः ।। ने.त.२१.६२-६३, विज्ञानभैरवेपि । समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कारण भी यही नाद-शब्द ब्रह्म को स्वीकार करते है - **बीजभावस्थितंविश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी । वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता। इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता** - योगिनीहृदयतन्त्र । अब ब्रह्म (शिव) की शक्ति है - वो परा है, वह वाक् का मूल स्वरूप है, जिसे परादेवी भी कहते है, उनकी जो इच्छा-क्रिया-ज्ञान शक्ति है, वही पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी का रूप है । आगे चलकर, ब्रह्म और वाक्, वाच्य और वाचक, व्यंग्य और व्यञ्जक तथा पति और पत्नी की भांति अलग-अलग हो जाते है, और एक दूसरे से दूर भागते है(**साऽस्मादपाक्रामत**), वाक् ब्रह्म को, वाचक वाच्य को, व्यञ्जक व्यंग्य को प्रायः छोड देते है, क्योंकि शक्तिमान् के विपरीत शक्ति स्थूल रूप धारण करने लगती है, ब्रह्म व शक्ति में द्वैत होता है । उदाहरण के लिए यदि मुख से शब्द उच्चारण करने की प्रक्रिया को लें, तो तृतीय अवस्था में यह शक्ति केवल मानसिक अवस्था में स्पष्ट प्रतीत होगी, परन्तु वही इस चौथी अवस्था में आकर, प्राण के साथ मिलकर शब्दत्व प्राप्त करने की तैयारी करने लगेगी । अतः आगमों में इसे मध्यमा कहा गया है-**प्राणवृत्तिमतिक्रम्य वर्त्तते मध्यमाह्वया** -वैदिकदर्शन, पृ ३७।

इसी पराशक्ति को अथर्वांगिरस कहा गया है, क्योंकि, जैसा ऊपर कहा गया है, परावाक् सभी अंगों की शक्तियों का सार होने के कारण आंगिरस, उनके प्रागट्य के स्थान भिन्न-भिन्न अंग है । मनोमय आदि नीचे के कोशों में जाना आरम्भ करने के कारण अथर्वा कहलाती है । इसका एक नाम श्रद्धा भीहै, कदाचित् प्रारम्भ में स्रद्ध्(नीचे की ओर जाने वाली), शृद्ध (निष्कासिता) आदि शब्दों की भांति इसी प्रकार का अर्थ रखता था - वैदिकदर्शन, पृष्ठ ४३ । यही वाक् - ऋजु विमर्शिणी के शब्दों में परमशिवस्वरूपा वाक् (मातृकां परा वागात्मावहृत भट्टारक, परमशिवस्वरूपां षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरण हेतुभूतां

संविदामित्यर्थः) कह सकते है, जो विष्णु पुराण में अग्नि तथा उससे प्रकाश के समान ब्रह्म से अभिन्न बतलाई गई है - एकदेशस्थितस्याग्रे ज्योत्स्ना विस्तारिणीं यथा । परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथैतदखिलं जगत् - वैदिकदर्शन पृ. ६१।

उत्पत्ति-स्थिति-लयकारिणी - सर्वरूपा वाक् को ही **त्रयी विद्या कामधेनुः, सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा**, उसी को स्वरात्मिका भी कहा है, यथा यही वाक् ही, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-लय कारिणी है। ऋग्वैदिक सूक्त में बहुत अच्छी तरह से दिया गया है- **अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥१॥ अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥२॥ अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥३॥ मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥४॥ अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥ अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ। अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥६॥ अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वपन्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥७॥ अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा । परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव** - ८ ॥ (ऋ. वागाम्भृणी, दे. आत्मा) - ऋ.१०.१२५ ।

संक्षेपमें वाक् के विषय में निम्नलिखित बातें इस सूक्त से ज्ञात होती है-

(१) रुद्रों, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वेदेवों देवगणों के साथ वह विचरती है और मित्रावरुण, इन्द्राग्नी तथा अश्विनौ जैसे देवयुगलों तथा सोम, त्वष्टा, पूषा और भग जैसे देवों का भरण करती है।

(२) वह सारे वसुओं को एकत्र करने वाली 'राष्ट्री' है; 'यज्ञीयों' की प्रथम जानने वाली है, जिसको देवों ने अनेक स्थानों पर विविध रूपों में रख छोडा है - जो अनेक स्थानों में रहने वाली और अनेक में व्याप्त है। अतः देखना सुनना तक बिना इसके नहीं हो सकता।

(३) ब्रह्मद्विषों पर रुद्र का जो शर-संधान होता है, वह भी इसी वाक् के द्वारा। वह सारे द्यावापृथिवी में व्याप्त है।

(४) वाक् ने ही इसके पिता को (भुवन) उत्पन्न किया, जो स्वयं वाक् की योनि है, और जो समुद्र आपः में है। तब इसने 'विश्वभुवन' को बनाया (वितष्टे)। वही वात के

समान सारे भुवनों में बहती है, आकाश और पृथिवी से भी परे वह शक्ति के द्वारा (महिना) फैल गई है।

वाक् के इस वर्णन में ऐसी कोई बात नहीं है, जो वरुण के लिए न कही जा सके । वरुण के ऋत से ही तो सारे देवों का जन्म हुआ है और सभी देव उसके 'ऋत' का ही पालन करते हुए काम कर रहे है। वह सर्वव्यापक है। सारा विश्व उसमें है। द्यौ में भी वह नहीं समा सकता । उससे बचकर कोई द्यौ से परे भाग जाने पर भी नहीं बच सकता । विश्व में कोई काम भी उसके बिना नहीं हो सकता, यहां तक कि कोई जीव उसके बिना पलक नहीं मार सकता, अतः वरुण मनुष्यों के निमेषोन्मेष तक को भी गिन लेता है । वह आकाश में चिडियों के तथा सागर में जहाजों के मार्ग को पहचानता – वै.द.पृ. ९०-९२ ।

बह्वृचोपनिषद में वाक् या पराशक्ति को देवी महात्रिपुरसुन्दरी कहा गया है जो समस्त विश्व का उद्भव, स्थिति तथा प्रलय करने वाली है और ब्रह्मा, विष्णु,रुद्र को उत्पन्न करती है ।

तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्; विष्णुरजीजनत्; रुद्रो अजीजनत् । सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्, गन्धर्वाप्सिरसः किन्नरावादित्रवादिनः समन्तादजीजनत् । भोग्यमजीजनत् सर्वमजीजनत् सर्वशक्तिमजीजनत्। अण्डजं, स्वेदजं, जरायुजमुद्भिजं यत्किंचैतत्प्राणि स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् । सैऽषा पराशक्ति । वाचि प्रतिष्ठा सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकाल वस्त्वन्तरसङ्गान् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः । श्रीविद्या के रूप में वही वाक् भगवति ललिता महात्रिपुर सुंदरी है ।

कूटत्रय–ललिता सहस्रनाम (३४,३५,३६,३७) के अनुसार -
हरनेत्राग्नि सन्दग्ध काम सञ्जीवनौषधिः।श्रीमद्वाग्भव कूटैक स्वरूप मुखपङ्कजा॥
कण्ठाधःकटिपर्यन्त-मध्यकूटस्वरूपिणी।शक्ति-कूटैकतापन्न-कट्यधोभागधारिणी
मूल-मन्त्रात्मिका मूलकूटत्रय-कलेवरा ।कुलामृतैक-रसिका कुलसंकेत-पालिनी ।।
एकारादि समस्त वर्ण विविधाकारैक चित्रूपीणीम् - कुलाङ्गनाकुलान्तस्था कौलिनीकुलयोगिनी।अकुलासमयान्तस्था समयाचारतत्परा ॥ कंठांध: कटीपर्यन्त मध्यकूटस्वरूपिणी - श्री ललिता देवी के कंठ से कटी प्रदेश को मध्य कूट कहा है ।यह प्रदेश को कामराज भेद (सृजन की इच्छा) भी कहा जाता है ।यह प्रदेश काम या इच्छाओं से कला या रूप उत्पन्न करनेवाला है ।

शक्तिकूटैकतापन्न कट्यधोभागाधारिणी - श्री ललिता देवी के कटी से निचे का प्रदेश शक्ति कूट या महत्त्वपूर्ण शक्ति जो सृजन में आवश्यक है ।मूलमन्त्रात्मिका - श्री ललिता देवी हर मन्त्र का मूल है और मूल कारण भी है ।मूल मतलब आधार, कारण, मन्त्र (मननात त्रायते इति मन्त्र) बार बार दोहराने की आवश्यकता होती है ।इससे जो भाव निर्माण होता है वह अहंकारादि दोषों को नष्ट करता है ।सभी मन्त्रों का मूल माँ है । मंत्र

दोहराने से माँ का वरदान मिलता है, सभी बाधाएं दूर हो जाती है, साधक चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है ।

मूल कूटत्रय कलेवरा - जिनका शरीर मन्त्र के तीन भाग है ऐसी माँ । यह माँ का नाम पहले तीन नामों का सारांश है ।ऊपर दिए गए तीन नामों में ज्ञान, इच्छा और क्रिया की परस्पर क्रीड़ा है ।सृजन की इच्छा, ज्ञान और शक्ति की क्रीड़ा से सृष्टि का सृजन होता है और फिर सृष्टि विक्सित होती है ।ये तीनों शक्तियाँ माँ का शरीर है ।यह नाम श्री ललिताम्बिका देवी का आलेख है ।

मान्यवर डॉ. श्री शिवशंकर अवस्थी की पुस्तक - मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य में शारदातिलक, योगिनिहृदय, मंत्रमहोदधि आदि ग्रंथो के माध्यम से इस विज्ञान को सुस्पष्ट किया है । डॉ.श्री फतेहसिंहजी का साहित्य भी मननीय है ।

परा, पश्यन्ती इत्यादि वाक् से संदर्भ में, शब्दकल्पद्रुमकोश में, निम्नलिखित उद्धरण प्राप्त होते है, जो उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करते है- मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु तारः पराख्यः । पश्चात्पश्यन्त्यथहृदयगोबुद्धियुङ्मध्यमाख्यः अलङ्कारकौस्तु भवैखरीशक्ति निष्पत्तिर्मध्यमाश्रुतिगोचरा । द्योतितार्था तु पश्यन्तीसूक्ष्मावागनपायिनी – मल्लिनाथ धृतवाक्यम् । श्री भर्तृहरि का वाक्यपदीय भी इस दिशा में अच्छा दिग्दर्शन कराता है ।

शिव से ईशान उत्पन्न हुए है, ईशान से तत्पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है । तत्पुरुष से अघोर का, अघोर से वामदेव का और वामदेव से सद्योजात का प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणव से ही मूलभूत पांच स्वर और तैंतीस व्यजंन के रूप में अड़तीस अक्षरों का प्रादुर्भाव हुआ है, जिसे भूतलिपि भी कहते है । उत्पत्ति क्रम में ईशान से शांत्यतीताकला उत्पन्न हुई है। ईशान से चित् शक्ति द्वारा मिथुनपंचक की उत्पत्ति होती है ।

अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि इन पांच कृत्यों का हेतु होने के कारण उसे पंचक कहते है । यह बात तत्वदर्शी ज्ञानी मुनियों ने कहीं है । वाच्य वाचक के संबंध से उनमें मिथुनत्व की प्राप्ति हुई है । कला वर्णस्वरूप इस पंचक में भूतपंचक की गणना है । आकाशादि के क्रम से इन पांचों मिथुनों की उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पांचवां मिथुन पृथ्वी है ।

इनमें आकाश से लेकर पृथ्वी तक के भूतों का जैसा स्वरूप बताया गया है, वह इस प्रकार है - आकाश में एकमात्र शब्द ही गुण है, वायु में शब्द और स्पर्श दो गुण है, अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुणों की प्रधानता है, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण माने गए है तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप , रस और गंध इन पांच गुणों से संपन्न है । यही भूतों का व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणों द्वारा आकाशदि भूत वायु आदि परवर्ती भूतों में किस प्रकार व्यापक है, यह दिखाया गया है ।

इसके विपरीत गंधादि गुणों के क्रम से वे भूत पूर्ववर्ती भूतों से व्याप्य है अर्थात् गंध गुणवाली पृथ्वी जल का और रसगुणवाला जल अग्नि का व्याप्य है, इत्यादि रूप से इनकी व्याप्यता को समझना चाहिए। पांच भूतों (महत् तत्व) का यह विस्तार ही प्रपंच कहलाता है।

सर्वसमष्टि का जो आत्मा है, उसी का नाम विराट है और पृथ्वी तल से लेकर क्रमशः शिवतत्व तक जो तत्वों का समुदाय है वही ब्रह्मांड है। वह क्रमशः तत्वसमूह में लीन होता हुआ, अंततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वर में ही लय को प्राप्त होता है और सृष्टिकाल में फिर शक्ति द्वारा शिव से निकल कर स्थूल प्रपंच के रूप में प्रलयकाल पर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है।

अपनी इच्छा से संसार की सृष्टि के लिए उद्यत हुए महेश्वर का जो प्रथम परिस्पंद है, उसे शिवतत्व कहते है। यही इच्छाशक्ति तत्व है, क्योंकि संपूर्ण कृत्यों में इसी का अनुवर्तन होता है। ज्ञान और क्रिया, इन दो शक्तियों में जब ज्ञान का आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्व समझना चाहिए, जब क्रियाशक्ति का उद्रेक हो तब उसे महेश्वर तत्व जानना चाहिए तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियां समान हों तब वहां शुद्ध विद्यात्मक तत्व समझना चाहए।

जब शिव अपने रूप को माया से निग्रहीत करके संपूर्ण पदार्थों को ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम पुरुष होता है।शिव की जो परा शक्ति है, वही अभिव्यक्त होकर, अनेक रूपमें प्रकट होती है, वही भगवति श्रुति है। वेद को भी वाक् का पर्यायवाची समझा जाता है। अतः सभी वाक् वेद में भी अनुप्रविष्ट बताई जाती है(सर्वा वाचो वेदमनु प्रविष्टाः); वेद के द्वारा ब्रह्म जब व्यक्त होता है, तो पहले छन्दस्य पुरुष होता है, फिर ऋङ्मय, यजुर्मय और साममय रूप में त्रिवृत हो जाता है - वै.दर्शन पृ.२९।

श्री अभिनवगुप्तने तंत्रालोकमें लिखा है - **शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति। तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव ब्रह्म** और वाक्, वाच्य और वाचक या व्यंग्य और व्यञ्जक का भेद तो उत्पन्न हो जाता है, परन्तु फिर भी दोनों यामल-रूप में ही रहते है - एक को दूसरे से पूर्णतया पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। इसीलिए इस अवस्था को मिथुन या आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष अथवा सध्रीची(साथ चलने वाले) कहा गया है - वैदिकदर्शन, पृष्ठ ३६। ब्रह्म के दो अर्द्ध भाग अभी पृथक्-पृथक् न होकर एक ही में संयुक्त है, इसीलिए उसको इस अवस्था में आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन तथा आत्मानन्द कहा गया है। इस अवस्था में शक्ति और शक्तिमान्, वाक् और ब्रह्म परस्पर दर्शन कर सकते है, अतः पहले को पश्यन्ती तथा दूसरे को पश्य नाम दिया गया है। इस समय शक्ति केवल कल्प रूप में रहती है, जैसा कि रत्नत्रय में कहा गया है - केवलं

बुद्ध्य पादानात्क्रमाद्वर्णानुयायिनी । अन्तः संकल्परूपा तु न श्रोत्रमुपसर्पति - वै.द.पृ.३७।

अर्वाचीन विज्ञान भी यही सत्य को प्रतिपादिक करता है - Earth is cause of high vibrationsI Everything in Life is Vibration – Albert Einstein. मिश्र के विद्वान पवित्र लेख को न्द्वन्त्र अतः the speech of Gods कहते है। यूनान के होमर (b.c.800) देवों एवं मनुष्यों की भाषा The language of Gods and of men. Heraclitus (b.c.503) held that words exist natural७. He said, to use any words except those supplied by nature for each thing, was not to speak, but only to make a noise. शब्द आकाशका गुण है, आकाश मे स्वाभाविक है, मानव के बोले शब्द वृथा शोर है। मन्त्रों की कैसेट बजाना भी तो संगीत या शोर ही है, इसे मन्त्र कदापि नहीं मान सकते ।आमर्शश्च अयं न सांकेतिकः अपितु चित्स्वभावतामात्रतानात्तरीयकः परनादगर्भ उक्तः, स च यावान् विश्वव्यवस्थापकः परमेश्वरस्य शक्तिकलापः तावन्तम्आमृशति (तं.सा.पृ.१२) वह शैवीनाद लौकिक ध्वनि के समान् कृत्रिम नहीं हैं - वह शिव का स्वरूविमर्शात्मक अहं है - चेतना है।

अन्य विचारधारए - How the Universe was Created by Sound (Vibrational Frequency Waves), July ३१, २०१२ at ३:१३am

The Universe was created by Sound, that is to say Vibrational Wave Frequencies. Not in one ''Big Bang'' but many and simultaneously. Now I am not making this up and no its not an original thought either. Its in all of the ancient tales of creation, in tablets, texts, papyri, reliefs, stelas, etc,.. Its in all of the stories, myths, legends, and songs (see Cymatics videos below) The creator, or the ''self created one'' or ''the creator from nothing''(no thing) that created all fronm nothing(no thing), and ''Everything is all one thing'' and ''Made all from one thing,'' I'm sure you've heard of this. ''The creator created by: Commandment, Declaration, Proclaimation, Spoke, a Song or Music, a Word, an Utterance, or a Breath created all." these are all sound references! the common denominator is sound!

So let me bring it on home for you. Sound has no mass, that means its No-Thing, its Nothing! Yet sound ''pushes'' all matter. ''Push'' is the only force in the universe by the way! This ''Master Force'' sound,... pushes all, it directs all, all things move exactly where and when and why that sound wants it! (see Cymatics). Hold on now there is more, this '' Master Force'',. sound is coming from Black-holes, they are black and void because the sound has pushed out all of the matter. ''Wait there's more, and its Moist'' And get

this, the universe is like 3/4th water! Just like it also says in all of the ancient creation stories! the pulsatiing heart beat sounds coming from black-holes shape the great waters that are in close proximity to them to a paradigmatical spherical form and therby igniting them thru Cavitation and Sonarluminescence! so sound on water creates fusion = light, heat = matter(air earth) its all one thing! and also Gravity is sound! and gravity can be turned off by sound cancellation techniques.

(https://www.sikhnet.com/news/sound-process-creation-universe)According to Sri Guru Granth Sahib, the One and the only **One God** has created the entire universe. [2]

Situation before Creation

Before creation of the universe there was nothing around; whatever is observable in the universe did not exist earlier. [3] There was **utter darkness** all-around. [4]He had remained in darkness in deep meditation [5] for thirty six *yugas*. [6] He emerged from this darkness *shoonya* Himself and gave Himself a Name. [7]

Emergence of God with spread of Light

With His emergence spread the **Light** around. [8] The Light of the Lord spread everywhere. [9] When in light, the Lord probably felt lonely and thought of creating the universe as a play for Himself. [10]

Start of Creation with Sound on the base of Light.God created the universe with one sound andfrom the sound millions of rivers (of atoms) flowed[11]. All the segments and continents in the universe were created from one sound of His order alone. [12] Due to wave-particle duality of the Light and it its spread all over, the sound spread through particles all over. A research team led by Fabrizio Carbone at EPFL has now carried out an experiment with a clever twist: using electrons to image light. The researchers have captured, for the first time ever, a single snapshot of light behaving simultaneously as both a wave and a stream of particles.

In the experiment; A pulse of laser light is fired at a tiny metallic nanowire. The laser adds energy to the charged particles in the nanowire, causing them to vibrate. Light travels along this tiny wire in two possible directions, like cars on a highway. When waves traveling in opposite directions meet each other they form a new wave that looks like it is standing in place. Here, this standing wave becomes the source of light for the experiment, radiating around the nanowire. The

scientists shot a stream of electrons close to the nanowire, using them to image the standing wave of light. As the electrons interacted with the confined light on the nanowire, they either sped up or slowed down. Using the ultrafast microscope to image the position where this change in speed occurred, Carbone's team could now visualize the standing wave, which acts as a fingerprint of the wave-nature of light. While this phenomenon shows the wave-like nature of light, it simultaneously demonstrated its particle aspect as well. As the electrons pass close to the standing wave of light, they "hit" the light's particles, the photons. As mentioned above, this affects their speed, making them move faster or slower. This change in speed appears as an exchange of energy "packets" (quanta) between electrons and photons. The very occurrence of these energy packets shows that the light on the nanowire behaves as a particle. [१३]. **बाईबल मे भी** इसकी संगति मिलती है ।

मन्त्रा वर्णात्मका सर्वे, सर्वे वर्णा शिवात्मकाः । सभी वर्ण शिवात्मक है । **आगच्छति बुद्धिमारोहति यस्मादभ्युदनिः श्रेयसोपायः स आगमः** । आत्मा से कल्याण हेतुं शब्द-वर्ण प्रकट होकर बुद्धि के पास ज्ञानरूप आते है, बुद्धि इसका विश्लेषण करती है एवं अंततः वैखरीरूप में प्रकट होता है, यही आगम है - आत्मा से उठी ॠचाओं के दिव्यज्ञान को, ॠषियों ने (बुद्धि द्वारा) तप के द्वारा आत्मसात् किया और वे दृष्टा बने । भगवान आदि शंकरने भी इसलिए ही मानसपूजा में कहा है कि - **आत्मात्वं गिरिजामति सहचराप्राणा शरीरं गृहम्** । आत्मा से प्रकटित ज्ञान को, आत्मा ही बुद्धिशक्ति के सहारे (अर्थरूपमें) आत्मासात् करताहै ।...**ॠषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम् । अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।। वेद शब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः** (म.भा.शां.प २४३.२४-२६) यथा ॠषियों ने तप से ही श्रुति का श्रवण किया है । वेद अपौरूषेय है ।

वर्ण एवं शक्तिपीठें - आगे वर्णो का प्रादुर्भाव देखते है । एक पौराणिक कथा इस प्रकार भी है कि - (श्री देवीभागवत के अनुसार) महाविद्याओं की उत्पत्ति भगवान शिव और उनकी पत्नी सती, जो पार्वती का पूर्वजन्म थीं,के बीच एक विवाद के कारण हुई। जब शिव और सती का विवाह हुआ तो सती के पिता दक्ष प्रजापति दोनों के विवाह से खुश नहीं थे। उन्होंने शिव का अपमान करने के उद्देश्य से एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया,जिसमें उन्होंने सभी देवी, देवताओं को आमन्त्रित किया लेकिन द्वेषवश उन्होंने अपने जामातृ भगवान शंकर और अपनी पुत्री सती को निमन्त्रित नहीं किया । सती,पिता के द्वारा आयोजित यज्ञ में जाने की जिद करने लगीं जिसे शिव ने अनसुना कर दिया,इस पर सती ने स्वयं को एक भयानक रूप में परिवर्तित (महाकाली का अवतार) कर लिया । जिसे देख भगवान शिव भागने को उद्यत हुए । अपने पति को डरा हुआ जानकर माता सती उन्हें रोकने लगी तो शिव जिस दिशा में गये उस दिशा में माँ

का एक अन्य विग्रह प्रकट होकर उन्हें रोकता है । इस प्रकार दसों दिशाओं में माँ ने वे दस रूप लिए थे वे ही दस महाविद्याए कहलाई । **काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा । बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका । एता दश महाविद्या: सिद्धविद्या: प्राकृर्तिता । एषा विद्या प्रकथिता सर्वतन्त्रेषु गोपिता** ।। इस प्रकार देवी दसरूपों में विभाजित हो गयीं जिनसे वह शिव के विरोध को हराकर यज्ञ में भाग लेने गयीं। वहाँ पहुँचने के बाद माता सती एवं उनके पिता के बीच विवाद हुआ । दक्ष प्रजापति ने शिव की निंदा की और सती ने यज्ञ कुंड में प्राणों की आहुति दे दी ।

सती के शव के विभिन्न अंगों से एकावन शक्तिपीठों का निर्माण हुआ था। इसके पीछे यह अंतर्कथाहै कि, दक्षप्रजापति ने कनखल, हरिद्वारमें बृहस्पति सर्वनामक यज्ञ रचाया। उस यज्ञ में ब्रह्मा-विष्णु-इंद्र और अन्य देवी, देवताओं को आमंत्रित किया गया,लेकिन जान, बूझकर अपने जमाता भगवान शंकर को नहीं बुलाया। शंकरजी की पत्नी और दक्ष की पुत्री सती पिता द्वारा न बुलाए जाने पर और शंकरजी के रोकने पर भी यज्ञ में भाग लेने गईं। यज्ञस्थल पर सती ने अपने पिता दक्ष से शंकर जी को आमंत्रित न करने का कारण पूछा और पिता से उग्र विरोध प्रकट किया । इस पर दक्ष प्रजापति ने भगवान शंकर को अपशब्द कहे । इस अपमान से पीड़ित हुई सती ने यज्ञ,अग्नि कुंड में कूदकर अपनी प्राणाहुति दे दी। भगवान शंकर को जब इस दुर्घटना का पता चला तो क्रोध से उनका तीसरा नेत्र खुल गया। भगवान शंकर के आदेश पर उनके गणों के उग्र कोप से भयभीत सारे देवता ऋषिगण यज्ञस्थल से भाग गये। भगवान शंकर ने यज्ञकुंड से सती के पार्थिव शरीर को निकाल कंधे पर उठा लिया और दुःखी हुए इधर,उधर घूमने लगे। तदनंतर सम्पूर्ण विश्व को प्रलय से बचाने के लिए जगत के पालनकर्त्ता भगवान विष्णु ने चक्र से सती के शरीर को काट दिया। तदनंतर उनके शरीर व अंग आभूषण के, वे टुकड़े ५१ जगहों पर गिरे, जहां शक्तिपीठ बनी । माना जाता है कि वहीं ५१ वर्णो की अधिष्ठात्री शक्तियां है । कथा में निम्नोक्तियां सुष्पष्टरूपेण दिखती है । सर्वेवर्णात्मिका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये । शक्तिस्तुमातृका ज्ञेयो साच ज्ञोया शिवात्मिका - कामधेनुतंत्र ।। ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तुशिवरूपिणः। व्यञ्जनत्वात्सदानन्देनोचाचार सहिता यतः ।। अकारः प्रथमोदेवी भकारोन्तिम इष्यते । अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी ।। पंचाशत्युवती सर्वाशब्दब्रह्म स्वरूपिणी। भजेहं मातृकादेवी वेदमाता सनातनीम् - कामधेनुतंत्र ।। अकारादि क्षकारान्ता मातृकावर्ण रूपिणः । सतीके शरीर सेअंग या आभूषण,जो श्री विष्णु द्वारा सुदर्शन चक्र से काटे जाने पर, पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर गिरे,आज वह स्थान शक्तिपीठ कहलाते है ।

एक युक्तिगत दर्शन करें । जैसे हवा तो अदृश्य है, उस में कौन कौन से तत्त्व या वायु है उनकी क्या शक्ति है, उनमें विपरित शक्तियां होते भी हवा में एकरस होने पर अपनी शक्तियां गुप्तावकाश में होती है । यह जानने के लिए हवा में जितने वायु है उनके उपर

पृथक पृथक प्रयोग किया, सभी का गुणधर्म जाना और कुल मिलाकर हवा में उनका कितना अंश है वह जाना। ऑक्सीजन क्या है, ज्वलनशील है, प्राणधर्मा है, हाईड्रोजन क्या है - स्फोटक है, कार्बन क्या है, कौन से वायु अम्लीय है, कौनसे एसिडीक है इत्यादि इत्यादि और उनकी संयुक्त एवं पृथक पृथक शक्ति एवं उपयोगीता और गुणधर्म क्या है। सभी वायु हवामें तो है ही। ठीक उसी तरह परमार्थरूप शिवकी वाक् शक्ति के ५१ अक्षरो एवं उनकी कलाओं में क्या शक्ति है, हवामें जिस प्रकार सभी सभी वायु है, शिव में सभी शक्तियां है तथापि प्रत्येक शक्ति का पृथ्थकरण सुदर्शन से ही हो सकता है।

इस कथा पर एक दार्शनिक अभिगम यह भी हो सकता हैं, कि ब्रह्म-विराट पुरूष-शिव को जानने के अथक प्रयास हमारे ऋषियों ने किए। वेदो में, उपनिषदो में, पुराणों में तथापि कुछ शेष रह गया। वैसे तो कहा गया है कि, अंगूष्टमात्रैव पुरूषः - अणोरणीयान्, तथापि ज्ञातव्य कठीन है यथा महतोमहीयान् भी है। मंत्रो का आद्यरूप शिव है, उसमें ही अर्थरूपेण निहित (निष्कल) हैं, स्वकीय प्रकृति द्वारा उनकी अकार से क्षकार पर्यन्त व्याप्ति हैं, वे ही सर्व शास्त्रों के बीज भी हैं। यथा प्रत्येक कलारूप वर्णो को सुदर्शन (सम्यक दर्शन - चिन्तन) रूप से काटकर - भिन्नरूपेण उपासना कर, उनकी शक्तियों को पीठरूपेण स्थापित करना, ऋषियों ने एवं स्वयं विष्णुजी ने उचित समझा होगा। कथा का एक यह दर्शन है।५१ शक्तिपीठ निम्नानुसार है -

क्रम सं०	स्थान	अंग या आभूषण	शक्ति	भैरव
१	हिंगुल या हिंगलाज, कराची, पाकिस्तान से लगभग १२५ कि०मी० उत्तर-पूर्व में	ब्रह्मरंध्र (सिर का ऊपरी भाग)	कोट्टरी	भीमलोचन
२	शर्कररे, कराची पाकिस्तान के सुक्कर स्टेशन के निकट, इसके अलावा नैनादेवी मंदिर, बिलासपुर, हि.प्र. भी बताया जाता है।	आँख	महिष मर्दिनी	क्रोधीश
३	सुगंध, बांग्लादेश में शिकारपुर, बरिसल से २० कि०मी० दूर सोंध नदी तीरे	नासिका	सुनंदा	त्रयंबक
४	अमरनाथ, पहलगाँव, काश्मीर	गला	महामाया	त्रिसंध्येश्वर
५	ज्वाला जी, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश	जीभ	सिधिदा (अंबिका)	उन्मत्त भैरव
६	जालंधर, पंजाब में छावनी स्टेशन निकट देवी तलाब	बांया वक्ष	त्रिपुरमालिनी	भीषण
७	अम्बाजी मंदिर, गुजरात	हृदय	अम्बाजी	बटुक भैरव
८	गुजयेश्वरी मंदिर, नेपाल, निकट पशुपतिनाथ मंदिर	दोनों घुटने	महाशिरा	कपाली

९	मानस, कैलाश पर्वत, मानसरोवर, तिब्बत के निकट एक पाषाण शिला	दायां हाथ	दाक्षायनी	अमर
१०	बिराज, उत्कल, उड़ीसा	नाभि	विमला	जगन्नाथ
११	गंडकी नदी के तट पर, पोखरा, नेपाल में मुक्तिनाथ मंदिर	मस्तक	गंडकी चंडी	चक्रपाणि
१२	बाहुल, अजेय नदी तट, केतुग्राम, कटुआ, वर्धमान जिला, पश्चिम बंगाल से ८ कि॰मी॰	बायां हाथ	देवी बाहुला	भीरुक
१३	उज्जनि, गुस्कुर स्टेशन से वर्धमान जिला, पश्चिम बंगाल १६ कि॰मी॰	दायीं कलाई	मंगल चंद्रिका	कपिलांबर
१४	माताबाढ़ी पर्वत शिखर, निकट राधाकिशोरपुर गाँव, उदरपुर, त्रिपुरा	दायां पैर	त्रिपुर सुंदरी	त्रिपुरेश
१५	छत्राल, चंद्रनाथ पर्वत शिखर, निकट सीताकुण्ड स्टेशन, चिट्टागौंग जिला, बांग्लादेश	दांयी भुजा	भवानी	चंद्रशेखर
१६	त्रिस्रोत, सालबाढ़ी गाँव, बोडा मंडल, जलपाइगुड़ी जिला, पश्चिम बंगाल	बायां पैर	भ्रामरी	अंबर
१७	कामगिरि, कामाख्या, नीलांचल पर्वत, गुवाहाटी, असम	योनि	कामाख्या	उमानंद
१८	जुगाड्या, खीरग्राम, वर्धमान जिला, पश्चिम बंगाल	दायें पैर का बड़ा अंगूठा	जुगाड्या	क्षीर खंडक
१९	कालीपीठ, कालीघाट, कोलकाता	दायें पैर का अंगूठा	कालिका	नकुलीश
२०	प्रयाग, संगम, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश	हाथ की अंगुली	ललिता	भव
२१	जयंती, कालाजोर भोरभोग गांव, खासी पर्वत, जयंतिया परगना, सिल्हैट जिला, बांग्लादेश	बायीं जंघा	जयंती	क्रमादीश्वर
२२	किरीट, किरीटकोण ग्राम, लालबाग कोर्ट रोड स्टेशन, मुर्शीदाबाद जिला, पश्चिम बंगाल से ३ कि॰मी॰ दूर	मुकुट	विमला	सांवर्त
२३	मणिकर्णिका घाट, काशी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	मणिकर्णिका	विशालाक्षी एवं मणिकर्णी	काल भैरव
२४	कन्याश्रम, भद्रकाली मंदिर, कुमारी मंदिर, तमिल नाडु	पीठ	श्रवणी	निमिष
२५	कुरुक्षेत्र, हरियाणा	एड़ी	सावित्री	स्थनु
२६	मणिबंध, गायत्री पर्वत,	दो पहुंचियां	गायत्री	सर्वानंद

	निकट पुष्कर, अजमेर, राजस्थान			
२७	श्री शैल, जैनपुर गाँव, ३ कि०मी० उत्तर-पूर्व सिल्हैट टाउन, बांग्लादेश	गला	महालक्ष्मी	शंभरानंद
२८	कांची, कोपई नदी तट पर, ४ कि०मी० उत्तर-पूर्व बोलापुर स्टेशन, बीरभुम जिला, पश्चिम बंगाल	अस्थि	देवगर्भ	रुरु
२९	कमलाधव, शोन नदी तट पर एक गुफा में, अमरकंटक, मध्य प्रदेश	बायां नितंब	काली	असितांग
३०	शोन्देश, अमरकंटक, नर्मदा के उद्गम पर, मध्य प्रदेश	दायां नितंब	नर्मदा	भद्रसेन
३१	रामगिरि, चित्रकूट, झांसी-माणिकपुर रेलवे लाइन पर, उत्तर प्रदेश	दायां वक्ष	शिवानी	चंदा
३२	वृंदावन, भूतेश्वर महादेव मंदिर, निकट मथुरा, उत्तर प्रदेश	केश गुच्छ/ चूड़ामणि	उमा	भूतेश
३३	शुचि, शुचितीर्थम शिव मंदिर, ११ कि०मी० कन्याकुमारी-तिरुवनंतपुरम मार्ग, तमिल नाडु	ऊपरी दाड़	नारायणी	संहार
३४	पंचसागर, अज्ञात	निचला दाड़	वाराही	महारुद्र
३५	करतोयतत, भवानीपुर गांव, २८ कि०मी० शेरपुर से, बागुरा स्टेशन, बांग्लादेश	बायां पायल	अर्पण	वामन
३६	श्री पर्वत, लद्दाख, कश्मीर, अन्य मान्यता: श्रीशैलम, कुर्नूल जिला आंध्र प्रदेश	दायां पायल	श्री सुंदरी	सुंदरानंद
३७	विभाष, तामलुक, पूर्व मेदिनीपुर जिला, पश्चिम बंगाल	बायीं एड़ी	कपालिनी (भीमरूप)	शर्वानंद
३८	प्रभास, ४ कि०मी० वेरावल स्टेशन, निकट सोमनाथ मंदिर, जूनागढ़ जिला, गुजरात	आमाशय	चंद्रभागा	वक्रतुंड
३९	भैरवपर्वत, भैरव पर्वत, क्षिप्रा नदी तट, उज्जयिनी, मध्य प्रदेश	ऊपरी ओष्ठ	अवंति	लंबकर्ण
४०	जनस्थान, गोदावरी नदी घाटी, नासिक, महाराष्ट्र	ठोड़ी	भ्रामरी	विकृताक्ष
४१	सर्वशैल/गोदावरीतीर, कोटिलिंगेश्वर मंदिर, गोदावरी नदी तीरे, राजमहेंद्री, आंध्र प्रदेश	गाल	राकिनी/ विश्वेश्वरी	वत्सनाभ/ दंडपाणि
४२	बिरात, निकट भरतपुर, राजस्थान	बायें पैर की अंगुली	अंबिका	अमृतेश्वर
४३	रत्नावली, रत्नाकर नदी तीरे, खानाकुल-कृष्णानगर, हुगली जिला पश्चिम बंगाल	दायां स्कंध	कुमारी	शिवा

४४	मिथिला, जनकपुर रेलवे स्टेशन के निकट, भारत-नेपाल सीमा पर	बायां स्कंध	उमा	महोदर
४५	नलहाटी, नलहाटि स्टेशन के निकट, बीरभूम जिला, पश्चिम बंगाल	पैर की हड्डी	कलिका देवी	योगेश
४६	कर्नाट, अज्ञात	दोनों कान	जयदुर्गा	अभिरु
४७	वक्रेश्वर, पापहर नदी तीरे, ७ कि॰मी॰ दुबराजपुर स्टेशन, बीरभूम जिला, पश्चिम बंगाल	भ्रूमध्य	महिषमर्दिनी	वक्रनाथ
४८	यशोर, ईश्वरीपुर, खुलना जिला, बांग्लादेश	हाथ एवं पैर	यशोरेश्वरी	चंदा
४९	अट्टहास, २ कि॰मी॰ लाभपुर स्टेशन, बीरभूम जिला, पश्चिम बंगाल	ओष्ठ	फुल्लरा	विश्वेश
५०	नंदीपुर, चारदीवारी में बरगद वृक्ष, सैंथिया रेलवे स्टेशन, बीरभूम जिला, पश्चिम बंगाल	गले का हार	नंदिनी	नंदिकेश्वर
५१	लंका, स्थान अज्ञात, (एक मतानुसार, मंदिर ट्रिंकोमाली में है, पर पुर्तगली बमबारी में ध्वस्त हो चुका है। एक स्तंभ शेष है। यह प्रसिद्ध त्रिकोणेश्वर मंदिर के निकट है)	पायल	इंद्रक्षी	राक्षसेश्व

तो फिर वर्ण क्या है - **उपासकस्य श्रद्धोत्पत्तये तद्वृत्तिगुणान् वर्णयति इति वर्ण - वर्णात्मका नित्याः शब्दाः** । जैसे आगे बताया है कि समग्र ब्रह्माण्ड का मूल यही वर्ण है - **ध्वनिरूपायदास्फोटस्त्वदृष्टाच्छिववविग्रहात् । प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनापूरयन् जगत् ।।** नेत्रतंत्र २१.६२-६३,विज्ञानभैरवेपि । बीजभावस्थितंविश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी । वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता । इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता-योगिनीहृदयतन्त्र । **अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति । अकारः सद्योजातो भवति । उकारो वामदेवः । अघोरो मकारो भवति । तत्पुरुषो नादः। बिन्दुरीशानः। कलाव्यापको भवति । अनुसन्धानोनित्यः-** ना.पूर्व.उपनिषत् २६॥

अकारः प्रथमो देवी क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम् । अक्षमालेतिविख्याता मातृकावर्णरूपिणी।। वर्णो में प्रथम वर्ण अ है । अकारो वा सर्वा वाक् सैषा स्पर्शान्तस्थोष्माभिर्व्यज्यमाना।। नानारूपा भवति - ऐ.आ.२.३.७.१३। गीता ८.३ में कहा है - अक्षरंब्रह्मपरमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते । भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।। आगे चलकर भगवान ने कहा है अक्षराणां अकारोस्मि - दुर्गा सप्तशति में भी है - त्वं स्वाहा त्वं स्वधात्वं हि वषटकारः स्वरात्मिका - सुधात्वमक्षरे नित्ये । तमक्षरंब्रह्म परं पवित्रम् । अकारादि क्षकारान्ता मातृका वर्णरूपिणाः । इसी वर्णो से भगवान शिवजीने सात करोड मंत्र कहे है, **सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः** - नेत्रतन्त्र ।

कामधेनु तन्त्र में कहा है-अकाराभ्य हकारान्तौ सर्वे वर्णा समाश्रिताः । अहंकारे स्थितं सर्वं ब्रह्माण्डे सचराचरम् ।।अकारःशिवरूपस्याद् हकारशक्तिमेव च । तयोः सम्मिलने चैव अहंकारोपजायते ।। पंचाशत्युवती सर्वाशब्दब्रह्म स्वरूपिणी । भजेहं मातृकादेवी वेदमातां सनातनीम् ।। सर्वेवर्णात्मकामन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये । शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो सा चज्ञोया शिवात्मिका ।।

सारांश - अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त के सभी वर्ण शिवशक्ति-ब्रह्मवाक् का स्वरूप है । वे सभी इस अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति-लय का कारण भी है । शब्दब्रह्मरूरेण समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । अतः वे सभी भाषाओं के जनक भी कहे जाते है, क्योंकि कोई भी भाषा बोलो, चाहे अंग्रेजी या ऊर्दू, जापानी या रशियन, उनके वर्णोच्चार इस ५१ वर्णो से बहार नहीं हो सकते ।सोने की एक ही धातु से असंख्य प्रकार के अलंकार बनते है । केवल दाल, चावल, घेहूं उपयोग से, भूखण्ड के विविध भागों में अनेक प्रकार के व्यञ्जन बनते है, तो परमात्मा के लिए यह पूर्णतया संभव है । विश्व का सभी साहित्य एवं वाङ्मय, चाहे वह विज्ञान हो या इतिहास, टेक्नोलोजी हो या मेडिकल साइन्स, सब में यही वर्णोच्चार आएगा । जैसे की This, Cancer, इंतज़ार इत्यादि के उच्चार में यही वर्णोच्चार समाविष्ट है । ४ वेद, १८ पुराण, १८ उपपुराण, ४ उपवेद, १०८ उपनिषद, इतिहास, ६ शास्त्रदर्शनादि सब का उच्चारण ५१ वर्णो के भीतर ही है ।

अब **क्रम** देखो तो, वर्णो से बनते है, शब्द, जिसमें अर्थ निहित होता है और उनका आदि स्वरूप है परा-वाक्- परावाक् में अर्थ निहित है - यह जो वाक् है वह ब्रह्म की शक्ति है - यथा ब्रह्म मेंही समग्र ब्रह्माण्ड निहित हैं। इसका श्रेष्ठ उदाहरण है पक्षी-प्राणी, जिसके पास भाषा न होते हुए भी, अपना व्यवहार इस परावाक् से करते है । भय-हर्ष-प्रेम-मैथुनादि की अभिव्यक्ति इस गूढस्थ परावाक् से करतें है । एकोऽस्मि बहुस्याम् - सृष्टिक्रम भी यही है, ब्रह्मणः प्रकृतिर्प्रकृतेर्महत् महतोहंकारः अहंकारादाकाशः आकाशाद्वायोः वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यःपृथिवी पृथिव्यामौषधयः औषधिभ्यो अन्नम्, अन्नाद्रेतःरेतसःपुरूषः इति सृष्टिक्रमः। शिवशक्ति अभिन्न हैं - ऐक ही हैं । जब बहुत्व का विचार आता हैं तब, द्वैत की आवश्यकता बन जाती हैं और ब्रह्म से ब्रह्म की शक्ति अलग होने लगती हैं - परमात्मा विराट पुरूष हैं, समग्र ब्रह्ममाण्ड उसमें समाहित हैं । परमात्मा - ब्रह्म से प्रकृति, प्रकृति से महत्तत्व, महत् से अहंकार, अहंकार से आकाश-अवकाश एनेक होने के लिए स्थान, आकाश का घन स्वरूप से वायु, वायु के वेग व घनत्व से अग्नि, अग्नि से जल, जल का घनत्वरूप पृथ्वी, पृथ्वी से अन्नौषधि, अन्न से वीर्य-रक्त रसादि, उसी से आगे वंश परम्पराए चलती हैं । एक ही तत्त्व से पूरा ब्रह्माण्ड का विस्तरण, सर्जन हुआ है, वो ही इस जगत का आद्य स्वरूप है । एक ही तत्त्व अनेकत्व धारण करता हैं, सूक्ष्मतर रूपमें ।

अहंकारे स्थितं सर्वं ब्रह्माण्डे सचराचरम् - (काम.तंत्र.) । **अकार:सर्ववर्णाग्र्य:प्रकाश: परमेश्वर:। आद्यमन्त्येन संयोगात् अहमित्येव जायते।।** प्रकृति व पुरूष या शिव व भगवति परावाक् के द्वारा ही समग्र ब्रह्माणड का अस्तित्व एवं स्थिति है । आधुनिक विज्ञान विद्युद् अणुओं (Electrons) को सृष्टिका कारण माने तो उनके कैन्द्रीय अणुओंको (Protons) किसी जडशक्तियों का (Cosmic Energy) परिणाम मानना पडेगा, और उस सृजनशक्ति(Granulation) को परमात्मा की आदि शक्ति या इच्छाशक्ति (Cosmic Energy) का परिणाम मानना पडेगा । नाद-बिन्दु-ब्रह्म बीजादि की सहायता से सृजनक्रम समझना सरल है, यद्यपि संस्कृत एवं प्राचीन परंपरागत प्रणाली, परिभाषा एवं परिमाणसे अनभिज्ञों को यह कठीन लग सकता है ।

सारांश यही है कि, इस ५१ पीठों में, १६ स्वर (शक्ति) एवं ३६ व्यंजन (तत्त्व), समेत भगवति पराशक्ति विद्यमान है । उपरोक्त देवीभागवत कथा के संदर्भ में, समस्त अंग व आभूषण जो भूमण्डल पर गिरे, वे देवी के है । यथा जैसे मेरा हाथ, मेरा पग, मेरा मुख, मेरा वस्त्र, मेरा अलंकार, मेरी कंगन, मेरी पायल, सबमें, मैं रूपेण मै हुं, ऐसे ही भगवति परावाक्, जो शिव की ही शक्ति है, वह सभी पीठ व पीठस्थ वर्णो में दैदिप्यमान है । यथा देवी के दिव्य पीठ आज भी ऊर्जावान् है ।

निर्बीजमक्षरं नास्ति - प्रत्येक अक्षर मंत्र है-बीज है, नाक्षरं मंत्रहीनम् । ऐसा कोई भी अक्षर नहीं है जिसका मंत्र के लिए प्रयोग न किया जा सके । केवल एक-एक वर्ण का जप भी मन्त्रजप ही है । इस में से ही तो समस्त मन्त्रो-स्तोत्र-स्तुत्यादि का उद्गम हुआ है, विश्व का पूरा वाङ्मय इसी वर्णो में ही निहित है - वर्णो से ही बना है । एक छोटी सी कथा उपरोक्त को समझाने के लिए पर्याप्त है ।

एक बार किसी क्षेत्रमें अकाल पडा । सभी लोग त्रस्त होकर फाधर(पादरी) के पास गए । फाधरने कहा कल रविवार है आप सब चर्चमें आजाना, हम प्रभु से वृष्ट्यर्थ प्रार्थना करेंगे । सब लोग आए और प्रार्थना की । एक छोटी सी बालिका छाता लेकर आई और एवीसीडी बोलने लगी । अंत मे फाधर उसके पास आए और एवीसीडी बोलने का कारण पूछने लगे । तब बालिका ने बताया कि मुझे प्रार्थना नहीं आती लेकिन, उसमें एवीसीडी के आल्फाबेट ही तो है, सर्व समर्थ प्रभु अपने हिसाब से प्रार्थना बना लेगा ।

सर्वेवर्णात्मकामन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाःप्रिये । शक्तिस्तुमातृकाज्ञेयो साचज्ञेया शिवात्मिका - कामधेनुतंत्र । मंत्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदोमन्त्रदेवयोः - शाक्तानंदतरंगिणी। शिवात्मकाः शक्तिरूपाज्ञेया मन्त्रास्तथार्णवाः । तत्वत्रयविभागेनवर्तन्ते ह्यमितौजसः - नेत्रतंत्र । मननात्त्वरूपस्य देवस्यामित तेजसः। त्रायते सर्वभयतस्मान्मन्त्रइतीरित । वरि.प्रकाश. । सर्वेवर्णात्मका मंत्राः ते च शक्त्यात्मका प्रिये ।शक्तिस्तुमातृकाज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मका - श्रीतन्त्रम् । सभी वर्ण

मन्त्र है- मन्त्रों में पमरात्मा, अनन्त चैतन्य-ऊर्जा के रूपमें अवस्थित है । मन्त्र परमात्मा का शब्दावतार भी कह सकते है । वायु के योग से स्पन्दात्मक स्वर स्वरित होते है ।

वर्ण के देवता, छन्द, ऋषि, स्वरूप, स्थान, ध्यान - शारदातिलक एवं कामधेनु तंत्रमें इसे जपने की विधि भी बताई है । प्रत्येक वर्ण के देवता, छन्द, ऋषि, स्वरूप, शक्ति, ध्यानादि इस प्रकार है ।

क्रम	वर्ण	ऋषि	छन्द	रुद्र	शक्ति	विष्णु	शक्ति
१	अ	अर्जुन्यायन	मध्या	श्रीकण्ठ	पूर्णोदरी	केशव	कीर्ति
२	आ	अर्जुन्यायन	मध्या	अनन्त	विरजा	नारायण	कान्ति
३	इ	भार्गव	प्रतिष्ठा	सूक्ष्म	शाल्मली	माधव	तुष्टि
४	ई	भार्गव	प्रतिष्ठा	त्रिमूर्ति	लोलाक्षी	गोविन्द	पुष्टि
५	उ	अग्निवेश्य	सुप्रतिष्ठा	अमरेश्वर	वर्तुलाक्षी	विष्णु	धृति
६	ऊ	अग्निवेश्य	सुप्रतिष्ठा	अर्धीश	दीर्घधोणा	मधुसूदन	क्षान्ति
७	ऋ	अग्निवेश्य	सुप्रतिष्ठा	भावभूति	सुदीर्घमुखी	त्रिविक्रम	क्रिया
८	ॠ	गौतम	गायत्री	तिथि	गोमुखी	वामन	दया
९	लृ	गौतम	गायत्री	स्थाणु	दीर्घजिह्वा	श्रीधर	मेघा
१०	ॡ	गौतम	गायत्री	हर	कुण्डोरी	हृषीकेश	हर्षा
११	ए	गौतम	गायत्री	झिंटीशा	ऊर्ध्वकेशी	पद्मनाभ	श्रद्धा
१२	ऐ	लौहित्यायन	अनुष्टुप	भौतिक	विकृतमुखी	दामोदर	लज्जा
१३	ओ	लौहित्यायन	अनुष्टुप	सद्योजात	ज्वालामुखी	वासुदेव	लक्ष्मी
१४	औ	वशिष्ठ	वृहति	अनुग्रहेश्वर	उल्कामुखी	सङ्कर्षण	सरस्वती
१५	अं	वशिष्ठ	वृहति	अक्रूर	श्रीमुखी	प्रद्युम्न	प्रीति
१६	अः	माण्डव्य	दण्डक	महासेन	विद्यामुखी	अनिरुद्ध	रति

१७	क	मौद्गायन	पङ्क्ति	क्रोधीश	महाकाली	चक्री	जया
१८	ख	अज	त्रिष्टुप	चण्डेश	सरस्वती	गदी	दुर्गा
१९	ग	अज	त्रिष्टुप	पंचान्तक	गौरी	शाङ्गर्ी	प्रभा
२०	घ	अज	त्रिष्टुप	शिवोत्तम	त्रैलोक्यविद्या	खड्गी	सत्या
२१	ङ	अज	त्रिष्टुप	एकरुद्र	मन्त्रशक्ति	शंखी	चंडा
२२	च	योग्यायन	जगती	कूर्म	आत्मशक्ति	हली	वाणी
२३	छ	गोपाल्यायन	अतिजगती	एकनेत्र	भूतमाता	मुरली	विलासिनी
२४	ज	नषक	शक्करी	चतुरानन	लम्बोदरी	शूली	विरजा
२५	झ	अज	शक्करी	अजेश	द्राविणी	पाशी	विजया
२६	ञ	काश्यप	अतिशक्करी	शर्व	नागरी	अंकुशी	विश्वा
२७	ट	शुनक	अष्टि	सोमेश्वर	वैखरी	मुकुन्द	वित्तदा
२८	ठ	सौमनस्य	अत्यष्टि	लांगलि	मञ्जरी	नन्दज	सुतदा
२९	ड	कारण	धृति	दारुक	रुपिणी	नन्दी	स्मृति
३०	ढ	माण्डव्य	अतिधृति	अर्द्धनारीश्वर	वारिणी	नर	ऋद्धि
३१	ण	माण्डव्य	अतिधृति	उमाकान्त	कोटरी	नरकजित	समृद्धि
३२	त	सांकृत्यायन	कृति	आषाढ़ी	पूतना	हरि	शुद्धि
३३	थ	सांकृत्यायन	कृति	दण्डी	भद्रकाली	कृष्ण	भुक्ति
३४	द	सांकृत्यायन	कृति	अद्रि	योगिनी	सत्य	मुक्ति
३५	ध	सांकृत्यायन	कृति	मीन	शंखिनी	सात्वत	मति
३६	न	कात्यायन	प्रकृति	मेष	गजिनी	शौरि	क्षमा

३७	प	कात्यायन	प्रकृति	लोहित	कालरात्रि	शूर	रमा
३८	फ	कात्यायन	प्रकृति	शिखी	कुब्जिनी	जनार्दन	उमा
३९	ब	दाक्षायण	आकृति	छगलण्ड	कपर्दिनी	भूधर	क्लेदिनी
४०	भ	व्याघ्रायण	विकृति	द्विरण्ड	महावज्रा	विश्वमूर्ति	क्लिन्ना
४१	म	शाण्डिल्य	संकृति	महाकाल	जया	वैकुण्ठ	वसुदा
४२	य	काण्डल्य	अतिकृत	कपाली	सुमुखेश्वरी	पुरुषोत्तम	वसुधा
४३	र	काण्डल्य	अतिकृत	भुजंगेश	रेवती	बली	परा
४४	ल	दाण्ड्यायन	उत्कृति	पिनाकी	माधवी	बलानुज	परायणा
४५	व	जातायन	दण्डक	खड्गीश	वारुणी	बाल	सूक्ष्मा
४६	श	लाट्यायन	दण्डक	वक	वायवी	वृषघ्न	सन्ध्या
४७	ष	जय	दण्डक	श्वेत	रक्षोविदा रिणी	वृष	प्रज्ञा
४८	स	जय	दण्डक	भृगु	सहजा	सिंह	प्रभा
४९	ह	जय	दण्डक	नकुली	लक्ष्मी	वराह	निशा
५०	क्ष	माण्डव्य	दण्डक	संवर्तक	माया	नृसिंह	विद्युता
५१	ळ	माण्डव्य	दण्डक	शिव	व्यापिनी	विमल	अमोघा

अर्जुन्यायनमध्ये द्वौ भार्गवस्तौ प्रतिष्ठिका । अग्निवेश्यः सुप्रतिष्ठा त्रिषु चाब्धिषु गौतमः ।। गायत्री च भरद्वाज उष्णिगेकारके परे । लोहित्यायनकोऽनुष्टुप् वशिष्ठो वृहती द्वयोः ।। माण्डव्योदण्डकश्चापि स्वराणां मुनिच्छन्दसी । मौद्गायनश्च पङ्क्तिः केऽजस्त्रिष्टुप् द्वितये घङों।। योग्यायनश्चजगती गोपाल्यायनको मुनिः । छन्दोऽतिजगती चे छेन्नषकः शक्वरी ह्यजः ।। शक्वरी काश्यपश्चातिशक्वरी झञयोष्टठोः । शुनकोऽष्टिः सौमनस्योऽत्य ष्टिडे कारणो धृतिः ।। ढणोर्माण्डव्यातिधृति साङ्कृत्यायनकः कृतिः । त्रिषु कात्यायनस्तु स्यात् प्रकृतिर्नपफेषु बे ।। दाक्षायणाकृति व्याघ्रायणो भे विकृतिर्मता । शाण्डिल्यसङ्कृती मेऽथ काण्डल्याति-कृति यरोः ।। दाण्ड्यायनोत्कृती लेऽथ वे जात्यायनदण्डकौ । लाट्यायनो दण्डकः शेषसहे जयदण्डकौ । माण्डव्यदण्डकौ ळक्षे कादीनामृषिछन्दसी ।।

अष्टादश शक्तिपीठ -लङ्कायाम् शांकरीदेवी कामाक्षी काञ्चिकापुरे ।प्रद्युम्ने शृङ्खला देवीचामुण्दा क्रौञ्चपट्टणे ॥अलम्पुरे जोगुलाम्ब श्रीशैले भ्रमराम्बिक ।कोल्हापुरमहलक्ष्मी माहुर्यमेकवीरिका ॥ उज्जयिन्याम् महाकाळी पीठिकायाम् पुरुहुतिका ।ओड्ढ्यायाम् गिरिजादेवी माणिक्या दक्षवाटिके ॥ हरिक्षेत्रे कामरूपी प्रयागे माधवेश्वरी ।ज्वालायाम् वैष्णवीदेवी गयामाङ्गल्यगौरिके ॥ वारणास्याम् विशालाक्षी काश्मीरेतु सरस्वती । अष्ठादशैवपीठानि योनिनामप दुर्लभानिच ॥ सायंकालं पठेन्नित्यम् सर्वरोगनिवारणम् । सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसम्पत्करं शुभम् ॥

लिपि की उत्पत्ति के विषयमें - लिपि की उत्पत्ति गणपति द्वारा हुई है, यजुर्वेद का गणानांत्वा मन्त्र उसका समर्थक है - गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१॥ त्वं चत्वारि वाक्पदानि (गणपत्यथर्व) । विश्वेभ्यो हित्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नः कविः । स ऋणया (-) चिद्-ॠणया (विन्दु चिह्नेन) ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्तमह ऋतस्य - (Right, writing, सत्य का विस्तार ऋत) धर्तरि. १७॥ (ऋक्.२.२३.१,१७) अर्थात्, ब्रह्मा ने सर्व-प्रथम गणपति को कवियों में श्रेष्ठ कवि के रूप में अधिकृत किया अतः उनको ज्येष्ठराज तथा ब्रह्मणस्पति कहा। उन्होंने श्रव्य वाक् को ऋत (विन्दुरूप सत्य का विस्तार) के रूप में स्थापित किया। श्रव्य वाक्य लुप्त होता है, लिखा हुआ बना रहता है (सदन = घर, सीद = बैठना, सीद-सादनम् = घर में बैठाना)। पूरे विश्व का निरीक्षण कर (हित्वा) त्वष्टा ने साम (गान, महिमा = वाक् का भाव) के कवि को जन्म दिया। उन्होंने ऋण चिह्न (-) तथा उसके चिद्-भाग विन्दु द्वारा पूर्ण वाक् को (जिसे हित्वा = अध्ययन कर साम बना था) ऋत (लेखन) के रूप में धारण (स्थायी) किया । अक्षर की जो आकृतियां है, वह वर्णो के विग्रह-यंत्र है । आज भी चीन की ई-चिंग लिपि में रेखा तथा विन्दु द्वारा ही अक्षर लिखे जाते हैं। इनके ३ जोड़ों से ६४ अक्षर (२६ = ६४) बनते हैं जो ब्राह्मी लिपि के वर्णों की संख्या है। टेलीग्राम के मोर्स कोड में भी ऐसे ही चिह्न होते थे । देवलक्ष्मं वै त्र्यालिखिता तामुत्तर लक्ष्माण देवा उपादधत (तैत्तिरीय संहिता,५.२.८.३) ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार लेखन का आरम्भ हुआ- नाकरिष्यद् यदि ब्रह्मा लिखितम् चक्षुरुत्तमम् । तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत्शुभा गतिः-नारदस्मृति । षण्मासिके तु समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः। धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान् यतः परां - (बृहस्पति-आह्निक तत्त्व) ब्रह्मा द्वारा अधिकृत बृहस्पति ने प्रतिपद के लिये अलग चिह्न बनाये थे ।

यदेषां श्रेष्ठंयदरि प्रमासीत्तदेषां निहितं गुहाविः॥ (ऋग्.१०.७१.१)पहले सभी वस्तुओं के केवल नाम ही दिये गये। गुहा के भीतर वाक् के जो ३ पद थे, उनको ज्यों का त्यों वैखरी वाक् (उच्चरित और लिखित) में व्यक्त किया। अव्यक्त वाणी को व्यक्त रूप में यथा-तथ्य उपसर्ग-प्रत्यय, कारक, विराम चिह्नों (पाप-विद्ध) आदि द्वारा वाक्य में प्रकट करने से

वह शाश्वत होती है - स पर्यगात् शुक्रं अकायं अव्रणं अस्नाविरं शुद्धं अपापविद्धं कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः (ईशावास्योपनिषद्)। वाल्मीकि ने भी रामकथा के माध्यम से तात्कालिक घटना को सनातन वेदार्थ रूप में प्रकट किया अतः शाश्वती समा = आदिकाव्य बना । सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् । वेदशब्देभ्येवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे–मनु. १/२१।

ऋष्यस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम् । अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥ नाना रूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्। वेद शब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः॥ (महाभारत शान्ति पर्व २३२.२४-२६) । बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत् नामधेयं दधानाः । प्रतिशब्द के अध्ययन को शब्द-पारायण कहते थे । पूरे जीवन पढ़ने पर भी से समझना सम्भव नहीं था, अतः शुक्र (उशना) ने इसे मारणान्तक व्याधि कहा । बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यवर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दपारायणं प्रोवाच । (पतञ्जलि-व्याकरण महाभाष्य १.१.१) तथा च बृहस्पत्ः-प्रतिपदं अशक्यत्वात्लक्षणस्यापि अव्यवस्थितत्वात् तत्रापि तत्रापि स्खलित दर्शनात् अनवस्था प्रसंगाच्च मरणान्तो व्याधिः व्याकरणमिति औशनसा इति। (न्याय मञ्जरी) इसमें सुधार के लिये इन्द्र ने ध्वनि-विज्ञान के आचार्य मरुत् की सहायता से शब्दों को अक्षरों और वर्णों में बांटा तथा वर्णो को उच्चारण स्थान के आधार पर वर्गीकरण किया । लिपि वर्ण का प्रारम्भ हुआ ।

वर्णो का ध्यान- वर्णोद्धार तंत्र में सभी वर्णो का ध्यान, आयुधादि का वर्णन मिलता है, अम्बाजी के ५१ शक्तिपीठ मंदिर में इसी ५१ वर्णों के देवी विग्रह है । शारदातिलक एवं अन्य तंत्रागम ग्रंथो में इसका वर्णन मिलता है, यद्यपि यहां कामधेनु तन्त्रानुसारेण (मूलम् - इनका अर्थ विद्वानों के लिए अति सरल है, यथा लेखन विस्तृति करण की आवश्यकता नहीं हैं) -

(अ) - श्रृणु तत्त्वमकारस्य अतिगोप्यं वरानने । शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चकोणमयं सदा ।। पञ्चदेवमयं वर्णं शक्तित्रयसमन्वितम्। निर्गुणं त्रिगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमान् ।। विन्दुतत्त्वमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरुपिणी ।

(आ)- आकारं परमाश्चर्यं शङ्खज्योतिर्मयं प्रिये । ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली ।

(इ)- इकारं परमानन्दसुगन्धकुसुमच्छविम् । हरिब्रह्ममयं वर्णं सदा रुद्रयुतं प्रिये ।। सदाशक्तिमयं देवि गुरुब्रह्ममयं तथा ।(ग्रन्थान्तर से- सदाशिवमयं वर्णं परं ब्रह्मसमन्वितम् । हरिब्रह्मात्मकं वर्णं गुणत्रयसमन्वितम् ।। इकारं परमेशानि स्वयं कुण्डली मूर्तिमान् ।।)

(इ)- ईकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डली । ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं सदा ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविद्युल्लताकृतिम् । चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ।।

(उ)- उकारं परमेशानि अधःकुण्डलिनी स्वयम् । पीतचम्पकसंकाशं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राण मयं देवि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।

(ऊ)- शङ्खकुन्दसमाकारं ऊकारं परमकुण्डली । पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।। धर्मार्थकाममोक्षं च सदासुखप्रदायकम् ।।

(ऋ)- ऋकारं परमेशानि कुण्डली मूर्तिमान्स्वयम् । अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव वरानने । सदाशिवंयुतं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम् ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमयं तथा ।। रक्तविद्युतल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(ॠ)- ॠकारंपरमेशानि स्वयं परमकुण्डलम् । पीतविद्युतल्लताकारं पञ्चदेवमयं सदा । चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणयुतं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं प्रणमामि सदा प्रिये ।।

(लृ)- लृकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली परदेवता । अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति ससतं प्रिये ।। पञ्चदेवमयं वर्णं चतुर्ज्ञानमयं सदा । पञ्चप्राणयुतं वर्ण तथा गुणत्रयात्मकम् ।। विन्दुत्रयात्मकं वर्णं पीतविद्युल्लता तथा ।

(ए)- एकारं परमेशानि ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । रञ्जनीकुसुमप्रख्यं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणात्मकं वर्ण तथा विन्दुत्रयात्मकम् । चतुर्वर्गप्रदं देवि स्वयं परमकुण्डली ।।

(ऐ)- ऐकारंपरमंदिव्यं महाकुण्डलिनी स्वयम् । कोटिचन्द्रप्रतीकाशं पञ्चप्राणमयं सदा ।। ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं विन्दुत्रयसमन्वितम् ।

(ओ)-ओकारं चञ्चलापाङ्गि पञ्चदेवमयं सदा । रक्तविद्युल्लताकारं त्रिगुणात्मानमीश्वरीम् ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं नमामि देवमातरम् । एतद्वर्णं महेशानि स्वयं परमकुण्डली ।।

(औ)- रक्तविद्युल्लताकारं औकारं कुण्डली स्वयम् । अत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं तथा शिवमयं सदा ।।

(अं)- सदा ईश्वरसंयुक्तं चतुर्वर्गप्रदायकम् । अङ्कारं विन्दुसंयुक्तं पीतविद्युतसमप्रभम् ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं ब्रह्मादिदेवतामयम् ।

(अः)- सर्वज्ञानमयं वर्णं विन्दुत्रयसमन्वितम् । अः कारं परमेशानिविसर्गसहितं सदा ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयः सदा । सर्वज्ञानमयोवर्णः आत्मादि तत्त्वसंयुतः।।

(क)- जपायावकसिन्दूरमदृशीं कामिनीं पराम् । चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च बाहुबल्लीविराजिताम् ।। कदम्बकोरकाकारस्तनद्वयविभूषितम् ।

रत्नकंकणकेयूरैरङ्गदैरुपशोभिताम् । रत्नहारैः पुष्पहारैः शोभितां परमेश्वरीम् । एवं हि कामिनीं ध्यात्वा ककारं दशधा जपेत् ।।

(ख)- खकारं परमेशानि कुण्डलीत्रयसंयुतम् । खकारं परमाश्चर्यं शङ्खकुन्दसमप्रभम् ।। कोणत्रययुतं रम्यं विन्दुत्रयसमन्वितम् । गुणत्रययुतं देवि पञ्चदेवमयं सदा ।। त्रिशक्तिसंयुतं वर्णं सर्व शक्त्यात्मकं प्रिये ।

(ग)- गकारं परमेशानि पञ्चदेवात्मकं सदा । निर्गुणं त्रिगुणोपेतं निरीहं निर्मलं सदा ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं गकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(घ)- अरुणादित्यसङ्काशं कुण्डलीं प्रणमाम्यहम् । घकारं चञ्चलापाङ्गि चतुष्कोणात्मकं सदा । पञ्चदेवमयं वर्णं तरुणादित्यसन्निभम् । निर्गुणं त्रिगुणोपेतं सदा त्रिगुणसंयुतम् । सर्वगं सर्वदं शान्तं घकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(ङ)- ङकारं परमेशानि स्वयं परमकुण्डली । सर्वदेवमयं वर्णं त्रिगुणं लोललोचने ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं ङकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(च)-चवर्णं श्रृणु सुश्रोणि चतुर्वर्गप्रदायकम् । कुण्डलीसहितं देवि स्वयं परमकुण्डली ।। रक्त विद्युतल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ।। त्रिशक्ति सहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।

(छ)- छकारं परमाश्चर्यं स्वयं परमकुण्डली । सततं कुण्डलीयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम् ।। पीतविद्युल्लताकारं छकारं प्रणमाम्यहम् ।

(ज)- जकारं परमेशानि या स्वयं मध्य कुण्डली । शरच्चन्द्रप्रतीकाशं सदा त्रिगुणसंयुतम्।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा । त्रिशक्ति सहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं प्रिये ।।

(झ)- झकारं परमेशानि कुण्डलीमोक्षरुपिणी । रक्तविद्युल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकमं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।।

(ञ)- सदा ईश्वरसंयुक्तं ञकारं श्रृणु पार्वति । रक्तविद्युल्लताकारं स्वयं परमकुण्डली ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकमं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।।

(ट)- टकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्च प्राणात्मकमं सदा ।। त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।।

(ठ)- ठकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली मोक्षरुपिणी । पीतविद्युल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् ।। पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।।

(ड)- डकारं चञ्चलापाङ्गि सदा त्रिगुणसंयुतम् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा ।। त्रिशक्ति सहितंवर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा । चतुर्ज्ञानमयं वर्णमात्मादि तत्त्वसंयुतम् ।। पीतविद्युल्लताकारं डकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(ढ)- ढकारं परमाराध्यं या स्वयं कुण्डली परा । पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयंसदा।। सदात्रिगुणसंयुक्तंआत्मादितत्त्वसंयुतम्। रक्तविद्युल्लताकारं ढकारं प्रणमाम्यहम् ।।

(ण)- णकारं परमेशानि या स्वयं परमकुण्डली । पीतविद्युल्लताकारं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणमयं देवि सदा त्रिगुणसंयुतम् । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं महासौख्यप्रदायकम् ।

(त)- तकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली । पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा ।। त्रिशक्ति सहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । त्रिविन्दुसहितं वर्णं पीतविद्युत्समप्रभम् ।।

(थ)- थकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डली मोक्षरुपिणी। त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।। पञ्चदेवमयंवर्णं पञ्चप्राणात्मकं प्रिये । तरुणादित्यसङ्काशं थकारंप्रणमाम्यहम् ।।

(द)- दकारं श्रृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् । पञ्चदेवमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।। सदा ईश्वरसंयुक्तं त्रिविन्दुसहितं सदा । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं स्वयं परमकुण्डली।। रक्तविद्युल्लताकारं दकारं हृदि भावय ।।

(ध)- धकारं परमेशानि कुण्डली मोक्षरुपिणी । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणमयं देवि त्रिशक्तिसहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं धकारं हृदि भावय ।। पीतविद्युल्लताकारं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।।

(न)- नकारं श्रृणु चार्वङ्गि रक्तविद्युल्लताकृतिम् । पञ्चदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली ।। पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा । त्रिशक्तिसहितंवर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । चतुर्वर्गप्रदं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।।

(प)- अतः परं प्रवक्ष्यामि पकारं मोक्षमव्ययम् । चतुर्वर्गप्रदं वर्णं शरच्चन्द्रसमप्रभम् ।। पञ्चदेवमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली । पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।। त्रिविन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । महामोक्षप्रदं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।।

(फ)- फकारं श्रृणु चार्वङ्गि रक्तविद्युल्लतोपमम् । चतुर्वर्गमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं सदा त्रिगुणसंयुतम् । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं त्रिविन्दुसहितं सदा ।।

(ब)- बकारं श्रृणु चार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् । शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं निविडाऽमृतनिर्मलम्।।स्वयं कुण्डलिनी साक्षात् सततं प्रणमाम्यहम् ।।

(भ)- भकारं चञ्चलापाङ्गि स्वयं परमकुण्डली । महामोक्षप्रदं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।। त्रिशक्ति सहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं प्रिये ।

(म)- मकारं श्रृणु चार्वङ्गि स्वयं परमकुण्डली । महामोक्षप्रदं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।। तरुणादित्यसङ्काशं चतुर्वर्गप्रदायकम् । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।। आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदिस्थं प्रणमाम्यहम् ।।

(य)- यकारं श्रृणु चार्वङ्गि चतुष्कोमयं सदा । पलालधूमसङ्काशं स्वयं परमकुण्डली ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं तथा ।। प्रणमामि सदा वर्णं मूर्तिमान् मोक्षमव्ययम् ।।

(र)- रकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतम् । रक्तविद्युल्लताकारं पञ्चदेवात्मकं सदा ।। पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा । त्रिशक्तिसहितं देवि आत्मादितत्त्वसंयुतम् ।।

(ल)- लकारंचञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतम्। पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम् ।। पञ्चदेवमयंवर्णं पञ्चप्राणमं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।। आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति ।।

(व)- वकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीमोक्षमव्ययम् । पलालधूमसंकाशं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।। त्रिविन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् ।।

(श)- शकारं चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीतत्त्वसंयुतम् । पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम् ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।। आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदि भावय पार्वति ।।

(ष)- षकारं श्रृणुचार्वङ्गि अष्टकोणमयं सदा । रक्तचन्द्रप्रतीकाशं स्वयं परमकुण्डली ।। चतुर्वर्गप्रदं वर्णं सुधानिर्मितविग्रहम् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ।। रजःसत्त्वतमोयुक्तं त्रिशक्ति सहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । सर्वदेवमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।।

(स)- सकारं श्रृणु चार्वङ्गि शक्तिबीजं परात्परम् । कोटिविद्युल्लताकारं कुण्डलीत्रयसंयुतम् ।। पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । रजःसत्त्वतमोयुक्तं त्रिविन्दुसहितं सदा ।। प्रणम्य सततं देवि हृदि भावय पार्वति ।।

(ह)- हकारं श्रृणुचार्वङ्गि चतुर्वर्गप्रदायकम् । कुण्डलीत्रयसंयुक्तं रक्तविद्युल्लतोपमम् ।। रजःसत्त्वतमोवायु पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ।।

(क्ष)- क्षकारं श्रृणु चार्वङ्गि कुण्डलीत्रयसंयुतम् । चतुर्वर्गमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा ।। पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा। त्रिविन्दुसहितं वर्णात्मादितत्त्वसंयुतम् । रक्तचन्द्रप्रतीकाशं हृदि भावय पार्वति ।।

वर्णोच्चारण तन्त्र, शारदातिलक में भी वर्णो की शक्ति, ध्यान एवं सविस्तार चर्चा मिलती है । वर्णो के आयुध, आकारादि का भी वर्णन तन्त्रागमो में एवं वर्णोचारण शिक्षा में प्राप्त हैं ।

वर्णो की महिमा एवं शक्ति - सौन्दर्यलहरी में अकारादि वर्णमातृकाओं का महिमामण्डल स्पष्ट किया गया है। यथा- अकार ८० लाख, आकार १६० लाख, इकार ९० लाख,ईकार १८० लाख, उकार १ करोड़ - ऊकार २ करोड़ - ऋकार ५० लाख,१५० लाख,लृ और ॡ क्रमश १-१ करोड़; ए,ऐ,औ डेढ़ करोड़; विन्दु और विसर्ग अकार से दुगना यानी १६०लाख,तथा सभी व्यञ्जन शक्तियां अकारमंडल से आधी यानी ४०-४० लाख योजन विस्तार वाली कही गयी है । मातृकाओं के वाहन,और आयुध भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

डोप्लर क्रिश्चियन ने ध्वनि के विषयमें अति महत्वपूर्ण संशोधन किया है - जो डोप्लर के सिद्धान्त से प्रसिद्ध है, **अल्ट्रा साउन्ड** का आविष्कार भी इस महान वैज्ञानिक के अभ्यास का परिणाम है, जो आज सोनोग्राफी के द्वारा चिकित्साका उत्तम साधन बन चूका है । फ्रिक्वन्सी एवं वेवलेग्थ के उचित उपयोग से अल्ट्रा साउण्ड उपकरण बनाए जाते है, जो मूषक-चूहे, मच्छरादि को भगानेमें भी उपयुक्त होते है, ठीक उसी प्रकार मंत्रो की ध्वनि भी पूर्णतया वैज्ञानिक है, जिसमें अनुपूर्वी-आवृत्यादि पूर्वक उच्चारण से नकारात्मक, राक्षसी एवं दूषित तत्त्वों से बचनेका अचूक उपाय है ।

उपनिषद में वर्ण - वैसे तो वेदों में, ब्राह्मण ग्रंथोमें वाक् (वर्ण) शक्ति का बहुत स्थान पर वर्णन है, यद्यपि अक्षमालिकोपनिषद तो केवल वर्ण - अक्षरज्ञान की ही बात करता है ।आगे कई स्थानपर श्रुति प्रमाण हैं, यथा पुनरूक्ति की आवश्यकता नहीं है । यह मालाभिमंत्रण में भी उपयुक्त है -

अक्षमालिक उपनिषद -

ओमङ्कार मृत्युञ्जय सर्वव्यापक प्रथमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमाङ्काराकर्षणात्मकसर्वगत द्वितीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमिङ्कारपुष्टिदाक्षोभकर तृतीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमीङ्कार वाक्प्रसादकर निर्मल चतुर्थेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमुङ्कार सर्वबलप्रद सारतर पञ्चमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमूङ्कारोच्चाटन दुःसह षष्ठेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।

ओमृङ्काकार संक्षोभकर चञ्चल सप्तमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमॄङ्कार संमोहनकरोजवलाष्टमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओम्लृङ्कारविद्वेषणकर मोहक नवमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओम्लॄङ्कार मोहकर दशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमेङ्कार सर्ववश्यकर शुद्धसत्त्वैकादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमैङ्कार शुद्धसात्त्विक पुरुषवश्यकर द्वादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमोङ्काराखिलवाङ्मय नित्यशुद्ध त्रयोदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमौङ्कार सर्ववाङ्मय वश्यकर चतुर्दशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमङ्कार गजादिवश्यकर मोहन पञ्चदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ओमःकार मृत्युनाशनकर रौद्र षोडशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ कङ्कार सर्वविषहर कल्याणद सप्तदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ खङ्कार सर्वक्षोभकर व्यापकाष्टादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ गङ्कार सर्वविघ्नशमन महत्तरैकोनविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ घङ्कार सौभाग्यद स्तम्भनकर विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ ङकार सर्वविषनाशकरोग्रैकविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ चङ्काराभिचारघ्न क्रूर द्वाविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ छङ्कार भूतनाशकर भीषण त्रयोविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ जङ्कार कृत्यादिनाशकर दुर्धर्ष चतुर्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ झङ्कार भूतनाशकर पञ्चविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ ञकार मृत्युप्रमथन षड्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ टङ्कार सर्वव्याधिहर सुभग सप्तविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ ठङ्कार चन्द्ररूपाष्टाविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ डङ्कार गरुडात्मक विषघ्न शोभनैकोनत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ ढङ्कार सर्वसंपत्प्रद सुभग त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ णङ्कार सर्वसिद्धिप्रद मोहकरैकत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ तङ्कार धनधान्यादिसंपत्प्रद प्रसन्न द्वात्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ थङ्कार धर्मप्राप्तिकर निर्मल त्रयस्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ दङ्कार पुष्टिवृद्धिकर प्रियदर्शन चतुस्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ धङ्कार विषज्वरनिघ्न विपुल पञ्चत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ नङ्कार भुक्तिमुक्तिप्रद शान्त षट्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ पङ्कार विषविघ्ननाशन भव्य सप्तत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ फङ्काराणिमादिसिद्धिप्रद ज्योतीरूपाष्टत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ बङ्कार सर्वदोषहर शोभनैकोनचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ भङ्कार भूतप्रशान्तिकर भयानक चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ मङ्कार विद्वेषिमोहनकरैकचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।

ॐ यङ्कार सर्वव्यापक पावन द्विचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ रङ्कार दाहकर विकृत त्रिचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ लङ्कार विश्वंभर भासुर चतुश्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ वङ्कार सर्वाप्यायनकर निर्मल पञ्चचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ शङ्कार सर्वफलप्रद पवित्र षट्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ षङ्कार धर्मार्थकामद धवल सप्तचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ सङ्कार सर्वकारण सार्ववर्णिकाष्टचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ हङ्कार सर्ववाङ्मय निर्मलैकोनपञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ ळङ्कार सर्वशक्तिप्रद प्रधान पञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ ।
ॐ क्षङ्कार परापरतत्त्वज्ञापक परंज्योतीरूप शिखामणौ प्रतितिष्ठ ।

सांख्य में वर्ण - अब वाच्य-वाचक भेद से ३६ व्यंजन का सान्ख्य के ३६ तत्त्वों का तादात्म्य (जिसका आगे उपासना विभाग में, न्यासमें भी उल्लेख मिलेगा) - क,ख,ग,घ,ङ - पञ्चमहाभूत, च,छ,ज,झ,ञ - पञ्चतन्मात्रा, ट,ठ,ड,ढ,ण - पञ्चकर्मेन्द्रिय, त,थ,द,ध,न - पञ्चज्ञानेन्द्रिय, प,फ,ब,भ,म - मन,बुद्धि,अहंकार,प्रकृति,पुरुष, य,र,ल,व - राग,विद्या,कला,माया, श,ष,श,ह - महामाया,शुद्धविद्या,ईश्वर,सदाशिव, क्ष - शक्ति एवं सभी वर्ण शिव ।

शारदातिलक में भूतलिपि का वर्णन है । मन्त्रसाधकयोराद्यो वर्णः स्यात्पार्थिवो यदि । तत्कुलं तस्य तत्प्रोक्तमेव-मन्येषु लक्षयेत् । पार्थिवं वारुणं मित्रमाग्नेये मारुतं तथा ।। ऐन्द्रवारुणयोः शत्रुर्मारुतः परिकीर्तितः । आग्नेये वारुणं शत्रुर्वारुणे तैजसं तथा ।। सर्वेषामेव तत्त्वानां सामान्यं व्योमसम्भवम् । परस्परविरुद्धानां वर्णानां यत्र सङ्गतिः । समन्त्रः साधकं हन्ति किं वा नास्य प्रसीदति ।। शा.ति. द्वि.पटल ।। अथ भूतलिपिं वक्ष्ये सुगोप्यामतिदुर्लभम् । यां प्राप्य शम्भोर्मुनयः सर्वान् कामान् प्रपेदिरे।। पञ्चह्रस्वा सन्धिवर्णा व्योमेराग्निजलं धरा । अन्त्यमाद्यं द्वितीयं च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ।। पञ्चवर्गाक्षराणि स्युर्वान्तं श्वेतेन्दुभिः सह । एषा भूतलिपिः प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः ।। आयम्बराणामंवर्गाणां पञ्चमाःशार्णसंयुताः। वर्गाद्याइतिविज्ञेयानववर्गाःस्मृता अमी।।

ज्योतिष मे वर्ण - अब वर्णो के ग्रह, राशियां एवं नक्षत्र का क्या तादात्म्य है, वह बताते है । कुछ अनभिज्ञ - मूर्ख भले ही ज्योतिष को नहीं मानना चाहिए या पाखण्ड कहने की धूर्तता करें । यह छः शास्त्रों मे से एक है और विराट् पुरूष के नेत्र है, भगवान नारायण नेत्रहीन नहीं है, ऐसा बोलनेवालों को प्रज्ञारूपी नेत्र न मिली हो, वह उनका दुर्भाग्य है । हमने तो वसुधैव कुटुम्बकम् की उदात्त भावना का दर्शन किया है, धरती को माता, सूरज को दादा, चन्द्र को मामा इत्यादि नाम से पुकारते है । **प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्रसाक्षिणौ** - शिक्षा । **ब्रह्माऽचार्यो वशिष्टोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यलोमशौ,**

महीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः । च्यवनोयवनो गर्ग कश्यपश्च पराशरः, अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः।। ये सभी ज्योतिषशास्त्र के आचार्य बताए गए है, सभी गलत तो नहीं होंगे, ये सभी ग्रन्थकर्ता भी है । वक्ता को तो प्रायः ये भी मालूम नहीं होगा कि विज्ञान के इतने विकास के शतकों पूर्व से, हमारा ज्योतिष-गणीत आकाशीय परिवर्तनो की, गतिविधियों की वास्तविकता सफलतापूर्वक बताती थी । ग्रहण, ग्रहोंका उदयास्त, उनकी गति, विपरीत गति, अतिचारित्व, प्रकाशवर्ष में उनकी दूरी, मान इत्यादि, कुछ अल्पज्ञ वक्ता तो, विश्वकर्मा के भौवननिर्माण व वास्तु का भी विरोध करते है, वे स्वयं की दृष्टि ही ठीक कर ले तो अच्छा होगा - केवल धन बटोरनेवाले-**शिष्यवित्तोपहारक:** । **यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति** । ये सन्यासी या योगी नहीं, मात्र व्यापारी है । छोडिए, ऐसे अनभिज्ञों के विषयमें चर्चा करना स्वयं की शक्ति का क्षय ही हैं । गीतामें कहा है - गुणा गुणीषु वर्तन्ते - उनकी ऐसी चेष्टा ही उनका मूलस्वरूप का दर्शन कराती है । न तो वे शास्त्र जानते है, न हि उपासक है, केवल योग की दुकान लगाकर बैठे है । कुछ शास्त्रों में शून्य हो ऐसे वक्ता, ज्योतिष, वास्तु आदि का विरोध करते हैं । वे भागवतादि पुराण, रामायण, महाभारत को तो मानते ही होंगे, क्योंकि गीतादि के श्लोको का संदर्भ अपने प्रवचनोंमें जो देते है । हम इन्हें परामर्ष देते हैं कि, आपने पुराणों को न पढा हो तो पढ लिजिए या तो अपनी निजि मान्यता को आप तक सिमीत रखिए, श्रोताओ को बताने कि जरूरत नहीं है, यदि चर्चा ही करनी हो तो विद्वानों को आवाहित करें । मात्र वास्तु एवं ज्योतिष के लिए, हि स्वतंत्र अध्याय अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, स्कन्दपुराण, महाभारतादि में है और वे ऋषियों के संवादरूपेण है, यदि आप वाल्मिकी या वेदव्यास से भी ज्यादा विद्वान है तो दूसरी बात है । मैं स्विकारता हुं कि, मैने भी सभी पुराण पूर्णरूपेण नहीं पढे है, यद्यपि कोई भी पुराण से इनको सिद्ध करने कि क्षमता भगवद्कृपा से है । वास्तु की उत्पत्ति ब्रह्मा से है, यज्ञ करने से पहले या मंदिर निर्माण से पहले, ज्योतिष व वास्तु का विचार शास्त्रोचित है । पूरा पंचाग गणित एवं ग्रहोंकी गतिविधिया, ग्रह एवं नक्षत्रो के उदयास्तादि, हमारे ऋषिगण सहस्रो वर्षो से करते आए है, विज्ञान के दूर्बीन के विकास के पूर्व भी ग्रहण एवं ग्रहोका उदयास्त बतानेवाला शास्त्र ज्योतिष है, जो वेदों के हिसाब से भगवान के नेत्र हैं, हम अन्धे भगवानकी पूजा नहीं करते, हमारा सम्बन्ध पूरे ब्रह्माण्ड से है, हम बचपन से ही धरतीमता बोलते है, सूरजदादा बोलते है, चांदामामा बोलते है और इस सम्बन्धो का वैज्ञनिक रूप बतानेवाले शास्त्रको ज्योतिष कहते है । इसका विस्तार कथन यहां अप्रासंगिक भी है ।

अब आगे ज्योतिष का वर्णो से संबंध पर विचार करते है । तदा स्वरेशः सूर्योऽयं कवर्गेशस्तु लोहितः । चवर्गप्रभवः काव्यष्टवर्गाद् बुधसम्भवः ।। तवर्गोत्थः सुरगुरुः पवर्गोत्थः शनैश्चरः । यवर्गजोऽयं शीतांशुरिति सप्तगुणा त्वियम् ।। यथा स्वरेभ्यो नान्ये स्युर्वर्णाःषड्वर्गभेदिता । तथा सवित्रनुस्यूतं ग्रहष्टकं न संशयः ।। तथा च -

आद्यैर्मेषाह्वयो राशिरीकारान्तैः प्रजायते । ऋकारान्तैरुकाराद्यैर्वृषो युग्मं ततस्त्रिभिः ।। एदैतोः कर्कटो राशिरोदौतोः सिंहसम्भवः । अमः शवर्गलेभ्यश्च सञ्जाता कन्यका मता ।। षड्भ्यः कचटतेभ्यश्च पयाभ्यां च प्रजजिरे । बणिगाद्याश्च मीनान्ता राशयः शक्तिजृम्भणात् ।। चतुर्भिर्मादिभिः सार्द्ध स्यात् क्षकारस्तु मीनगः ।। तथा च-

एभ्यः एव तु राशिभ्यो नक्षत्राणां च सम्भवः । स चाप्यक्षरभेदेन सप्तविंशतिधा भवेत् ।। आभ्यामश्वयुगेर्जाता भरणी कृत्तिका पुनः । लिपित्रयाद्रोहिणी च तत्पुरस्ताच्चतुष्टगात् ।। एदैतोमृगशीर्षार्द्रे तदन्त्याभ्यां पुनर्वसुः । अमसोः केवलो योगो रेवत्यर्थं पृथङ्मतः ।। कतस्तिष्यस्तथाश्लेषा खगयोर्घङ्योर्मघा । चतः पूर्वाथ छजयोरुत्तरा झञयोस्तथा ।। हस्तश्चित्रा च टठयोः स्वाती डादक्षरादभूत् । विशाखा तु ढणोद्भूता तथदेभ्योऽनुराधिका ।। ज्येष्ठा धकारान्मूलाख्या नपफेभ्यो वतस्तथा । पूर्वाषाढा भतोन्या च सञ्जाता श्रवणा मतः । श्रविष्ठाख्या च यरवोस्ततः शतभिषा लतः । वशयोः प्रोष्ठपत्संज्ञा षसहेभ्यः परा स्मृतः - प्रपञ्चसार ।। सारांश निम्नानुसार -ग्रह-राशि-नक्षत्र (यथा पूरेब्रह्माण्ड का तादात्म्य) ।

सूर्य - अआदि षोडश स्वर, मंगल - कवर्ग, शुक्र - चवर्ग, बुध - टवर्ग, बृहस्पति - तवर्ग, शनी -पवर्ग, चन्द्र - यवर्ग ।

मेष -अ,आ,इ,ई, वृषभ - उ,ऊ,ऋ, मिथुन -ॠ,लृ,ॡ, कर्क - ए,ऐ, सिंह - ओ,औ, कन्या - अं,अः,श,ष,स,ह,ळ, तुला - क,ख,ग,घ,ङ, वृश्चिक - च,छ,ज,झ,ञ, धन - ट,ठ,ड,ढ,ण, मकर - त,थ,द,ध,न, कुंभ - प,फ,ब,भ,म, मीन - य,र,ल,व ।

अश्विनी अ,आ - भरणी इ - कृत्तिका ई,उ,ऊ - रोहिणी ऋ,ॠ,लृ,ॡ - मृगशिरा - आर्द्रा ऐ - पुनर्वसु ओ, औ -पुष्यक - आश्लेषा ख,ग - मघाघ,ङ - पूर्वाचउत्तरा छ,ज - हस्ताझ,ञ - चित्राट,ठ -स्वाती ड - विशाखाढ,ण - अनुराधात,थ,द - ज्येष्ठा ध - मूल न,प,फ - पूर्वाषाढ ब - उत्तराषाढ भ -श्रवण, म - धनिष्ठाय,र - शतभिष ल - प्रोष्ठपदा(पू।भा।)व,श - उत्तरभाद्रपदष,स,ह,क्ष - रेवतीअं,अः,ळ ।

व्योमेराग्निजलक्षोणी वर्गवर्णान् पृथग्विदुः । द्वितीयवर्गे भूर्नस्यात् नवमे न जलं धरा ।। विरिञ्चिविष्णुरुद्राश्विप्रजापतिदिगीश्वराः । क्रियादिशक्तिसहिताः क्रमात्स्युः वर्गदेवताः ।। ऋषिःस्याद्दक्षिणामूर्तिःगायत्रंछन्दईरितम्। देवताकथितासद्भिःसाक्षाद्वर्णेश्वरीपरा ।।

अर्थात् इन सभी वर्णों के देवता,ऋषि और छन्द भी स्पष्ट है। क्रिया ज्ञान और इच्छा आदि इन वर्णों की शक्तियां कही गयी है । विरिञ्चि, विष्णु, रुद्र, अश्विनी, प्रजापति तथा चारो दिगीश्वर इनके स्वामी कहे गये है ।

परात्रिंशिका के अनुसार वर्ण हि समस्त विद्याओं के जनक है - अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता । सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्थिनि ।। इयं योनिः समाख्याता सर्व तन्त्रेषु सर्वदा ।।

पुराण में वर्ण - वैसे तो पुराणों में अनेक स्थान पर वर्ण शक्ति का वर्णन व संगति मिलती है । यद्यपि अग्निपुराण के एकाक्षराभिधानानुसार वर्णो के देवता बताते है (मूलम्) - **एकाक्षराभिधानं** ।अग्निरुवाच ।

एकाक्षराभिधानञ्च मातृकान्तंवदामिते ।अ विष्णुःप्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः १
सीमायामथाव्ययं आ भवेत्संक्रोधपीडयोः । इःकामे रतिलक्ष्म्योरी उःशिवे रक्षकाद्य ऊः २
ऋशब्देचादितौ ॠस्यात् ऌ ॡ ते वैदितौ गुहे। एदेवीऐयोगिनीस्यादो ब्रह्मा औमहेश्वरः ३
अङ्कामःअःप्रशस्तःस्यात्कोब्रह्मादौकुकुत्सिते। खंशून्येन्द्रियं खङ्गोगन्धर्व्वे च विनायके ४
गङ्गीते गोगायने स्याद्घोघण्टा किङ्किणीमुखे । ताड़ने ङश्च विषये स्पृहायाञ्चैव भैरवे ५
चो दुर्जनेनिर्म्मलेछश्छेदे जिर्ज्जयनेतथा । जंगीते झःप्रशस्ते स्याद्बले ३ ञो गायने च टः ६
ठश्चन्द्रमण्डले शून्ये शिवे चोद्बन्धने मतः। डश्चरुद्रे ध्वनौत्रासे ढक्कायां ढो ध्वनौ मतः ७
णो निष्कर्षे निश्चये च तश्चौरे क्रोडपुच्छके । भक्षणे थश्छेदने दो धारणे शोभने मतः ८
धो धातरि चधूस्तूरे नो वृन्दे सुगते तथा । प उपवने विख्यातः फश्च झञ्झानिले मतः ९
फुःफुत्कारेनिष्फले च विःपक्षीभश्चतारके।माश्रीर्म्मानिश्चमातास्याद्यागयो यातृवीरणे १०
रोबह्नौ च लःशक्रे च लो विधातरि ईरितः। विश्लेषणे वो वरुणे शयने शश्च शं सुखे ११
षःश्रेष्ठे सःपरोक्षे च सा लक्ष्मीः संकचे मतः। धारणेहस्तथा रुद्रे क्षः क्षत्रे चाक्षरे मतः १२
क्षो नृसिंहे हरौ तद्वत् क्षेत्रपालकयोरपि । मन्त्र एकाक्षरो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः १३
हैहयशिरसे नमः सर्व्वविद्याप्रदो मनुः । अकाराद्यास्तथा मन्त्रा मातृकामन्त्र उत्तमः १४
एकपद्मेऽर्च्चयेदेतान्नव दुर्गाश्च पूजयेत् । भगवती कात्यायनी कौशिकी चाथ चण्डिका १५
प्रचण्डा सुरनायिका उग्रा पार्व्वती दुर्गया । ॐ चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।क्रमादि तु षड़ङ्गं स्याद्गणो गुरुर्गुरुः क्रमात् १६
अजितापराजिताचाथ जयाचविजयाततः।कात्यायनीभद्रकाली मङ्गलासिद्धिरेवती १७
सिद्धादिवटुकाःपूज्या हेतुकश्चकपालिकः। एकपादोभीमरूपो दिक्पालान्मध्यतो नव १८
ह्रींदुर्गेदुर्गेरक्षणिस्वाहामन्त्रार्थसिद्धये।गौरीपूज्याचधर्म्माद्याःस्कन्दाद्याःशक्तयोयजेत् १९
प्रज्ञाज्ञानाक्रियावाचावागीशीज्वालिनीतथा।कामिनीकाममालाचइन्द्राद्याःशक्तिपूजनं ।
ओंगंस्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गंवागणपतये नमः । षड़ङ्गो रक्तशुक्लश्च दन्ताक्षपरशूत्कटः २१
समोदकोऽथ गन्धादिगन्धोल्कायेति च क्रमात्। गजोमहागणपतिर्म्महोल्कःपूज्यएव च २२
एतैर्म्मनुभिःस्वाहान्तैःपूज्यतिलहोमादिनार्थभाक्।काद्यैर्वावीजसंयुक्तैस्तैराद्यैश्चनमोऽन्तकैः
मन्त्राःपृथक्पृथग्वा स्युर्द्विरेफद्विर्मुखाक्षिणः ।कात्यायनं अकन्द आह यत्तद्व्याकरणं वदे २४
इत्याग्नेये महापुराणे एकाक्षराभिधानं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।

अन्य पुराण एवं आगम-यामलो में भी वर्णो के देवत्व के विषय में चर्चा है, यद्यपि यहां इतना पर्याप्त लगता है ।

व्याकरण में वर्ण - नन्दिकेश्वरकाशिका २७ पदों से युक्त दर्शन एवं व्याकरण का एक ग्रन्थ है। इसके रचयिता नन्दि या नन्दिकेश्वर (२५० ईसापूर्व) है। इस ग्रन्थ में शैव अद्वैत दर्शन का वर्णन है, साथ ही यह माहेश्वर सूत्रों की व्याख्या के रूप में है । उपमन्यु ऋषि ने इस पर 'तत्त्वविमर्शिणी' नामक टीका रची है। नन्दिकेश्वर को पाणिनि, तिरुमूल, पतञ्जलि, व्याघ्रपाद, तथा शिवयोगमुनि का गुरु माना जाता है । शिव जी के डमरू नाद से, वर्णो की व्यवस्था - व्याकरण की रचना का वंदनीय कार्य किया है । श्री भर्तृहरि का वाक्यपदीय भी वर्ण, अर्थादि विषये विशेष प्रकाश डालता हैं ।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥ १॥
अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यवर्णचतुर्दशम्।धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥ २॥
॥ अइउण्॥ १॥
अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः॥ ३॥
अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः।आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते॥ ४॥
सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत्।ज्ञप्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक ततः स्मृता॥ ५॥
वक्त्रे विशुद्धचक्राख्ये वैखरीसामता ततः।सृष्ट्याविर्भावमासाद्य मध्यमा वाक समामता॥६॥
अकारं सन्निधीकृत्य जगतांकारणत्वतः।इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं गतम्॥ ७॥
जगत् स्रष्टुमभूदिच्छा यदा ह्यासीत्तदाऽभवत्।कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगाः॥ ८॥
अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला मता।उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः॥९॥
॥ ऋऌक्॥ २॥
ऋऌक् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत्।तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत्॥ १०॥
वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते।चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्वद् यथा वागर्थयोरपि॥ ११॥
स्वेच्छयास्वस्यचिच्छक्तौविश्वमुन्मीलयत्यसौ।वर्णानांमध्यमं क्लीबमृऌवर्णद्वयंविदुः१२॥
॥ एओङ्॥ ३॥
एओङ्मायेश्वरात्मैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु।साक्षित्वात्सर्वभूतानांस एकेति निश्चितम्॥१३॥
॥ ऐऔच्॥ ४॥
ऐऔच् ब्रह्मस्वरूपःसन्जगत्स्वान्तर्गतं ततः।इच्छयाविस्तरंकर्त्तुमाविरासीन्महामुनिः॥१४॥
॥ हयवरट्॥ ५॥
भूतपञ्चकमेतस्माद्धयवरण्महेश्वरात्।व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि॥ १५॥
हकाराद् व्योमसंज्ञं च यकाराद्वायुरुच्यते।रकाराद्वह्निनस्तोयं तु वकारादिति सैव वाक्॥ १६॥
॥ लण्॥ ६॥
आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम्।अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम्॥१७॥
॥ ञमङणनम्॥ ७॥
शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाश्च ञमङणनम्।व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु॥ १८॥

॥ झभञ्॥ ८॥
वाक्पाणी च झभञासीद्विराड्रूपचिदात्मनः।सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते॥
वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियमया हि ते॥ १९॥
॥ घढधष्॥ ९॥
घढधष् सर्वभूतानां पादपायू उपस्थकः।कर्मेन्द्रियगणा ह्येते जाता हि परमार्थतः॥ २०॥
॥ जबगडदश्॥ १०॥
श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वाधीन्द्रियपञ्चकम्।सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश्॥ २१॥
॥ खफछठथचटतव्॥ ११॥
प्राणादिपञ्चकं चैव मनो बुद्धिरहङ्कृतिः।बभूव कारणत्वेन खफछठथचटतव्॥ २२॥
वर्गद्वितीयवर्णोत्थाः प्राणाद्याः पञ्च वायवः।मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः॥ २३॥
॥ कपय्॥ १२॥
प्रकृतिंपुरुषञ्चैव सर्वेषामेवसम्मतम्।सम्भूतमिति विज्ञेयं कपय् स्यादिति निश्चितम्॥ २४॥
॥ शषसर्॥ १३॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।समाश्रित्य महादेवः शषसर् क्रीडति प्रभुः॥ २५॥
शकारद्राजसोद्भूतिः षकारात्तामसोद्भवः।सकारात्सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः॥ २६॥
॥ हल्॥ १४॥
तत्त्वातीतः परं साक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः।अहमात्मा परो हल् स्यामिति शम्भुस्तिरोदधे॥ २७॥
॥ इति नन्दिकेश्वरकृता काशिका समाप्ता॥

भगवान नन्दीकेश्वरके मत से - भूतपंचकमेतस्माद् हयवर महेश्वरात्। व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि ।। हकारातद् व्योमसंज्ञश्च यकाराद् वायुरुच्यते। रकाराद् वह्निस्तोयन्तु वकारादिति शैववाक्।। आधारभूतं भूतानामन्नादीनांच कारणम्। अन्नाद् रेतस्ततो जीव: कारणत्वाल्लणीरितम्।। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्च यँमड०णनम्। व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु।। वाक् पाणी च झभयाँसीत् विराड् रूप चिदात्मन:। सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते ।। वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियगणा हि ते।घढधष् सर्वभूतानां पाद पायुह्युपस्थका: ।। श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वाधीन्द्रियपंचकम्। सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश।। वर्गेषु मध्यमा वर्णा: ज्ञानेन्द्रियगणा: स्मृता: सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा। समाश्रित्य महादेव: श ष स क्रीडति प्रभु: ।। शकाराद् राजसं रूपं षकारात्तामसोद्भव: । सकारात्सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भव: ।। तत्त्वातीत: पर: साक्षी सर्वानुग्रहविग्रह: । अहमात्मा परो हल्स्यादिति शम्भु: तिरोदधे ।। हकार: शिववर्ण: स्यादिति शैवागमाच्छ्रुतम्।।

पञ्चभूतात्मक प्रकृति एवं वर्ण -

वायु अ,आ,ए,क,च,ट,त,प,य,ष - **अग्नि** इ,ई,ऐ,ख,छ,ठ,थ,फ,र,क्ष-
पृथ्वीउ,ऊ,ओ,ग,ज,ड,द,ब,ल,ळ - **जल** ऋ, ॠ,औ,घ,झ,ढ,ध,भ,व,स-

आकाशलृ,लॄ,क्ष,ङ,ञ,ण,न,म,श,ह पञ्चमहाभूत का वर्णो से संबंध। आगे उपसना विभाग में इसे पुनः सविस्तर बताया जाएगा।

योग में वर्ण - सांख्य के छत्तीस तत्त्वों को कचटचपयशादि व्यंजन कहे गए हैं। षट् चक्र निरूपण में कहा है : - मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे।
मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चंद्रसूर्याग्निरूपा।
धुस्तुर-स्मेर-पुष्प-ग्रथिततम-वपुः कंदमध्याच्छीरस्था।
वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छीरसि परिगतामध्यमेस्या ज्वलन्ती ।।

मेरुदंड के बाहर वायें तथा दायें भाग मेंइडा तथा पिंगला नामी दो नाडियांहैऔर बिच में सुषुम्णा नाम्नी नाडी है जोकी सत्त्व, रज और तम आदि त्रिगुणमयीऔर चंद्र, सूर्य एवं अग्नि के समान देदीप्यमान है। प्रष्फुटित धतूरा पुष्प के जेसे शरीर जैसी सुषुम्णा नाड़ियों केउत्पत्ति स्थान कंद से लेकर मस्तकान्तर्गतसहस्त्रार पर्यन्त गमन करती है। इसके अंदरलिंगमूल स्थान से वज्रा नाम्नी अन्य एकनाड़ी गयी है मस्तक पर्यन्त।तन्मध्ये सा प्रणव विलसिता योगिनाम्योगगम्या। लू तातंतुपमेया सकल सरसिजान्मेरुमध्यांतर स्थान्। भित्त्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनयाशुद्धबोधस्वरूपातन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुख कुहरादादि देवांतसंस्था ।।

उस वज्रा नाड़ी के भीतर चित्रिणीनाड़ी है जो की प्रणव के समान प्रकाशवाली और मकड़ी के सूत समान सूक्ष्मताके कारण ध्यान द्वारा योगियों कोविदित होती है। वह नाड़ी मेरु मध्य स्थितसमस्त कमलों को भेद कर गूंथती हुई औरअधिक प्रकाशित कर रही है तथा तथाउसके बिच में शुद्ध ज्ञानरूपी ब्रह्मनाड़ीमूलाधार स्थित कुण्डली अंकूशाकारा मध्यं शून्यं सदाशिवः - (यह सुषुम्णा) मूलाधारस्थ स्वयंभू शिव लिंग के मुख से निकल कर मस्तकान्तर्गत सहस्त्रदल स्थित परमब्रह्म पर्यन्त गयी है।

कौलिकतंत्र ताराकल्प में कहा गया - सप्तपद्मं मयैवोक्तं सुषुम्णा ग्रथितं प्रिये। अधोवक्त्रादिमान्तश्च न आख्येयं यस्यकस्यचित् ।।है देवी ! मेरे द्वारा कहे गए यह सात पद्मसुषुम्ना द्वारा गुंथे हुए है और अधोमुखी होकर स्थित है। इस सुषुम्णा के पथ पर सात चक्र है क्रमेण - मूलाधार से लेकर विशुद्ध तक पंचदेव कानिवास है।मूलाधार में अग्रपूज्य गणेश, स्वाधिष्ठान में आदिशक्ति दुर्गा, मणिपुर में प्राणों के स्त्रोत सूर्य, अनाहत में सर्वत्र परिव्याप्त भगवान् नारायण और विशुद्ध में भगवान् शिवका अस्थान है। आज्ञाचक्र में इष्टदेव तथा सहस्त्रदल कमल में परमात्मा का वास है।

विश्वसार तंत्र के अनुसार **सर्ववर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्तितं। दक्षिणावर्तयोगेन लिखनंचिन्तयेतद्धिया** ।। अतः यह सारे पद्मों के पंखुड़िया वर्णात्मक है अथवा वर्णों से सुसज्जित है और इनकी उपस्थिति लिखते समयदक्षिणावर्त (clock wise) रूप

मेंपरिकल्पना करना चाहिए । इसका पूरा विवरण एवं उपासना विधि का इस लेख के द्वितीय भाग में विस्तृत रूपेण निरूपण किया है ।

आधारेलिंगनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वेपत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के । वासान्तेबालमध्ये डफकठसहितेकण्ठदेशेस्वराणां हँक्षँ तत्वार्थंयुक्तं सकलदल गतंवर्णरूपं नमामि ।

कण्ठेषोडशदलपद्मे **अकारादि** स्वरान्यसेत् । हृदयस्थे द्वादशदल पद्मे **कादिठा**न्तान्यसेत् । नाभौ द्वादशदलपद्मे **डादिफा**न्तान्न्यसेत् । लिंगे षड्दलपद्मे **बादिला**न्तान्न्यसेत् । आधारे चतुर्दले **वादिसा**न्तान्न्यसेत् । ललाटे द्विदले **हँ क्षँ** द्वौवर्णौ न्यसेत् ।। मूलाधार = वं , शं, षं, सं-स्वाधिष्ठान = बं, भं, मं, यं, रं, लं - मणिपुर= डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, टं, ठं - अनाहत = कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं,ठं - विशुद्ध = अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं ऋं, ॠं,लृं, ॡं , एं, ऐं, ओं, औं , अँ, अः - आज्ञा = हं , क्षं एवं पूरे ५० वर्णों की २० आवृत्ति ब्रह्मरन्ध्र-सहस्त्रसार में है ।

कर्मकाण्ड मे वर्ण - आजकल कर्मकाण्ड का विरोध सामान्य हो गया है, इसका प्रधान कारण यह हैं कि जो स्वयं शास्त्रों से अनभिज्ञ है, उनको एक अज्ञात भय है कि विद्वान एवं ब्राह्मण ही हमारी पाखण्डलीला को प्रकाशित कर सकते है, यथा उनको हि जनसामान्य से विमुख कर दे, तो हमारा (लूंट का) साम्राज्य बना रहेगा, आज के तथाकथित संतो-वक्ताओं के लिए एक स्वतंत्र लेख प्रकाशित किया है, यथा यहां उनके विवरण को स्थान नहीं है । सभी विद्वानों को मेरी नम्र प्रार्थना है कि, शास्त्रविरुद्ध उक्तियों के लिए मौन न रहे, आपकी सुषुप्ति आपकी कर्तव्यपलायनता ही है । स्वयं भगवान ने बौद्धावतार में वेदों का विरोध किया था, तब वेद एवं शास्त्रों की रक्षा के लिए भगवान शंकरने स्वयं शंकराचार्यरूपेण अवतरित होकर, उनकी नास्तिक विचार धारा को, भारत से दूर भगाने का अथक प्रयास किया था और अद्वैतमत का प्रतिपादन किया था । आज विद्वानों को पुनः शास्त्र रक्षाके पथपर प्रशस्त होने का समय पक चूका हैं । यदि ऐसे वक्ता शास्त्रों के लिए गुरूपसदन न स्विकारे, तो उनके वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करें । यही यथार्थ रूप में जन सेवा है और भगवद्सेवा भी है, उपासना भी है । जनसामान्य को शास्त्रमार्ग से पदभ्रष्ट होने से बचाए यही आपका यज्ञ है ।

मूल बात का अब प्रारम्भ करतें है । गणपति-पुण्याहवाचनान्त कर्मोपरान्त, गौर्यादि मातृकाओं का पूजन करतें है । उसमें भी वर्ण साधना ही है । अब जो षोडश स्वर है, वे रात्रीसूक्त के स्वरात्मिका नित्या एवं वषट्कार स्वरात्मिका या ललिता सहस्त्रनाम के मातृका वर्णरूपिणी है, ऊर्जा-चैतन्य स्वरूपिणी है । वैसे तो अकारादि क्षकारान्ता मातृका वर्णरूपिणा कहा गया है, यद्यपि व्यंजन को पूर्णत्व स्वर से मिलता है । सांख्य के जो छत्तीस तत्त्व है वह कादिक्षान्त में है, उसमें चेतना संचार जो करते है वह स्वर है,

यथा मंत्रो को ऊर्जावान यहीं षोडश वर्ण करते है, जिनकी मातृकारूप में प्रथम पूजा करतें है । स्वरा: षोडश पीठास्था तथा देवी स्वरात्मिका कहा है ।। करते हुए कहता है कि **सचते स षोडशी** -यजु. ८.३६, यहां षोडश मातृकाओं का संकेत है ।

पुनः सप्तघृत मातृकाओं का पूजन है, जिसे स्नेह मातृका या छन्दमातृका कहना भी उचित ही है । इस सात छन्दो में सप्तवर्गाद्य वर्ण का उल्लेख कर चूके है - **अकचटतपशाद्यै** । अन्यत्र ।। प्रत्येक वर्ग में शक्ति है । **अवर्गे तु महालक्ष्मीः कवर्गे कमलोद्भवा ॥१.३४॥ चवर्गे तु महेशानी टवर्गे तु कुमारिका । नारायणी तवर्गे तु वाराही तु पवर्गिका ॥१.३५॥ ऐन्द्रीचैवयवर्गस्था चामुण्डा तु शवर्गिका । एताःसप्तमहामातृः सप्तलोकव्य वस्थिताः ॥** स्व.तंत्र १.३६॥

जब पश्यन्ती रूपेण वाक् कण्ठमें आकर स्पन्दन द्वारा वैखरीरूप धारण करती है, तब वह गायत्रीत्रिष्टुपादि छन्द स्वरूप में बहार आती है । यही सप्त घृत मातृका या स्नेह मातृकाओं का स्वरूप है, जो गायत्र्यादि छन्द रूपेण परावाक् को मन्त्र रूप में स्वरित करती है । गणेश जो कि वर्णोके आदि योजक है, उनके साथ षोडश स्वर मातृका एवं सप्त वसोर्धाराओं का पूजन करने की परंपरा है । कर्म में मंत्रो के साथ तारक, स्वाहा, स्वधा, वषट्, वौषट् जो लगाते है, वह भी (तस्य चत्वारि स्तनाः) वाक् रूपी कामधेनु के अमृतस्त्रवा चार स्तन है । यह एक सुंदर कल्पना है । अग्निर्वाक् भूत्वा - कहा है, यथा अग्नि स्थापनोपरांत चत्वारि श्रृंगा - की जो प्रार्थना करते है, वह भी वाक् विस्तार का वर्णन ही है । चत्वारि श्रृंगास्त्रयो अस्य पादा:, द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश ।। योग शास्त्र के प्रणेता भगवान् श्री पतंजलि ने इसकी जो व्याख्या की है, उसकेअनुसार वाक् वृषभ है, जिसके चार श्रृंग-चार पद-समूह (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) है । तीन पैर है-तीन काल (भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्) इन तीन कालों के बोधक है लट् आदिप्रत्यय, स्वयं काल नहीं, क्योंकि काल की पादत्व-कल्पना अयुक्त है। कारण कि काल वर्णरूप नहीं है, इसलिए उसमें शब्द के अवयव पाद की कल्पनानहीं हो सकती। द्वे शीर्षे=दो शिर है यानी दो प्रकारके शब्दात्मा-नित्य और कार्य, जो नश्वर है। वैखरीरूप ध्वनि कार्य और अनित्य है तथा आन्तर प्रणवरूप स्फोट या शब्दब्रह्म नित्य है। सप्त हस्तासोअस्य=इसके सात हाथ है सात विभक्तियाँ।त्रिधा बद्धः= यह तीन स्थानों में बद्ध है, उरसि, कण्ठे, शिरसि चहृदय, कण्ठ और शिर में।वृषभ इति=वृषभ के रूप में यहाँ शब्दब्रह्म कानिरूपण है। वर्षणाद् वृषभ:, वर्षण करने से यहवृषभ है। वर्षण से तात्पर्य है, ज्ञानपूर्वक अनुष्ठानसे फल प्रदान करना । रोरवीति यानी शब्दं करोति, शब्द करता है । मातृकाशब्दराशिसंघट्टात् शक्तिमदैक्यात्म लक्षणात् लवणारनालवत्परस्परमेलनात् - भिन्ना बीजैर्भेदिता योनयो व्यञ्जनानि यस्याः सा तथाविधा सती (तन्त्रालोकविमर्श) तथा च- तंत्रलोकानुसारेण - शब्दराशिः स एवोक्तोमातृका साच कीर्तिता । क्षोभ्य क्षोभकतावेशान्मालिनीं तां

प्रचक्ष्महे।। बीजयोनिसमापत्तिर्विसर्गोदय सुन्दरा । मालिनी हि पराशक्तिनिर्णीता विश्वरुपिणी ।। यानि यही शक्ति सम्पूर्ण विश्व को अपने रुप में धारण करती है,अथवा कहें कि, समग्र को अपने में अन्तर्भूत कर लेती है। यही कारण है वो मालिनी कहलाती है। यथा **मलते विश्वं स्वरुपे धत्ते, मालयति अन्तःकरोति कृत्स्नमिति च मालिनीति व्यपदिश्यते** । वस्तुतः भैरवात्मक शब्द - राशि को मातृका और मालिनी इन दो रुपों में स्मरण करते है । शब्द के आठ प्रकार बताए है - घोषो रावः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च । झांकारोध्वङ्कृतिश्चैव ह्यष्चौ शब्दाः प्रकीर्तिताः - स्वच्छन्द ११.६.७।यह तो केवल परिचय मात्र है, चतुःषष्ठी योगिनी, भैरव (यामल), क्षेत्रपाल, अवकहडा चक्र, वास्तु आदि सबका मूल आधार वर्णोमें निहित है । भूशुद्धि, भूतशुद्धि, पीठन्यास, अतर्मातृका, बहिर्मातृका में तंत्र, योग एवं वेद का समन्वय दिखता है । वैदिकस्तांत्रिको मिश्र त्रविधो मख उच्यते - कर्मकाण्ड का आधार वेद-तंत्र एवं दोनों के मिश्र स्वरूप है, उस में योग एवं भक्तिका भी समन्वय है, प्रत्येक कर्म एवं नमम उच्चारण कर्मबंधन एवं कर्मदोष से मुक्ति दिलाता है । कर्मकाण्ड का प्रारम्भ एवं विकास केवल तार्कित नहीं, किन्तु पूर्णरूप से वैज्ञानिक आधार पर है । सभी सम्प्रदायों व धर्म में परम तत्त्व को आत्मसात् करनेकी प्रणाली एवं परम्परा संप्रदाय प्रवर्तकोने निःश्रेयसार्थ, सर्वजन हितार्थ ही बनाई है । इनका विरोध, पाखण्ड, मूर्खता व अज्ञान का प्रदर्शन मात्र है ।

प्रकीर्ण - आगम-निगम, तंत्र, योग, सांख्य, ज्योतिष, व्याकरण, कर्मकाण्ड से मंत्रशक्ति का वर्णन-विस्तार बताया । अब मंत्र के स्वरूप, उच्चारण प्रणाली, भेदादि का विचार करेंगे । आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युक्ते विवक्षया । मनःकायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयते स्वरम् ।अत्र चतसृणामवस्थानां वर्णनं कृतम् । उच्चैर्निषाद, गांधारौ नीचै ऋर्षभधैवतौ । शेषास्तु स्वरिता ज्ञेया:, षड्ज मध्यमपंचमा: - स्वर विज्ञान । बिन्दोः तस्माद् भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत् ।स एव श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते - वाक्यपदीय । यथा संगीत, स्वरोदय, आयुर्वेद एवं पिंगलकृत छन्द शास्त्र में भी इसकी संगति संभवित है ।

उच्चारण विधान - डोप्लर थियरी भी कुछ हमारे शास्त्रीय विवरण से मिलती हैं, अतः ध्वनि की शक्तियों के दर्शनमें भी हम अग्रसर थे, परिभाषाए भले ही भिन्न है । मन्त्रो में शुद्धि होना अत्यावश्यक है, इसी कारण हमारे महामनीषियोंने उग्रतपस्या से परिणित वर्णोच्चारण विज्ञान का आविष्कार किया है । हृदय के भावों का प्रधान्य है, इसका अर्थ कदापि यह नहीं हो सकता कि उच्चारण का कोई महत्व नहीं । देखिए - मन्त्रहीन - स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह, स वागवज्रो, यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वत्तोऽपराधात् । अभी देखो अंग्रेजी मे ही बताते है Dear or Deer, Bad or Bed. अर्थ बदलेगा या नहीं ? **स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्** - स्वजन का अर्थ है परिवार का सभ्य श्वजन का अर्थ है कुत्ते का परिवार, सकल का अर्थ है

सबकुछ, शकल का अर्थ है टूकडा, कुछ हिस्सा एवं सकृत का अर्थ है एकबार किया हुआ कर्म और शकृत का अर्थ है विष्टा। अब आप ही विचार करे कि, उच्चारण में सावधानी की आवश्यकता है या नहीं।

मन्त्र का हर एक वर्ण कुछ विशेष शक्तिकेंद्रो पर प्रत्याघात करता है, उस प्रत्याघात और उन ऊर्जकेंद्र के ऊर्जा उत्सर्जन के मिश्रण से एक विशिष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, वही होती है मन्त्रजप की शक्ति। **वर्णस्य मुखात्बहिरागमनसमये या चेष्टा भवति स: तु बाह्यप्रयत्न: इति कथ्यते। बाह्यप्रयत्न: एकादशधा भवति। बाह्यस्तु एकादशधा एते अधोक्ता: सन्ति**। वैखरी बनते शब्द की ११ रीत बताई है।

१. विवार: - विवारस्य अर्थ: मुखस्य उद्घाटनमिति अस्ति - विवारयति विकासयति मुखमिति। अर्थात् वर्णोच्चारणे मुखोद्घाटनं विवार: इति कथ्यते।
२. संवार: - वर्णानामुच्चारणे मुखस्य संकोच: (अल्प उद्घाटनम्) संवार इति कथ्यते।
३. श्वास: - येषामुच्चारणे श्वास: चलति इत्युक्ते येषामुच्चारणे मुखात् अधिकवायु: निर्गच्छति तत्र श्वासप्रयत्न: उच्यते।
४. नाद: - मधुरा ध्वनि: नाद इति कथ्यते।
५. घोष: - वर्णोच्चारणे गुंजनं घोष इति कथ्यते।
६. अघोष: - गुंजनस्याभाव: अघोष इति कथ्यते।
७. अल्पप्राण: - वर्णोच्चारणे प्राणवायो: अल्पप्रयोग: अल्पप्राण इति कथ्यते।
८. महाप्राण: - वर्णोच्चारणे प्राणवायो: अतिप्रयोग: महाप्राण इति कथ्यते।
९. उदात्त: - उच्चारणावयवानां उच्चभागै: उच्चारणम् उदात्त:।
१०. अनुदात्त: - उच्चारणावयवानां निम्नभागै: उच्चारणम् अनुदात्त:।
११. स्वरित: - समभागैरुच्चारणं स्वरित इति कथ्यते।

वर्णा अक्षराणि इति। वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्त्तते। तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते। अक्षरंनक्षरं विद्यादश्नोतेर्वासरोक्षरम्। वर्णवाहुःपूर्वसूत्रे किमर्थममुपदिश्यते - महाभाष्यअ.१.पा.१.आ.२-७।। आद्येदश मध्ये ताः सार्धास्तार्तीयकूटेष्टौ। एकलवोन्ना ऊन्नत्रिंशन्मात्रा मनोर्जपेकालः।। इत्येवं वर्णानां स्थानं ज्ञात्वोच्चरेद्यत्नात्।। वर्णो के उच्चारण के नियम है, उनकी नियत मात्रा होती है, इस तथ्य को बीना जाने मन्त्र, फलित नहीं होते। प्रत्येक उच्चारण की, नाद की मात्रा-विस्तार-स्थान होता है।

ऐसे उच्चारण का विज्ञान भारतीय ऋषियोंने प्रतिपादित किया है। संपूर्ण उच्चारण की प्रक्रीया ११ प्रकार से होती है। इसी के आधार पर मन्त्र बने है, जिनके द्वारा निश्चत शक्ति-ऊर्जा प्रादुर्भूत होकर, साधक-साध्य का सामीप्य बढाती है। यह स्वयं में एक विज्ञान है। अनुपूर्वी-आवृत्ति एवं मात्रा से (Frequency, Wave Length) नाद का असर दिखता है, जैसे की शंखनाद-घंटानाद अनिष्टोको दूर भगाता है, आज भी बजार में चूहे, मच्छर भगानेके यंत्र मिलते है। हमारे यहां भी वर्णोच्चार की पद्धति-प्रणाली है,

वर्णोच्चारण शिक्षाके स्वतंत्र ग्रंथ है -अथशब्दानुशासनम् ।। उच्चारणम् - अकुह विसर्जनीयानं कण्ठ: । अ,क,ख,ग,घ,ङ,ः (विसर्ग) । इचुयशानां तालु: । इ,च,छ,ज,झ,ञ,य,श । ऋटुरषाणां मूर्धा । ऋ,ट,ठ,ड,ढ,ण,र,ष। लृतुलसानां दंता: । लृ,त,थ,द,ध,न,ल,स । उपूपध्मानीयानां ओष्ठौ ।उ,प,फ,ब,भ,म । मङ । णनानां नासिका च ।ङ।,ञ,ण,न,म । एदैतो कण्ठतालु:। ए,ऐ।। मन्त्र जपने की रीत इस प्रकार है । उपांशु: स्याच्छतगुणः साहस्त्रो मानस: स्मृतः। **नोच्चैर्जपमतः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः** ।। गायत्री तन्त्रम् श्लोक १४० अर्थात उपांशु (वैखरी रूप में शब्द बहान नहीं आना चाहिए) भाव से जपने पर सौ गुना फल होता है और मन में जपने से हजार गुना फल होता है। आजकल मंत्रो की कैसेट मिलती है, या उच्च स्वरमें बीना दिक्षा जो मंत्रोच्चारण होता है वह अनिष्टप्रद है । अतः गायत्री का जप उच्च स्वर में न करें।वैसे तो यजुर्वेद के मन्त्रों मे कई छन्द है, यद्यपि जब वेद पारायण चलती है तो, सभी मन्त्रो का उच्चारण प्रायः एक जैसा लगता है । संगीत का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु मन्त्र संगीत का विषय नहीं है । **मन्त्रो हीन: स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्** मंत्रो का उच्चारण विधि महत्त्व रखती है । उनकी आवृति-अनुपूर्वी, उदातानुदात्त स्वर प्रणाली से ही मंत्र बोले जाते है और तब ही वे बलवत्तर बनते है । आजकल गायत्रीमंत्र, गणपति मंत्र, महामृत्युञ्जय मन्त्र की कैसेट का प्रचलन जो बढ गया है, वह केवल संगीत का ही रसास्वाद कराते है, उसे कभी भी मन्त्र नहीं मान सकते । आगे उपासना विभाग में भी यदि अवकाश रहा तो, इसकी चर्चा करेंगे ।

आजकल देखा गया हैं कि कुछ वक्ता एवं **कर्मकाण्डी पंडित वेदो की शाखाधीन परिपाटी का त्याग करके संगीतमय वेदमंत्र पठते हैं । यज्ञ कराने जाते हैं तो कीबोर्ड, ढोलक, हारमोनियम साथ ले जाते है** । यह अति गंभीर बात है, संगीत एक उपचार तक अच्छा है, किन्तु जहां मंत्रलोप-विकृति होती है वहां हानीप्रद है । संगीतशास्त्र भी परमात्मा प्राप्ति का, समाधिका साधन है यह मैं भी मानता हुं । वह अपने स्थान पर श्रेष्ठ है, यद्यपि जहां कर्मकाण्ड या वेदमंत्रो की बात है वहां अवश्य विचारणीय हैं । बीजमंत्रो, वेदमंत्रो में अपार शक्ति हैं, यदि उसकी उच्चारण परिपाटी एवं (विनियोग-छन्द-देवता-बीज,कीलकादि) विधान को ज्ञान हो तो । तंत्र-वेदादि मंत्रो के उच्चारण के लिए भी बहोत ग्रंथ लिखे गए है, उच्चारण स्वयं मे एक बडा विज्ञान है । शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्य, कात्यायान प्रतिज्ञासूत्र, प्रवरसूत्र, लघुमाध्यन्दिनी, केशवीय पद्यात्मिका शिक्षा ये सब वैदिक मंत्रो का उच्चारण सिखाती हैं - उदात्तानुदात्तस्वरित में भीजात्य, अभिनिहित, क्षैप, प्रश्लिष्ट, तैरोव्यञ्जन, तैरोविराम, ताथाभाव्य, पादवृत्ति का विचार करके लघुदीर्धोच्चारण होता है - शुक्ल यजुर्वेद में तो षकार का खकार, यकार का जकार एवं अनुस्वार का गुंकार कहां करना है, यह ज्ञात होना चाहिए, हर वेदकी अपनी परिपाटी है - वेद एवं तंत्र गुरू गम्य है, इससे खिलवाड करने से हानी होती हैं । **प्रलयकालेऽपि सूक्ष्मरूपेण परमात्मनि वेदराशि: स्थित: - अनन्ता वै वेदाः - वेद: शिव: शिवो वेद:**

वेदाध्यायी सदाशिव:। वेद अविनाशी परमात्मा ही है, अनन्तबलशाली है इसे किसी संगीत या वाद्य की पुष्टि अपेक्षित नहीं है । कहीं कहीं पर देखा गया है कि अधीकारानधीकार का विचार किए बीना जोर जोर से मंत्रोच्चारण कराया जाता है । **वेश्या इव प्रकटा वेदादिविद्याः सर्वेषु दर्शनेषु गुप्तेयं विद्या** । विद्युत सब स्टेशन में क्या सबका प्रवेश है या मात्र अधिकृत एन्जिनीयर का ही ।

मन्त्रो की जाति, प्रकार व भेद - पुंस्त्रीनपुंसकात्मनो मन्त्राः सर्वे समीरिताः। मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया वद्या स्त्रीदेवता स्मृता ।। मन्त्रा एकाक्षराः पिण्डाः कर्तर्यो द्वयक्षरा मताः । वर्णत्रयं समारभ्य नवार्णावधिबीजकाः ।। ततो दशार्णमारभ्य यावद्विंशति मन्त्रकाः । अत ऊर्ध्वं गता मालास्तासु भेदो न विद्यते -नित्यातंत्र ।। मन्त्रों के प्रकार विभिन्न है। उनकी नाना जातियां है। नाना भेद है। मूलमन्त्र अथवा महामन्त्र के गर्भ से ही सभी मन्त्र जनित होते है। इसके मुख्य भेद निम्नांकित है,जो पांच वर्गों में विभाजित किये जा सकते है। यथा-१.पुंमन्त्र, स्त्रीमन्त्र, नपुंसकमन्त्र, २.सिद्धमन्त्र, साध्यमन्त्र, सुसिद्धमन्त्र, अरिमन्त्र, ३.पिण्डमन्त्र, कर्तरीमन्त्र, बीजमन्त्र और मालामन्त्र ४.सात्त्विकमन्त्र, राजसमन्त्र, तामसमन्त्र एवं ५.साबरमन्त्र और डामरमन्त्र। जिन मन्त्रों का देवता पुरुष होता है उन्हें पुं मन्त्र कहते है,इसी भांति स्त्रीदेवता के अधीन मन्त्र स्त्रीमन्त्र कहे जाते है। एक खास बात है कि जिन मन्त्रों का देवता स्त्री होता है,उसे 'विद्या' नाम से भी जाना जाता है। यथा- सौराः पुं देवता मन्त्रास्ते च मन्त्राः प्रकीर्तिताः । सौम्याः स्त्रीदेवतास्तद्वद्विद्यास्ते इति विश्रुताः ।। तथा च पुंस्त्रीनपुंसकात्माना मन्त्राः सर्वे समीरिताः । मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः ।। किंचित साम्प्रदायिक मत से ऐसा भी कहा जाता है कि, जिन मन्त्रों के अन्त में 'हुँ'- 'फट्' लगा हो, उन्हें पुं मन्त्र,और 'ठःठः' का प्रयोग हो तो स्त्रीमन्त्र जाने,तथा 'नमः' से समाप्त होने वाले मन्त्र नपुंसक श्रेणी में आते है- पुंमन्त्रा हुम्फडन्ताः स्युर्द्विठान्ताश्च स्त्रियो मताः । नपुंसका नमोऽताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा (शारदातिलक) ।। किन्तु प्रयोगसार में कुछ और लक्षण कहे गये है- 'वषट्','फट्' से समाप्त होने वाले मन्त्र पुंमन्त्र, 'वौषट्' , 'स्वाहा' से समाप्त होने वाले स्त्री मन्त्र, तथा 'हुँनमः' से समाप्त होने वाले मन्त्रों को नपुंसक जाने। यथा- वषट्फडन्ताः पुंलिङ्गा वौषट्स्वाहान्तगाः स्त्रियः । नपुंसका हुंनमोऽता इति मन्त्रास्त्रिधा स्मृताः ।। पुनः आगे शारदातिलक का ही उदाहरण दिया हुआ मिला- सिद्धार्णा बान्धवाः प्रोक्ताः साध्यास्ते सेवकाः स्मृताः । सुसिद्धाः पोषका ज्ञेयाः शत्रवो घातका मताः ।। अर्थात् सिद्धश्रेणी के मन्त्र बान्धव की तरह कल्याणकारी होते है,साध्य मन्त्र सेवक की तरह कार्य करते है,यानी इन्हें सिद्ध करके यथा शीघ्र लाभान्वित हुआ जा सकता है। सुसिद्ध मन्त्र तो और भी अच्छे है,जो सन्तुलित आहार के साथ फल और दूध की तरह पोषण-कार्य करते है,किन्तु अरिमन्त्र अपने नामानुसार गुणवाले होते है,जो प्राण भी ले सकते है,रोग भी दे सकते है, कुछ भी अनिष्ट कर सकते है।

तारक मन्त्र - प्रणव - जब मन्त्रो के विषय में चर्चा करते है तो, प्रणव के परिचय बिना सब अपूर्ण माना जाएगा। प्रणव को तारक मंत्र कहते है। प्र यानी प्रपंच, न यानी नहीं और व: उपासक के लिए। प्रणव शब्द का अर्थ है- प्रकर्षेणनूयते स्तूयते अनेन इति, नौति स्तौति इति वा प्रणव:। गुरु नानक जी का शब्द एक ओंकार सतनाम बहुत प्रचलित तथा शत्प्रतिशत सत्य है। तस्य वाचकः प्रणवः - **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म** परमात्मा का वाचक है, स्वयं ब्रह्मरूप है। प्रणव मंत्र सांसारिक जीवन में प्रपंच यानी कलह और दु:ख दूरकर जीवन के चरम लक्ष्य यानी मोक्ष तक पहुंचा देता है।यही वजह है कि ॐ को प्रणव नाम से जाना जाता है।दूसरे अर्थों में प्रनव को 'प्र' यानी यानी प्रकृति से बने संसार रूपी सागर को पार कराने वाली 'नव' यानी नाव बताया गया है।इसी तरह ऋषि-मुनियों की दृष्टि से 'प्र' - प्रकर्षेण, 'न' - नयेत् और 'व:' युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणव: बताया गया है। प्रणव का अपना महत्व है। हमारा पृथ्वी मंडल,गृह मंडल, अंतरिक्ष मंडल तथा सभी आकाश गंगाओं की गतिशीलता से उत्पन्न महान शोर-ध्वनि या नाद ही ईश्वर की प्रथम पहचान प्रणवाक्षर ॐ है।

प्रणव निम्नानुसार मान सकते है। (ॐ)तारोद्विजानां (लं)वसुधांच राज्ञां, तथा विशांश्रीं खलुबीजमेव। शूद्रस्य (ह्रीं) माया युवतेरनंग(क्लीं) पंचप्रकाराः प्रणवाभवन्ति ।। ओंकारदिसमायुक्तं नमस्कान्तकीर्तितम्। स्वनाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यमभिधीयते ।। लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा नास्यन्ति फलं प्रिये। देवता के नाम के आगे उपरोक्तानुसार तारक लगाकर, नाम मन्त्रको पंचमी विभक्ति के साथ अंतमें नमः या स्वाहा इत्यादि लगाकर, जप या होम करना उत्तम है, केवल नाममन्त्र की अपेक्षा मन्त्र के आगे प्रणव या बीज लगाना से मन्त्र बलवत्तर बनता है।शिव पुराण के अनुसार शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित् शक्ति से आनंद शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनंद शक्ति से इच्छाशक्ति का उद्भव हुआ है, इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्ति से पांचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। इन्हीं से निवृत्ति आदि कलाएं उत्पन्न हुई है। चित् शक्ति से नाद और आनंदशक्ति से बिंदु का प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्ति से **म**कार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्ति से पांचवां स्वर **उ**कार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्ति से **अ**कार की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्रणव (ॐ) की उत्पत्ति हुई है। शिव वचनानुसार अ,उ,म से बना उमा भी जगदम्बा का तारकमन्त्र ही है।यही प्रणव मन्त्र के पूर्व लगाने से अग्नि मन्त्र एवं अन्तमें लगानने से साम्य मन्त्र (संज्ञाभेद से) कहे जाते है जैसे कि ॐ नमः शिवाय और हरि ॐ।प्रणवाद्यं गृहस्थानां तच्छून्यं निष्फलं भवेत्। आद्यन्तयोर्वनस्तानां यतीनां महतामपि ।। गृहस्थों को मन्त्र के आगे ॐ लगाना चाहिए, सन्यासियों को आदि एवं अन्तमें लगाना चाहिए, बिना ॐ कार का जप निष्फल होता है। सगर्भ जप और अगर्भ जप। सगर्भ जप प्राणायाम के साथ किया जाता है और जप के प्रारंभ में व अंत में प्राणायाम किया जाए, उसे अगर्भ जप कहते हैं। इसमें प्राणायाम और जप एक - दूसरे के पूरक होते हैं

।योगीश्वर याज्ञवक्ल्य कहते है ॐकारं परमं ब्रह्म, सर्वमन्त्रेषु नायकः ॐकार सर्व मन्त्रों में नायक है, मुख्य है ।

प्रणव साधना एवं जप का वर्णन शास्त्रमें कई जगह वर्णित है । समग्र ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति व लय का आश्रय प्रणव है । ओमकार ध्वनि का नादयोग में इसीलिए उच्च स्थान है । **ओम्कारन्तु समाश्रयेत् । सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनादके -** महायोग विज्ञान । ओ३मकार नाद का आश्रय लेना चाहिए, समस्त नाद प्रणव में लीन होते है। ओमकार की ध्वनि का, नाद का आश्रय लेने वाला साधक सत्यलोक को प्राप्त करता है। शब्द ब्रह्म के, ओमकार के उत्थान की साधना में हृदय आकाश से ओमकार ध्वनि का उद्भव करना होता है। जिह्वा से मुख ओमकार के उच्चारण का आरम्भिक अभ्यास किया जाता है। पीछे उस उद्भव में परा और पश्यन्ति बानी - भाषा ही प्रयुक्त होती है और ध्वनि से हृदयाकाश को गुञ्जित किया जाता है । **हृद्यविच्छिन्नमोकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्। प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः। संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यानक्रियाभमः**-भागवत ११.१४.३४,४६ । हृदय में घण्टा की तरह ओंकार का अविच्छिन्न पद्म नालवत् अखण्ड उच्चारण करना चाहिए। प्राणवायु के सहयोग से बारम्बार **ॐ** का जप करना चाहिए। इस तीव्र ध्यान विधि से योगाभ्यास करने वाले का मन शीघ्र ही शान्त हो जाता है और सारे सांसारिक भ्रमों का निवारण हो जाता है । नादारंभे भवेत्सर्वगात्राणां भजनंततः। शिरसः कंपनं पश्चात् सर्वदेहस्य कंपनम् - योग रसायनम् २५४ । नाद के अभ्यास के दृढ होने पर आरम्भ में पूरे शरीर में हलचल- सी मचती है, फिर सिर में कम्पन होता है, इसके पश्चात् सम्पूर्ण देह में कम्पन होता है। क्रमेणाभ्यासतश्चैवं भूयतेऽनाहती ध्वनिः। पृथग्विमिश्रितश्चापि मनस्तत्र नियोजयेत् - योग रसायनम् २५३ क्रमशः अभ्यास करते रहनेपर ही अनाहत ध्वनि पहले मिश्रित तथा बाद में पृथक स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है। मन को वहीं पर नियोजित करना चाहिए। नाद- श्रवण से सफलता मिलने लगे तो भी शब्द ब्रह्म की उपलब्धि नहीं माननी चाहिए। नाद-ब्रह्म तो भीतर से अनाहत रूप से उठता है और उसे ओमकार के सूक्ष्म उच्चारण अभ्यास द्वारा प्रयत्न पूर्वक उठाना पड़ता है। बाहरी शब्द वाद्य यन्त्रों आदि के रूप में सुने जाते है, पर ओ३म् कार का नाद प्रयत्नपूर्वक भीतर से उत्पन्न करना पड़ता है (कैसेट वाले मन्त्र मन्त्र नहीं है, उनका प्रभाव भी नहीं है) - **नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च सः** - शिव संहिता अर्थात् **अभ्यास करने से नाद की उत्पत्ति होती है**, यह शीघ्र फलदाता है । **अनाहतस्यशब्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते । ध्वनेरन्तर्गतंज्ञेयं ज्ञेयस्यान्तर्गतं मनः ॥ मनस्तत्र लयंयाति तद्विष्णोःपरमंपदम् -** हठयोग प्रदीपिक ४.१००। अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है, उस ध्वनि के भीतर स्वप्रकाश चैतन्य रहता है और उस ज्ञेय के भीतर मन रहता है और मन जिस स्थान में लय को प्राप्त होता है, उसी को विष्णु का परमधाम कहते है । नादयोग की महिमा बताते हुए कहा गया है कि उसके आधार पर दृष्टि की, चित्त की स्थिरता अनायास ही हो जाती है । मुण्डकोपनिषद् में लिखा है: -

प्रणवोधनु:शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥
प्रणवरूपी धनुष्य पर अनुसंधान करके ब्रह्म को साधना चाहिए । आत्मकल्याण का परम अवलम्बन यह नादब्रह्म ही है।

मन्त्र के संस्कार - मंत्र जाप करने के भी कुछ नियम होते है । मन्त्रो को शीघ्र सिद्ध होने के लिए, मन्त्रो के कुल्लुका, योगिन्यादि, माला प्रकार, दिशा, काल इत्यादिका विचार करना भी आवश्यक होता है । यद्यपि वे प्रत्येक विद्या के लिए पृथक-पृथक है अतः गुरू गम्य है । मंत्र संस्कार के बारे में भी जानना चाहिये । जातक को दीक्षा ग्रहण करने के बाद, अपने इष्ट देव के मंत्र की साधना विधि-विधान से करें । किसी भी मंत्र की साधना करने से पूर्व, उस मंत्र का संस्कार अवश्य करना चाहिए । शास्त्रों में मंत्र के १० संस्कार वर्णित है ।

जिस अन्न को खेत से लानेके उपरान्त उसमें से तृण, मिट्टि, कंकरादि को निकाल ते है, इसे तेल या जंतुनाशक टिकिया के साथ भरते है, उपयोग में लेने से पूर्व उसे धोते है, पकाते हैं, मसाले डालकर भिन्नभिन्न व्यञ्जन बनाते है, इसे कहते है संस्कार या जिस प्रकार बीज के उपर रासायणीक प्रक्रिया करनेसे अच्छा कृषिबीज (बियारण) तैयार होता है, जिससे अधिक अन्नोत्पादन होता है, वैसे ही मंत्र की प्रक्रिया को संस्कार कहते है । मेरूतंत्र में इस प्रकार वर्णित है -

जननंजीवनंपश्चात् ताडनंबोधनं तथा।अथाभिषेकोविमलीकरणाप्यायनं पुनः।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैताःमंत्र संस्क्रियाः। नाधिकारोस्त्यतःकुर्यादात्मानंमन्त्रसंस्कृतम् ।।

मंत्र संस्कार शारदातिलकानुसार (१.२२६ से १.२३४) निम्न प्रकार से है-
जननं जीवनं चेति ताडनं रोधनं तथा ।अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः।
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः॥मन्त्राणां मातृकामध्यादुद्धारो जननंस्मृतम् ।
प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत्सुधीः ॥
एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्र तन्त्रविशारदाः ।मनोर्वर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा॥
प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम् ।विलिख्य मन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः॥
तन्मन्त्राक्षरसङ्ख्यातैर्हन्याद्यत्तेन रोधनम्।स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसङ्ख्यया॥
अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्विशुद्धये ।संचिन्त्य मनसा मन्त्रं योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् ॥
मन्त्रे मूलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम् ।तारव्योमाग्निमनुयुगदण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः ।
कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः ॥
तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनं स्मृतम् ।मन्त्रेणवारिणा यन्त्रे तर्पणंतर्पणंस्मृतम्॥
तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते ।जप्यमानस्यमन्त्रस्य गोपनंत्वप्रकाशनम् ॥

१.जनन संस्कार:- गोरचन, चन्दन, कुमकुम आदि से भोजपत्र पर एक त्रिकोण बनायें। उनके तीनों कोणों में छः-छः समान रेखायें खीचें। इस प्रकार बनें हुए ४९ कोष्ठकों में

ईशान कोण से क्रमशः मातृका वर्ण लिखें। फिर देवता को आवाहन करें, मंत्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करके अलग पत्र पर लिखें। इसे जनन संस्कार कहा जाता है।

२.दीपन संस्कार:- 'हंस' मंत्र से सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र का जाप करना चाहिए।

३.बोधन संस्कार:- 'हूं' बीज मंत्र से सम्पुटित करके ५ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए।

४.ताड़न संस्कार:-'फट्' से सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए।

५.अभिषेक संस्कार:- मंत्र को भोजपत्र पर लिखकर ' ॐ हंसः ॐ' मंत्र से अभिमंत्रित करें, तत्पश्चात १ हजार बार जप करते हुए जल से अश्वत्थ पत्रादि द्वारा मंत्र का अभिषेक संस्कार करें।

६.विमलीकरण संस्कार:- मंत्र को 'ॐ त्रौं वषट्' इस मंत्र से सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए।

७.जीवन संस्कार:- मंत्र को 'स्वधा-वषट्' से सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए।

८.तर्पण संस्कार:- मूल मंत्र से दूध,जल और घी द्वारा सौ बार तर्पण करना चाहिए।

९.गोपन संस्कार:- मंत्र को 'ह्रीं' बीज से सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए।

१०.आप्यायन संस्कार:- मंत्र को 'ह्रीं' सम्पुटित करके १ हजार बार मंत्र जाप करना चाहिए। इस प्रकार दीक्षा ग्रहण कर चुके जातक को उपरोक्त विधि के अनुसार अपने इष्ट मंत्र का संस्कार करके, नित्य जाप करना अत्युत्तम मानते है ।

मन्त्रो की षोडश कलाए - वाचस्पत्यम् में कलाशब्द की वयुत्पत्ति इन शब्दों में विवेचित है – कलयति कलते वा कर्तरि अच्, कल्यते ज्ञायते कर्मणि अच् वा ।अर्थात् जो किसी के कर्म अथवा स्थिति को द्योतित करती है, वह कला है, जो पदार्थ की शक्ति है वो भी कला है । जैसे चंद्रमा के सोलहवें भाग को एक कला कहते है – यथा, चंद्रमण्डलस्य षोडशे भागे यथा च चंद्रस्य षोडशभागस्य कला शब्द वाच्यत्वम् - वाचस्पत्यम् । श्रुतियाँ भी सोलह कलाओ की बात करती है ।

भवन्तिमंत्रयोगस्य षोडशांगनि निश्चितम् । यथा सुधांशोजयिन्ते कलाः षोडश शोभनाः ॥
भक्तिः शुद्धिश्वासनंच पञ्चांग स्यापि सेवनम् । आचार धारणे दिव्य देशसेवनमित्यापि ॥

प्राणक्रियातथा मुद्रातर्पणंहवनं बलिः। यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चोति षोडश ॥ चन्द्रमा की सोलह कलाओं की ही तरह मंत्रयोग के भी सोलह सोपान है। १ भक्ति, २ शुद्धि, ३ आसन, ४ पंचांग सेवन, ५ आचार, ६ धारणा, ७ दिव्य देश सेवन, ८ प्राण क्रिया, ९ मुद्रा, १० तर्पण, ११ हवन, १२ बलि, १३ त्याग, १४ जप, १५ ध्यान, १६ समाधि ।। ये मन्त्र की षोडश कलाए है ।

मन्त्रार्थ विषये - मन्त्रों को अर्थानुसंधान सहित जप करने से ज्यादा बलवत्तर रहता है । **नार्थविज्ञानविहीनं शब्दस्योच्चारणंफलति । भस्मनिवन्हिविहीने न प्रक्षिप्तं हविर्ज्वलति ।।** मन्त्रो को अर्थानुसंधान से ही जपना चाहिए । बिना अर्थ जाने जप करनेसे फल नहीं मिलता । जिस प्रकार भस्म में अग्नि न होने से उष्मा नहीं होती, उसमें दिया हुआ हव्य कहीं भी पहोंचता नहीं । वैसे भी आगे बता चूके हैं कि अर्थ स्वयं शिव का स्वरूप है, चैतन्यका रूप है, यथा बिना चैतन्यानुसंधान जप का कोई महत्व नहीं रहता । मन्त्रो में अक्षरार्थ, शब्दार्थ, गूढार्थ इत्यादि । मन्त्रो के अर्थ के विषय में चर्चा करते है ।

शास्त्रग्रंथो में **उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ।।** किसी ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय का निर्णय करने के लिए उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति- ये छः लिंग होते हैं अर्थात् ग्रंथ का उपक्रम और उपसंहार किसमें हुआ है, ग्रंथ में बार-बार कौन सी बात कही गयी है, ग्रंथ में कौन सी अलौकिकता है, फलस्वरूप में क्या बताया गया है, जिसकी प्रशंसा की गयी है और कौन सी युक्तियाँ दी गयी हैं - ये छः बातें होती हैं।

नार्थज्ञानविहीनं शब्दस्योचारणं फलति - वरिवस्या. मन्त्रों का अर्थ एवं उच्चारण जानना अत्यावश्यक होता है । अर्थ कई प्रकार के होते है जैसे कि, भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगमार्थ, कौलार्थ, रहस्यार्थ, महातत्त्वार्थ- सभी मन्त्रों के यदि शब्दार्थ या अक्षरार्थ न जान सके तो गुरू के बताए अर्थ पर हि ध्यान कर सकते है, पूरे मन्त्र का भावार्थ, अपने संप्रदाय या आम्नाय में निर्दिष्ट अर्थ, मन्त्र का रहस्यार्थ इत्यादि भी पर्याप्त है ।

ब्राह्ममण ग्रंथो व सूत्रग्रंथो में अर्थ प्रणाली भिन्न होती है । ब्राह्मणवाक्य अनेक प्रकार के होते है, जैसे, सूत्रार्थ, कर्मोत्पत्तिवाक्य, गुणवाक्य, फलवाक्य, फलार्थ गुणवाक्य, पुराणों में भी स्कन्धार्थ, अध्यायार्थ, श्लोकार्थ, अन्वयपूर्वक शब्दार्थ के साथ परमतभाषा, लोकिक भाषा, समाधि भाषा का विचार किया जाता है ।

भर्तृहरि - यतःशब्दार्थयोस्तत्वमेकं तत्समवस्थिम् - १ । शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः सात्कृतः स्वयम् - २। शब्द और अर्थ एक ही तत्व है - उनका सम्बन्ध अनादि एवं अकर्तृक है, नित्य है ।स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् - न्याय दर्शन १. लौकिक (दृष्ट) २. अलौकिक-ईश्वरीय (अदृष्ट) । औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबंधः - मीमांसा १-५ वेदवाक्य

में स्थित प्रत्येक शब्द अपने अर्थ से स्वाभाविक संबंध रखते है । वाच्यवाचक भावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः - सांख्यदर्शन ५.२७। वाच्य-वाचक सम्बन्ध विषय में शब्दार्थ सांकेतिक है, संकेत ईश्वरीय है । यथा वैदिक शब्दार्थ संबंध को नित्य सिद्ध (स्वयंजात) माना गया है । अर्थ परमात्मा में स्थित होने से नित्य है, क्योंकि, सब पदार्थ परमात्मा में है, जीवात्मा मे होने से चिरस्थायी - जीवात्मभाव नित्य नही है, जगतके बाह्य पदार्थ में होने से अनित्य क्योंकि वह प्रत्येक अवस्था में प्रातिभासिक है ।

पदपदार्थयोः सम्बन्दान्तरमेव शक्तिः, वाच्यवाचक भावापरपर्याया तद्ग्राहकश्चेतरेतराध्य समूलकं तादात्म्यम् । तदेव सम्बन्धः । परमलघु मंजूषा - शब्द और अर्थ का वाच्यवाचक भावसम्बन्ध ही शक्ति है । इनका तादात्म्य ही सम्बन्ध एवं शक्ति के बोधक हैं। नित्यत्वे कृतकत्वे वा तेषामादिर्न विद्यते । प्राणिनामिव सा चैषा व्यवस्थानित्यतोच्यते - वा.प.ब्र.का.२८ शब्दों की कूटस्थनित्यता से भिन्न व्यवस्था नित्यता संज्ञक है, जैसे प्राणी अनित्य होते हुए भी उनका शरीरग्रहण अनादि है । सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः । शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धःस्यातकतः स्वयम् - भर्तृहरि - लोक एवं वेद मे कोई व्यक्ति शब्दों का अर्थो के साथ सम्बन्ध निर्माण नही करता - यह सम्बन्ध अनादि एवं अकर्तृक है । विद्यारण्य स्वामि वेदमीमांसा में लिखते है –

स्वाभाविकमर्थाभिधानम् ३-१९ (यथा ३,३.२९,३,३.३२, ३,३.३३)
इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा । अनादिरर्थैःशब्दानांसंबन्धो योग्यतातथा ॥
शब्दः कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते । तथा च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते ॥
भोजनाद्यपि मन्यन्ते बुद्ध्यर्थेयदसंभवि । बुद्ध्यर्थादेवबुद्ध्यर्थे जाते तदपिदृश्यते ॥
शब्द और अर्थ का कार्यकारण सम्बन्ध है - शब्द से अर्थाकार बुद्धि उत्पन्न होती है । श्रोता की बुद्धि में जो अर्थ विद्यमान होता है उसका कारण शब्द है, बुद्धि के द्वारा शब्द का बोध होता है, अर्थ शब्द का कारण है और उनकी पूर्व उपस्थिति ही शब्द का ज्ञान कराती है । नित्यः शब्दो नित्योऽर्थो नित्यः । श्रूयते पूराकल्पे स्वशरीरज्योतिषां मनुष्याणां यथैवानृतादिभिरसङ्कीर्णा वागासीत्तथा सर्वैरपभ्रंशैः । सा तु सङ्कीर्यमाणा पूर्वदोषाभ्यासभानवानुष्ङ्गात् कालेन प्रकृतिरिव तेषं प्रयोक्तृणां रूढिमुपागता - आदि सृष्टि के समय मनुष्य अपने शरीर से उत्थित प्रभा के द्वारा ही प्रकाशित होते थे, उस समय उनकी वाणी संकीर्ण नहीं थी ।

शब्दस्यपरिणामोयमित्याम्नाय विदोविदुः । छन्दोभ्य एव प्रथमेतद्विश्वंव्यवर्तते - भर्तृहरि वाक्यपदीय - आच्मनःस्फुरणं पश्येद्यदा सा परमाकला । अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता - योगिनीहृदय । सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये। शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञोया शिवात्मिका ।। कामधेनु तंत्र । पदपदार्थयोः सम्बन्दान्तरमेव शक्तिः, वाच्यवाचक भावापरपर्याया तद्ग्राहकश्चेतरेतराध्यसमूलकं तादात्म्यम् । तदेव सम्बन्धः। परमलघुमंजूषा - शब्द व अर्थ का वाच्यवाचक भावसम्बन्ध ही शिवशक्ति है ।

इनका तादात्म्य ही सम्बन्ध एवं शक्ति के बोधक हैं । नित्यत्वे कृतकत्वे वा तेषामादिर्न विद्यते । प्राणिनामिव सा चैषा व्यवस्थानित्यतोच्यते - वा.प.ब्र.का.२८ शब्दों की कूटस्थनित्यता से भिन्न व्यवस्था नित्यता संज्ञक है,जैसे प्राणी अनित्य होते हुए भी उनका शरीरग्रहण अनादि है । सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः । शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धःस्यातकतः स्वयम् - भर्तृहरि - लोक व वेद मे कोई व्यक्ति शब्दों का अर्थो के साथ सम्बन्ध निर्माण नहीं करता - यह सम्बन्ध अनादि एवं अकर्तृक है । भर्तृहरि - यतःशब्दार्थयोस्तत्वमेकं तत्समवस्थिम् । १ । शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धःसात्कृतः स्वयम् । २ । शब्द और अर्थ एक ही तत्व है - उनका सम्बन्ध अनादि एवं अकर्तृक है, नित्य है । शब्द और अर्थ का कार्यकारण सम्बन्ध है - शब्द से अर्थाकार बुद्धि उत्पन्न होती है । श्रोता की बुद्धि मे जो अर्थ विद्यमान होता है उसका कारण शब्द है, बुद्धि के द्वारा शब्द का बोध होता है, अर्थ शब्द का कारण है और उनकी पूर्व उपस्थिति ही शब्द का ज्ञान कराती है । नित्यः शब्दो नित्योऽर्थो नित्यः । श्रूयते पूराकल्पे स्वशरीरज्योतिषां मनुष्याणां यथैवानृतादिभिरसङ्कीर्णा वागासीत् तथा सर्वैरपभ्रंशैः । सा तु सङ्कीर्यमाणा पूर्वदोषाभ्यासभानवानुष्ङ्गात् कालेन प्रकृतिरिव तेषं प्रयोक्तृणां रूढिमुपागता - आदि सृष्टि के समय मनुष्य अपने शरीर से उत्थित प्रभा के द्वारा ही प्रकाशित होते थे, उस समय उनकी वाणी संकीर्ण नहीं थी ।

अनादि निधनंब्रह्म शब्दतत्तवं यदक्षरम् । विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ एकमेव यदाम्ननातं भिन्नशक्तिव्यपाश्रयात् । अपृथकत्वेपि शक्तिभ्यः पृथकतेवेनेव वर्तते - ब्र.काण्ड,१-२ ॥ अतः उत्पत्ति और नाशरहित शब्द ॐकार जगत की उत्पत्ति-स्थिति-लय का आधार है वो ही जगत की प्रक्रिया या विकार के रूप में परिणित होता है । वहीं शब्दब्रह्म विविध शक्तियों के आश्रय होने से एक अखण्डरूप में वेदों मे पठित है जो अपनी शक्तियों से अभिन्न होते हुए भी पृथक विद्यमान होता है । **श्रूयते पूराकल्पे स्वशरीरज्योतिषां मनष्याणां** - तप के प्रभाव से ऋषियोने जिसे सूना था ।

उपासकस्य श्रद्धोत्पत्तये तद्वृत्तिगुणान् वर्णयति इति वर्ण - वर्णात्मका नित्याः शब्दाः । शिवसूत्रविमर्शिनी में कहा गया है कि **उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्रांश्चापि तद्विदुः...मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया । तया हीना वरारोहे निष्फला शरदभ्रवत्** ॥ यानी शरदकालिक मेघ की भांति वे निष्फल हैं । वर्णात्मक और वदनात्मक तक ही भावना बनाये रखना - सर्वदा मूढता ही कही जायेगी । यथा- **वर्णात्मको न मन्त्रो दशभुजदेहो न पञ्चवदनौऽपि । संकल्पपूर्वकोटौ नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः** ॥ सच पूछा जाय तो विश्व-विकल्प की पूर्वकोटि में उल्लसित नाद ही मन्त्र है । महार्थमञ्जरी में संकेत है कि मननत्राणधर्माणो मन्त्राः - अर्थात् मनन और त्राण- ये ही धर्म हैं मन्त्र के । परस्फुरणा का परामर्श ही वस्तुतः मनन है,परशक्ति के महान वैभव की अनुभूति ही मनन है । तथा अपूर्णता अथवा संकोचमय भेदात्मक संसार के प्रशमन को त्राण कहा गया है। इसे और भी स्पष्ट किया जाय तो कहा जा सकता है कि शक्ति के

वैभव या विकास दशा में मनन युक्त तथा संकोच वा सांसारिक अवस्था में त्राणमयी अनुभूति ही मन्त्र है। यथा **मननमयी निज विभवे निजसङ्कोचमये त्राणमयी । कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः** ।। या कह सकते हैं कि परावागात्मक अनुभूति ही मन्त्र है । यह अनुभूति निरन्तर विधिवत मनन(अनुसन्धि) से उत्पन्न होती है, यही कारण है कि संसार को क्षीण करने वाला- त्राणकारक बन पाता है। इस सम्बन्ध में सौभाग्यभास्कर एवं नेत्रतन्त्रम् के वचन हैं - **पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन् मननधर्मतः । संसारक्षयकृत्त्राणाधर्मतो मन्त्र उच्यते ।। तथा च मोचयन्ति च संसाराद्योजयन्ति परे शिवे । मनन त्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्र इति स्मृताः**।। मन्त्र के सम्बन्ध में आगे वर्णित बातें और भी गूढ प्रतीत हुयी। गुरुजी लिखते हैं कि शिवसूत्रविमर्शिनी में तो चित्त को ही मन्त्र कहा गया है। सूत्र है- चित्तंमन्त्रः ।। अब इस 'चित्त' को समझने के लिए प्रत्यभिज्ञा हृदय के संकेत को समझना होगा **चितिरेव चेतनपदादवरुढा चेत्थसङ्कोचिनी चित्तम्** - स्वातन्त्र्यात्मक स्वरुप की संकोचदशा ही चित्त है और विकास अवस्था ही चिति कही गयी है। इस प्रकार निरन्तर सम्यक् चिन्तन से साधक का चित्त ही मन्त्र हो जाता है। अर्थात् केवल वर्ण संघट्टना ही मन्त्र नहीं है। 'चिति'-'शब्द' की चरमावस्था है, यानी इसके आगे अब शब्द का सामर्थ कहां ! शब्दब्रह्मस्वरुपेयं शब्दातीतं तु जप्यते...। शब्द ब्रह्मरुप अपर ब्रह्म का अतिक्रमण करने पर शब्दातीत परब्रह्म की पदवी प्राप्त की जा सकती है । **द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्मम परं च यत् । शब्द ब्रह्मणि निष्णातः पर ब्रह्माधिगच्छति** - मै.उप.६.२२ - दो ब्रह्म ज्ञातव्य है १. शब्दब्रह्म २. परब्रह्म - शब्दब्रह्म को जानकर परब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है । मन्त्रार्थदेवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाय्तवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः ।। सर्ववर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये। शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञेया शिवात्मिका ।। कामधेनु तंत्र । महर्षि पतञ्जलि - **अर्थवन्तो वर्णाः - वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र स ब्रह्म वर्तते । तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थंलध्वर्थंचोपदिश्यते** - महाभाष्य १.१.२ जिनके द्वारा शब्दब्रह्म व परब्रह्म की प्राप्ति हो ऐसे वेदोंका ज्ञान जानने योग्य है । भर्तृहरि भी वाक्यपदीय में लिखते है **अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्** - ब्र.का.१.१ **तच्चाक्षर नित्तत्वादहरभित्युच्यते** - शब्दब्रह्म ही जगत्कर्ता अक्षरों एवं वर्णो का निमित्त है । तन्मात्रात्क्रान्तं **चैतन्यं सर्वजन्तुषु** - ब्रह्म काण्ड१२६ । यह सर्व प्राणीयों में चेतनारूपेण स्थित है । **यथा चितिक्रियारूपमलब्धवाक्शक्तिग्रहं न विद्येते** - जहां भी चैतन्य है वहा शब्दतत्व हैं, चैतन्य व शब्द अधिष्ठान और अधिष्ठेय रूपमें एक ही है । **नित्यःशब्दो नित्योर्थो नित्यः सम्बन्ध इति शास्त्रव्यवस्था** - भर्तृहरि । शब्द एवं अर्थका सम्बन्ध नित्य है, यही शास्त्र व्यवस्था है ।

अविभागाद्विवृत्तानामभिख्या स्वप्नवच्छ्रुतौ । भावतत्वं तु विज्ञाय लिङ्गेभ्योविहिता स्मृतिः वा.प.ब्र.का. १३६ दैवीवाग्व्यतिकीर्णेयमशक्तेरभिधातृभिः - वा.प.ब्र.का.१४५। वेद दैवीभाषा है, ऋषियोंने तप के बल से उसका ज्ञान हुआ, जब वे अपने व्यक्तित्व से

स्वतंत्र थे । अब प्रश्न होगा कि ये ज्ञान का श्रवण कैसे हुआ ? जैसे स्वप्न मे हम सूनते है, वहां बाह्य श्रवणेन्द्रिय की अनुपलब्धि होती है, बाह्य विषय भी निरपेक्ष होते है । वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण से समाधि अवस्था में बाह्य श्रोत्रेन्दिय निरपेक्ष होते है ।

कभी कभी एक ही मन्त्र के भिन्न-भिन्न स्थितियों में पृथक पृथक अर्थ होते है । यहा एक उपनिषद की कथा प्रस्तुत है । एक बार देव, मनुष्य और असुर तीनों भाई प्रजापति ब्रह्माजी के पास धर्मोपदेश ग्रहण करने के लिये गये। पितामह ने तीनों को सत्कारपूर्वक बिठाया। सब से पहले उन्होंने देवों को बुलाया तथा और कुछ ने कह कर केवल 'द' का उपदेश दिया । फिर ब्रह्माजीने पूछा मेरे उपदेश का अर्थ समझे ? देवों ने कहा - हा, पूज्य समझे, आपने सूत्र रूप से '**द**' शब्द कह कर हमें **दमन** का-इन्द्रिय संयम का-उपदेश दिया है । प्रजापति ने प्रसन्न होकर कहा - तुमने मेरे उपदेश का ठीक ही अर्थ समझा ।

अब मनुष्यों की बारी आई। उन्हें एकान्त में ले जाकर ब्रह्माजी ने '**द**' का उपदेश दिया और पूछा कि मेरे कथन का तात्पर्य समझे । मनुष्यों ने कहा - आपने हमें '**द**' का मन्त्र देते हुए '**दान**' का आदेश किया है । प्रजापति ने हर्षपूर्वक कहा - ठीक है बेटा, तुम्हारे लिए मेरे कथन का यही तात्पर्य है।

अन्त में असुर बुलाये गये । इन्हें भी ब्रह्माजी ने '**द**' का उपदेश दिया और पूछा कि इस सूत्र का क्या भावार्थ समझे? असुरों ने उत्तर दिया भगवान् आप हमें **दया** का उपदेश कर रहे है। पितामह ने उनके अर्थ को भी ठीक बताया और उसी का पालन करने का विशेष रूप से आग्रह किया।

वृहदारण्यक के उपनिषद् की उपरोक्त कथा का तात्पर्य यह है कि, धर्म तत्व 'द' शब्द में समान एक ही है, पर अधिकारी भेद से उसके पालन में कुछ अन्तर होता है । जिस व्यक्ति में जो त्रुटियां हैं, वह उन्हें दूर करने के लिए उसी दिशा में प्रयत्न करे । प्रत्येक वर्ण अनन्त शक्तियुक्त मन्त्र है - अनेक अर्थ व कामनाप्रद होते है ।

नेत्रतंत्र में शिवशक्ति संवाद - वैसे तो श्रुति, पुराण एवं तंत्र ग्रंथो में मन्त्र शक्ति का अति विस्तृत वर्णन मिलता है, यद्यपि नेत्रतन्त्र में देवी और शिव का निम्न संवाद अत्युत्तम लगता है, जिसमें मन्त्रशक्ति का पूर्ण रहस्य बताया गया है -मन्त्राः किमत्मका देव किंस्वरूपाश्च कीदृशाः । किं प्रभावाः कथं शक्ताः केन वा संप्रचोदिताः ।। शिवात्मकास्तु चेद्देव व्यापकाः शून्यरूपिणः। क्रियाकरणहीनत्वात् कथं तेषां हि कर्तृता ।। अभूर्तत्वात् कथं तेषां कर्तृत्वं चोपपद्यते । विग्रहेण विना कार्यं कः करोति वद प्रभो ।।

न दृष्टो ह्यशरीरस्य व्यापारः परमेश्वर । शरीरिणो यतोबन्धः कथं बद्धस्य कर्तृता ।। शक्तिहीनस्य कर्तृत्वं विरूद्धं सर्ववस्तुषु । एवं शिवात्मका मन्त्राः कथं सिध्यन्ति वस्तुतः।। अथ चेच्छक्तिरूपास्ते कस्य शक्तिस्तु कीदृशी । शक्तिः किं कारणं देव कार्यं तस्याश्च

कीदृशम्।।यावन्न शक्तिमान्कश्चित्कस्य शक्तिर्विधीयते। स्वतंन्त्रा न प्रसिध्येत्तु विना सिद्धेन केनचित् ।।असिद्धेन तु यत्साध्यं तदसिद्ध् प्रचक्षते । वस्तुशून्या न चैवात्र शक्तिर्वै विद्यते क्वचित् ।।शक्तिरूपास्तु ते मन्त्राः केवलास्तु विपर्ययः । अथ चेदावणा मन्त्रा विग्रहाकाररूपिणः ।।आत्मस्वरूपा विख्याता मलिना बलिनो नहि । मलिनो मलिनस्यैव प्रक्षालयति कस्य कः।।न सिद्धाह्याणवा मन्त्रा केवलाः परमेश्वर । तत्त्वत्रयं विनानास्तित्वं विरूद्धं वस्तुसन्ततेः ।।नेत्रतंत्र २१.१-११ ।। आगे प्रत्युत्तर है -

आस्तां तावत्जगत्सर्वं तत्त्वहीनं न सिध्यति । त्रितत्त्वनिर्मितं सर्वं यत्किंचिदिह दृश्यते ।। तत्त्वत्रयं विना देवि न पदार्षो हि विद्यते । तस्मात्तत्त्वत्रयं सर्वं परं चापरमेव च ।। शिवात्मकाः शक्तिरूपा ज्ञेया मन्त्रास्तथाणवा । तत्त्वत्रयविभागेन वर्तन्ते ह्यमितौजसः।।परं सर्वात्मकं शुद्धमानाद्यं कारणं ध्रुवम् । अप्रमेयमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ।। निराभासं परं शान्तं सर्वावयववर्जितम् । व्यापकं सर्वतोभद्रं साक्ष्यर्यादिगुणैर्युतम् ।। विज्ञानघनसंपूर्णं स्वानन्दानन्दनन्दितम् । निरानन्दं निर्विकल्पं नाराचारं निरक्षरम् ।। अद्वैतं कल्पनाहींनं चिद्धननं चिनमलापहम् । चिदचिद्व्यापकं ज्ञेयं नित्योदितमनुत्तमम् ।।निर्विकारं परं नित्यं निर्मलं निरूपप्लवम् । सर्वोपमानरहितं सर्वभावविर्जतम् ।। सर्वरूपकलातीतंमचलं शाश्वतं विभुम् । सर्वगं सर्वभावस्थं सर्वभूतेषु संस्थितम् ।। हृदिस्थं सर्वभूतानां प्रेरकं सर्ववस्तुषु । न तेन रहितं किंचिद् दृश्यते सुरवन्दिते ।। तस्मात्सर्वगतं विश्वं स एकः परमेश्वरः । सर्वज्ञो नत्यतृप्तश्च तस्य बोधोह्यनादिमान् ।। स्वतन्त्रोऽलुप्तशक्तिश्चानान्तशक्तिर्महेश्वरः। तस्य चेच्छा महेशस्य न विकल्प्या कथञ्चन ।। अमेयत्वादनादित्वात् कथं केनोपलभ्यते । कार्यतो ह्यनुमानेन वस्तुतः परिभाव्यते ।। कार्यं तस्य परा शक्तिर्यथा सूर्यस्य रश्मयः। वन्हेरूष्मेव विज्ञेयो ह्यविनाभाविनीस्थितिा ।। सर्वानन्दकरी भद्रा शिवस्येच्छानुवर्तिनी । तद्धर्मधर्मिणी शान्ता नित्यानुग्रहशालिनी ।। विवर्तेतत्सर्वं हि तच्छक्तेरनान्यतो भवेत् । सानन्दा तु परा शक्तिर्निरानन्दः परःशिवः।। सार्वक्ष्यादिगुणा ये च शिवस्य परमात्मनः । शाक्तास्ते नान्तोदृष्टा ह्यन्यथानुपपत्तितः ।। एकः शिवस्तथैका तु शक्तिरेव हि शाश्वती । अभिन्नद्वैतसंस्थाना सैवैका समुदायिनी ।। इच्छारूपा शिवस्यैषा ह्यभिन्ना सर्वतोमुखी । किञ्चिदुच्चूनतापत्तेः सार्वक्ष्यादिगुणास्ततः ।। ज्ञानरूपा तु सैवैका यदा संबोधयत्यलम् । बोधोह्यनादिरत्यन्तः परं ज्ञानं तु सा स्मृता ।। ज्ञानशक्तिरिति ख्याता सार्वक्ष्यादिगुणास्पदम् । यदा स्वतन्त्रालुप्ता सा क्रिया करणरूपिणी ।। वर्णरूपाष्टभेदेन स्फोटादिध्वनिरूपिणी । मातृका सा विनिर्दिष्टा क्रियाशक्तिर्महेश्वरी ।। शिवस्यपरिपूर्णस्य स्वतन्त्रस्य विभोर्यतः । कः कर्ता क्षोभकः को वा तस्मादद्वैतता शिवे ।। भोगसाधनसंसिद्ध्यै भोगेच्छोरस्य मन्त्रराट् । जगदुत्पादयामासमायं विभोभ्य शक्तिभिः ।। नेत्रतंत्र २१.१७-४९।।

उपरोक्तानुसार देवी के प्रश्न का सारांश यह है कि - मन्त्रो का स्वरूप क्या है, इनकी शक्ति एवं प्रभाव क्या है, यदि वे अशरीरि है तथा कार्यकारण रहित है तो, कर्तृत्व कैसे

आया। कार्य के लिए कार्यका कर्ता होना जरूरी है और वे विग्रहवान नहीं है तो उनमें प्रभाव एवं कार्यशक्ति कैसे आई, यदि वे स्वयं अरूप है तो शक्ति कहां से आई, उनकी उत्पत्ति का कारण क्या है, यदि विग्रहवान् माने तो वे मर्यादायुक्त हो जाते है और उनमें मलिनता-परिवर्तन आजाता है, जो स्वयं मलिन है वो, दूसरेको कैसे शुद्ध कर सकता है। वे (मन्त्र) किसकी शक्ति से सामर्थ्यवान् है, यदि स्वयं की शक्ति नहीं तो परतन्त्र हुए और जो स्वतः परतन्त्र है, वो अन्यको कैसे मुक्ति दिला सकते है। ईच्छा-क्रिया-ज्ञान शक्ति से रहित उनका सामर्थ्य क्या है - इत्यादि।

शिवजी का प्रत्युत्तर निम्नानुसार है। इस संवाद का शब्दशः अर्थ नहीं है, लेकिन सारांश प्रस्तुत किया है। इच्छा, क्रिया, ज्ञान के बिना जगत की कल्पना निर्मूल है। ब्रह्म (शिव) निर्विकार-अव्यक्त है। जैसे मन्त्रों में अर्थ निहित है, मन्त्रों में शब्द है, शब्दों में वर्ण है, ये वर्ण जो है, वे वैखरीरूप में व्यक्त होने से पूर्व मध्यमा - पश्यन्ती और वाक् रूपमें थे। यहां भी अर्थ तो गर्भित था ही। इस तथ्य को समझने के लिए एक उदाहरण का आश्रय लेते है। जैसे नरमादा पक्षीयों का कामरति सम्बन्ध से गर्भाधान होता है। इन इच्छा-क्रिया में पक्षी का स्वरूप व शक्तियां अदृश्य रहती है। गर्भाधान के बाद अण्ड प्रसव होता है - इस अण्डे के आकार में शरीर अव्यक्त है। उनके नेत्र, उनके पंख, उनकी उडनेकी क्षमता कुछ भी नहीं दिखता। जब वे पूर्ण व्यक्त हो जाता है तब उनकी शक्ति व स्वरूप का दर्शन होता है। **वटबीज कणीकायाम् -** बीज में वट है - क्यों नहीं दिखता ? जगत में दो ही तत्त्व है - शक्ति (माया - प्रकृति) एवं उनका आश्रय शिव (ब्रह्म - पुरूष)। शक्तिश्च शक्तिमाञ्चेति पदार्थद्वय उच्यते। शक्तिरेतज्जगत्सर्वं शक्तिमान्स्तु महेश्वरः। वस्तुतः मूल रूपमें शिव व शक्ति एक ही है - द्वैत नहीं है, शिव में ही शक्ति निहित है। स्वशक्तिप्रचयोस्य विश्वम् शिवसूत्र ३।३० एकोस्मि बहुस्याम् उनकी इच्छा - क्रिया - ज्ञानादि शक्ति से ही बहुरूपत्व आता है। तस्मात्सर्वगतं विश्वं स एकः परमेश्वरः। सर्वज्ञो नित्यतृप्तश्च तस्य बोधोह्यनादिमान्॥ स्वतन्त्रोऽलुप्त शक्तिश्चानान्तशक्तिर्महेश्वरः। तस्य चेच्छा महेशस्य न विकल्प्या कथञ्चन॥ जिस प्रकार मकडी (Spider) अपनी (Net) जाल फैलाकर स्वयं उसमें गुमती है। वैसे ही, सर्वशक्तिमान परमात्मा अपनी इच्छा - क्रिया - ज्ञान शक्ति से पूरे ब्रह्माण्ड में, अपनी शक्ति सहित व्याप्त है। गीता - **प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया** ४.६ स्वयं प्रकृति से युक्त विश्व में व्याप्त है। परावाक् रूप में जो, सर्जनात्मकता है, उसके पूर्व, शिवरूप में निहित होती है, मन्त्रों के रूपमें उसकी अभिव्यक्ति होती है। इसी लिए आगे भी कहा है कि, **बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी। वामा विश्वस्यवमनादङ्कुशाकारतांगता। इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता यो.हृ.॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि बीजानां देवरूपताम्। मन्त्रोच्चारणमात्रेण देवरूपं प्रजायते** - बृ.गं.तंत्र॥ सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये। शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञोया शिवात्मिका - का.तंत्र॥ अकाराभ्य हकारान्तौ सर्वे वर्णा समाश्रिताः। अहंकारे स्थितं सर्वं ब्रह्माण्डे सचराचरम्॥

ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शिवरूपिणः। आगे इसकी सविस्तर चर्चा कर दी है। शिव की शक्ति ही व्यक्तरूपेण मन्त्रोमें निहित है । कार्यं तस्य परा शक्तिर्यथा सूर्यस्य रश्मयः । वन्हेरूष्मेव विज्ञेयो ह्यविनाभाविनीस्थितिा ।। सूर्य की रश्मियोंमें, अग्नि की उष्मा में उनकी शक्ति होती है, वैसे ही ब्रह्म की परावाक् में ब्रह्म विलसित है । वहीं वाक् रूप में इच्छा-क्रिया-ज्ञानशक्ति सहित स्फोटात्मक बनती है, जो सर्जन-विसर्जन का काम करती है । वर्णो का बाह्य स्फोट भी प्रभावयुक्त होता है, दुर्गा सप्तशति में देवी **हुंकारेण ही तं भस्म-** हुंकार मात्रसे धूम्रलोचन असुर का विनाश करती है । अस्त्राय फट् बोलकर आत्मरक्षा-कवच भी करते है । निर्विकल्प अवस्थामें ब्रह्म स्वशक्तियों को, स्वयं में, अन्तर्हित करके शान्तस्वरूप है, वहीं मायोपाधिक ईश्वर या हिरण्यगर्भ रूपमें सृष्टा बन जाता है । अति सरल समझे तो व्यक्ति जब सुषुप्ति में होता है तब, उसकी इन्द्रियां, हाथ-पाव सब शान्त होते है । जाग्रत में इच्छा-क्रिया-ज्ञान शक्ति कार्यान्वित होती है और अपने हाथ, पांव, इन्द्रियों के सहारे काम करता है । सुषुप्तिकाले सकले विलीनेतमोऽभिभूत: सुखरूपमेति । सुषुप्तिमें सब शान्त है, सभी इन्द्रिया आत्मामें शान्त-उपराम होती है । दूसरी बात जो स्वयं परतन्त्र होते है वे क्या शक्ति देंगे, बैंक के मेनेजर नौकरी करते है, फिरभी आपको लोन दे सकते है या नहीं । पुलिस कर्मी नौकरी करते है, उनके परिवार की रक्षा उनको मिलनेवाले वेतन पर निर्भित है तथापि वे बैंक कैशियर की सुरक्षा करते है या नहीं । वे आपकी भी सुरक्षा करते है या नहीं । यहां तो अर्थरूप शिव एवं शक्तिरूप परा वाक् एक ही हैं, शिव के बिना शक्ति या शक्ति के बिना शिव की कल्पना ही अपूर्ण है (न शिवेन विना शक्ति) । तो मन्त्रों में परावाक् द्वारा अर्थरूपेण शिव स्वरूप विलसित है ही ।

श्रुति कहती है - तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय । अपनी शक्ति में, प्रतिबिम्बित ब्रह्म में, शक्ति का प्रतिबिम्ब पडने से सर्वप्रथम पूर्णाहंभावविमर्श उत्पन्न होता है । वही समस्त विश्व की सृष्टि का बीज है,जिसे श्रुति में नामरूपकी अव्याकृत अवस्था कहा गया है। ब्रह्म और उनकी शक्ति सदैव अभिन्न हैं । मन्त्र का वैखरी स्वरूप है - उसका सूक्ष्म स्वरूप परा वाक् हैं, वही शिव की शक्ति हैं उसमें भी अर्थरूपेण शिव है । वास्तव में तो द्वैत में भी, शक्तिमें ब्रह्म का सम्बन्ध अखण्ड हैं । जिस प्रकार प्रकाश या उष्णता अग्नि से अभिन्न है,और उसके बिना नही ठहर सकती,उसी प्रकार ब्रह्म से उसकी शक्ति श्री भी अभिन्न हैऔर उससे कभी अलग नही हो सकती। श्री के ही कारण ब्रह्म को अनन्त शक्ति अथवा सृष्टि स्थिति और पालन करने वाला कहते है। श्रीशंकराचार्य कहते है- शिव: शक्त्या युक्तो यदिभवति शक्त:प्रभवितुं । न चेदेवं देवो न खलु कुशल:स्पन्दितुमपि ॥ यह महाशक्ति, विश्रमण अवस्था(प्रलय) में प्रकाशमय ब्रह्मरूप होकर रहती है । इस अवस्था में शक्ति का पृथक विवेक नहीं रहता । सुषुप्तिकाले सकले विलीनेतमोऽभिभूत: सुखरूपमेति । प्रलयकाल या निर्विकल्प अव्यक्तावस्था में ब्रह्म की यह शक्ति मनसहित आत्मामे उपराम होती हैं । ईच्छा-क्रिया-ज्ञान के कारण वह स्वरूपित होती हैं, अनुभूत

होती हैं। मन्त्रों मे शक्ति का सामर्थ्य एवं शक्ति भी ब्रह्म के कारण ही है। वस्तु, मकान, गाडी एवं सृष्टि का दर्शन प्रकाश शक्ति से ही होता हैं। ज्योति का स्वामि सूर्य हैं, यथा सूर्य न दिखने पर भी उनकी ज्योति शक्ति से पदार्थ दर्शन होता हैं। प्रकाश का अस्तित्व उनके स्रोत के कारण हैं। यथा मन्त्रो में शक्ति इसी कारण है कि वे स्वयं शिव का स्वरूप है, शिव शक्ति सदैव साथ ही रहते है न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः। नान्योरन्तरं किंचिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव, यथा मन्त्र में - शक्ति और ब्रह्म का साहचर्य नित्य रहता है।

मंत्रोत्पत्ति का संक्षिप्त सारांश - तंत्रसार के आधार पर - अनादिनिधनंब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः। अक्षरब्रह्म हैं उनका क्षरण नहीं होता। इससे जगत् की उत्पत्ति कैसे होती हैं- नाद सर्जनात्मक कैसे है - आमर्शश्च अयं न सांकेतिकः अपितु चित्स्वभावतामात्रतान्तरीयकः परनादगर्भ उक्तः,स च यावान् विश्वव्यवस्थापकः परमेश्वरस्य शक्तिकलापः तावन्तम् आमृशति (तं.सा.पृ.१२) वह शैवीनाद लौकिक ध्वनि के समान कृत्रिम नहीं हैं - वह शिव का स्वरूपविमर्शात्मक अहं है - चेतना है।

योगिनामुपकाराय स्वेच्छयाऽतिन्तयच्छिवः। योगीयों-ऋषियों पर करूणा के कारण भगवान शिवजी ने सप्तकोटि मन्त्रोका निर्माण किया है। मुण्ड.तन्त्र के अनुसार -
ध्यायमानात्ततो देवी पराशक्तिरजायत। आदिशक्तिस्ततोजाता पराशक्त्यंशभेदतः॥
आदिशक्त्यांशत्साक्षादिच्छाशक्तिरजायत। इच्छाशक्त्यंशभेदेन ज्ञानशक्तिरजायत॥
ज्ञानशक्तयंशभेदेन क्रियाशक्तिरजायत। एकैव पञ्चधाभिन्ना निर्मला शवचिन्तया॥
शिवस्तुसच्चिदानन्दलक्षणः परमेश्वरः। पूज्यपूजकभावेन निर्गुणःसगुणोऽभवत्॥
पराशक्त्यादिशक्त्योश्च बिन्दुनादस्वरूपयोः। मेलनेशिवतत्त्वस्यसादाख्यं समजायत॥
पराशक्ति शिवजी की ही शक्ति है। शिवजी की आद्य शक्ति से पराशक्ति, पराशक्ति से इच्छाशक्ति, इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति, ज्ञानशक्ति से क्रिया शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, वे सभी भगवान सच्चिदानन्द परमेश्वर की शक्तियां हैं। वे ही नाद एवं बिन्दु स्वरूप है। ये ही विश्व की उत्त्पत्ति का महाकारण भी मानते है, ये ही नाद बीजरूपेण शक्तित्रय (इच्छा-ज्ञान-क्रिया) रूपमे विश्व मे ध्वनिस्फोट करके, विश्व की सर्जनहारिणी बनते है देखिए - बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी। वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता। इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता - योगिनीहृदयतन्त्र। पश्यन्ती वाक् के स्थूल-पश्यन्ती,सूक्ष्म-पश्यन्ती व पर-पश्यन्ती,तीन प्रकारोंका उल्लेख किया गया है। ध्वनिरूपा यदास्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात्। प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनापूरयन् जगत्। सनादो देवदेवेश प्राक्तश्चैव सदाशिवः - नेत्रतंत्र २१.६२,६३,विज्ञानभैरवेपि।अकारः शिवरूपस्याद् हकारशक्तिमेव च। तयोःसम्मिलने चैव अहंकारोपजायते॥अकाराभ्य हकारान्तौ सर्वेवर्णासमाश्रिताः। अहंकारे स्थितं सर्वं

ब्रह्माण्डे सचराचरम् ।।सर्वेवर्णात्मकामन्त्रास्ते चशक्त्यात्मकाःप्रिये। शक्तिस्तुमातृकाज्ञेया साचज्ञेया शिवात्मिका।। पंचासत्युवतीसर्वा शब्दब्रह्मस्वरूपिणी । भजेहंमातृकादेवी वेदमातांसनातनीम् – कामधेनु । शृणु देवि प्रवक्ष्यामि बीजानां देवरूपताम् । मन्त्रोच्चारणमात्रेण देवरूपं प्रजायते - बृहद्धूंधर्वतंत्र ।। मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानांग्यानरूपिणी ।ग्यानानांचिन्मयानन्दा शून्यानांशून्यसाक्षिणी ।। जो एकावन वर्ण हैं, उनका प्रारम्भ अ से होता हैं अन्त्याक्षर ह है - क्ष को मेरू मानते है । अकार शिवजी का स्वरूप है - हकार शक्ति का रूप है दोनों का मिलन अनुस्वार स्वरूप है - जिसमे सभी शास्त्र-वाङ्मय है - पूरा विश्व की सभी भाषाए है - पूरा विश्व ही है । सभी वर्ण मन्त्रो के स्वरूप है, वे ही वर्ण एकावन वर्णात्मक युवती - भगवती परा शब्दब्रह्म स्वरूप में है - ये ही वेदमाता है । मंत्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः - शाक्तानंद तरंगिणी । सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये। शक्तिस्तुमातृका ज्ञेयो साचज्ञेया शिवात्मिका - कामधेनु तंत्र । मन्त्रार्थ देवता का स्वरूप है, चिन्तन भगवति पराम्बा है एवं वाच्यवाचक भेदरहित दोनों ही एक है । वे ही शक्ति शिवात्मिका है । अव्यक्तरूप में शिवमें अर्थरूपेण - परारूपेण निहित है । वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये । जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ वाग् भगवति उमा है और उसमें निहित अर्थ भगवान शिव है । वाग् शिवकी शक्ति है और वही उसका परिचय भी ।

एक रूपक के रूपमें - जिन्हे शास्त्रीय बाते यथोचित समझमें न आई हो ऐसे वाचक वर्ग लिए, पूरे लेखन का सारांश एक रूपक के द्वारा स्पष्ट करना चाहता हूं ।

मान लों आपको एक कार की आवश्यकता हैं । आप सर्व प्रथम अपनी आवश्यकता एवं बजट तय करेंगे । फिर कार की ब्रान्ड एवं कम्पनी नियत करेंगे । तत्पश्चात् नियत कार के अधिकृत विक्रेता से संपर्क करके जानकारी लेंगे । कार खरीदेंगे और उसका मेन्टेनन्स, चलाने की विधि कोई जानकार से सिखेंगे । समय-समय पर सर्विस कराते हैं । चलाने के नियम, आरटीओ के नियम की जानकारी लेंगे एवं ड्राइविंग लायसन्स प्राप्त करेंगे । अभ्यास एवं चलाने की क्षमता पर दक्षतादृढ होने पर आप इच्छित गंतव्य पर जाने को उत्कट होंगे । गंतव्य के पूर्व इसमें हवा-पानी-खोराक (हवा-पानी-फ्युअल-ऑईल) भरते हैं । नित्य एक बार सेल देकर चालु करते हैं, अन्यथा बैटरी उतर जाती हैं । उपरोक्त सब यदि असंभव हो और गंतव्य पर जाना आवश्य हो तो, किरायें की कार लेकर प्रयाण करेंगे । इस ग्रंथ यही बात शास्त्रीय प्रणाली से अवगत करायी हैं । प्रथम आप अपना इष्ट मन्त्र एवं उपास्य देव में निश्चय करते हैं (अपनी शक्ति व मर्यादाओं के अनुसंधान करके, जैसे घर के लोक की चाबी न मिलने पर चाबीवाले को बुलाएंगे न कि गोदरेज के एम.डी को और बैंक के १००० लोकर्स के लिए किसी कंपनी के उच्चाधिकारि का संपर्क करेंगे - कामनानुसार) । फिर गुरूपसदन करते हैं, दिक्षा(लायसन्स) लेते है, मन्त्रानुष्ठान

की प्रणाली एवं परम्पराका ज्ञान प्राप्त करते है । अनुष्ठान के व्रत-नियमों का पालन करके मन्त्रोपासनाका अनुष्ठान - अभ्यास करते हैं । निष्ठापूर्वक विधिविधानोक्त क्रिया द्वारा नित्योपासन करते हैं । आवश्यकता पर काम्यानुष्ठान करते हैं ।यदि कार लेना असंभव हो तो किराए की कार लेते हैं, वैसे ही आकस्मिक काम्यसिद्ध के लिए विद्वानों से अनुष्ठान कराते हैं - **अशक्तः कारयेत् पूजा** - यदि आप कानून के निष्णात नहीं हो तो, वकील आपकी तरफ से केस लडता हैं कुछ ऐसे ही ।

मन्त्रजप को वाक्योग कहते हैं - **इयं हि मोक्षमाणानामजिह्माराजपद्धतिः** (वाक्यपदीय), मंत्र का सीधा सम्बन्ध ध्वनि से है । ध्वनि प्रकाश, ताप, अणुशक्ति, विधुतशक्ति की भांति एक प्रत्यक्ष शक्ति है । मन्त्रों में नियत अक्षरों का एक खास क्रम, लय और आवर्तिता से उपयोग होता है । इसमें प्रयुक्त शब्द का निश्चितभार, रूप, आकार, शक्ति, गुण और रंग होता हैं । एक निश्चित उर्जा-तेज-शक्ति, फ्रिक्वेन्सि और वेवलेंथ होती हैं । पूरी प्रक्रिया का विज्ञान ही है ।

मन्त्र, गुरू, दिक्षा का अतूट सम्बन्ध है । मन्त्र का साफल्य भी गुरू के उपर निर्भर है, या आगे गुरू-दिक्षा पर विचार करेंगे । छोटा बच्चा चलना सिखता हैं तब उसे पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान नहीं होता, अभ्यास एवं माता के प्रयत्न से वह चलना सिख जाता हैं, बार बार गिर जाता है, उठता है । तत्पश्चात् वह स्वयं ही कुशलता पूर्वक चल सकता हैं, दौडता हैं । ठीक उसी प्रकार गुरू प्रदर्शित मार्गपर दक्षता आनेके बाद उपासना में बाधाए नहीं आती ।

शास्त्रानुशीलन एवं स्त्री उपासक - शास्त्रोक्त विधि-विधान-नियम, मन्त्र जप के साफल्य का आधार बताते है । केवल मन्त्र का जप ही फलदाता नहीं बनते, शास्त्रोक्त विधि विधान का अनुशीलन भी आवश्यक है, जैसे मात्र दवा से रोगमुक्ति नही होती - न तु पथ्यविहिनानां भेषजानां शतैरपि - पथ्यापथ्य के अनुशीलन भी आवश्यक है । कुछ सामान्य बाते करते है - जैनों में सीये हुए वस्त्र पहनकर देरासर के गर्भगृह में नहीं जाते, वहां कोई विवाद या विसंवाद नहीं करता, वहां स्वयंशिस्त चलती है । स्वामिनारायण के मंदिरो के गर्भगृहो में भी मात्र नियुक्त स्वामि ही अन्दर जाकर, विग्रह को स्पर्श कर सकते है, अन्य सत्संगी नियत दूरी से दर्शन करते है । हज यात्रा में मुस्लिम भाई भी एक श्वेत उपवस्त्र, एक अधोवस्त्र ही धारण कर सकते है । ईसाईयों में भी चर्च के क्रोस को मात्र फाधर के स्पर्श तक सीमित रक्खा जाता है । प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदायों मे आध्यात्मिक परिधान, विहार-व्यवहार के कछ नियम होते ही है । कुछ भ्रष्ट राजनेता मात्र हिन्दु मंदिरो के लिए ही विवाद खडा करते है, न तो उनको भगवान से कुछ लेना देना है, ना मंदिर से, उनके लिए तो केवल, अपना राजनैतिक स्वार्थ निहित होता है ।

एक किस्सा आपको बताना चाहता हुं - हम पितृगया के लिए गयाजी जा रहे थे । हमारे साथ एक वकील साहब भी थे । बार-बार बोलते थे, ये श्राद्धादि बेकार की बाते है, क्या

ईसाई-मुस्लिम श्राद्ध नहीं करते तो उनका मोक्ष नहीं होता । हमसे जब रहा नहीं गया तब हमने बताया, देखो भाई हम कोई सम्प्रदाय का खण्डन नहीं करना चाहते है, यद्यपि ईस्लाम मानता है कि जो पांच समय की नमाज अदा नहीं करता, रमझान में रोजा नहीं रखता उसे जन्नत नसीब नहीं होती, अल्लाताला उसकी बंदगी नहीं सूनते । जैनों में भी अठ्ठई तप, वर्षी तप, मास क्षमण इत्यादि की बाते है । ईसाईयों में भी बेप्सीजम की बाते है । हम लोग तो ये सब नहीं करते । अच्छा आप ये बताओ.. आप कौनसे देशमें रहते हो, भारत का संविधान अलग है, साउदी अरेबिया का अलग है, अमरिका, इन्ग्लेंड का भी अलग है । जब हम वहां जाते है तो उनका संविधान मानना पडता है । कहीं न कहीं तो हमारी उपस्थिति होगी ही होगी, और वहां के संविधान को मानना ही पडेगा ।

हमारी सनातन सभ्यताने स्त्री को जिस सन्मान से देखा है, प्रायः सृष्टि की कोई सभ्यताने स्त्री शक्ति का पर्याप्त परिचय नहीं किया है, यह पूर्ण निश्चय के साथ कह सकते है ।

प्रथम उत्त्पत्ति से बात करे तो, हमने स्त्री को परमात्मा के हृदय से प्रकट किया है । पुरूष का अर्धांग बताते है, वामा है । वामांग का महत्व आप समझ सकते है, हमारा हृदय वहां है, हमारा जीवन वहां है, हमारी श्वास वहां है और स्त्री कि उत्पत्ति विराट के हृदय से बताते है । बाईबल व कुरान में सन्मान तो अवश्य दिया है, यद्यपि किसीने स्त्री को रीढ की (मलद्वारके उपर की हड्डी) से उत्पत्ति बताई है, तो किसीने पुरूष के भोग-प्रमोद का साधन माना है । धार्मिक सर्वोच्च स्थान भी नहीं मिला । हमने स्त्री कि महान शक्तिका परिचय सर्वप्रथम आत्मसात् किया । पुरूष की अपेक्षा स्त्री कि शक्ति अत्याधिक है, जब देवता भी आसुरी शक्तियों से परास्त होते है, केवल अकेली महाशक्ति ही दुर्गा का रूप लेकर दानवों को परास्त करती है । हमारे यहां स्त्री को कुमारिका, कन्या, सुहासिनी, जगदम्बा के नाम से पूजा जाता हैं, प्रायः और कहीं भी नहीं । स्त्री की शक्ति देखे - एक साधक पूरे जीवन पर्यन्त की साधना के उपरान्त जो सिद्धि, श्रेष्ठता, शक्तिपात की क्षमता पाता है, वह परमात्मा ने स्त्री को सहज दिया है । स्त्री स्वयं श्वास लेकर दूसरे जीव को श्वसित कर सकती है, स्वयं भोजन लेकर अन्य जीव को पुष्ट कर सकती है । अपने ही एक देह में दो देह, दो जीव को रखनेकी क्षमता मात्र स्त्री के पास ही है । स्वयं के विचारों को अन्य जीव पर संस्कार रूपेण स्थापित कर सकती है, गर्भस्थ शिशु - अभिमन्यु की भांति । परमात्मा और स्त्री में एक महान साम्य यह है की, अद्भूत सर्जनोपरान्त भी कहीं अपना नाम नहीं रखते । कश्मीर की सुन्दर घाटीयो पर,वनोपवन मे कहीं भगवान के नाम का बोर्ड नहीं देखा होगा । स्त्री भी अनेक कष्ट सहकर संतति देती है, किन्तु कहीं अपना नाम नहीं देती, पिता का ही देती है । नाम की मर्यादा से, अपने महान त्याग को सिमित नहीं करती ।

आजकल एक मैनिया-फैशन चला है कि, विवाहोपरान्त अपनी पितृ अवटंक भी रखती है साथ में पति की अवटंक भी, उदाहरार्थ स्नेहा पाठक भट्ट । हमारे यहां स्त्री का स्थान

अति उच्च है । उसे जगदम्बा कहा हैं, ऋग्वेद मे उसे ब्रह्मरूपा कहा है । स्त्री महाशक्ति है,वह जिसके पास होती है वो ही उसकी पहचान बनता है । क्षत्रिय के पास है तो क्षात्रशक्ति,ब्राह्मण के पास है तो ब्रह्मशक्ति । ब्रह्म सर्वव्यापिन् होता है । यद्यपि शारिरीक (पांचभौतिक) बंधारण को देखते हुए शास्त्रमें कुछ मर्यादाओं का भी उल्लेख अवश्य है । उपरोक्तानुसार यह बात सभी संप्रदायों में है ।

हमने किसी माता को देवस्थान में जाकर विग्रह को स्पर्श न करने की प्रार्थन की, तो उनको बुरा लगा, वह बोली कौन से शास्त्रमें लिखा है, भगवान कहां ऐसा बोलते है, मैंने कहां पहले - कौनसे शास्त्रमें लिखा है वह तब बोला जाता है, जब स्वयं ने कुछ शास्त्राभ्यास किया हो, बताइए, आपने कौनसा शास्त्र पढा है, प्रायः हम उसेमेंसे कुछ बता पाए, दुसरी बात आप ये भी बताए कि भगवान क्या क्या बोलते है, शास्त्रों में जो लिखा है वह हमारे ऋषियों ने परमात्मा से श्रवण करके ही लिखा है, उसे श्रुति कहते है । पवित्रता के दृष्टिकोण से, देवस्थानम् के गर्भगृह में मर्यादित प्रवेश होना चाहिए, मात्र पुजारि, वह भी बिना सिए हुए वस्त्र, मात्र धोती-उपवस्त्र धारण करके ही प्रवेश करें, अन्य को चलविग्रह की पूजा कराए । पूरेवोत्तर व मध्यभारत में लालच, राजकीय (भ्रष्ट) हस्तक्षेप से शास्त्रों की कई बाबतों पर अतिक्रमण हुआ है, और यह केवल हिन्दु मंदिरों के लिए ही हुआ है, जैन देरासरों मे आज भी नियम यथावत् हैं । हमारे यहां एक पण्डितजी है, वो तो पायजामा पहनकर ही विधि कराते हैं, उनको बोले तो शास्त्रार्थ की बातें करेंगे, खैर आगे उसके भी प्रमाण देंगे ।

माता पार्वती ने भी पार्थिव लिंग बनाकर, बालू के प्रत्येक कण में शिवजी का प्राकट्य किया था । हमारे यहां कई ऐसी कथाए है, जहां स्त्री ने देवताओं को भी परास्त किया है, छोटे बालक बना दिया है । परमात्मा तो आप्तकाम है, यद्यपि मा का वात्सल्यामृत की तृषा से अवतरित होता है, क्यों कि देवताओं को भी स्वर्ग में सब सुख तो है, माता का नहीं - माता की कुक्षि में तो स्वर्ग भी है । विषय थोडा वक्रीभूत हो गया है, पुनः इस विषय पर लिखनेकी अपेक्षा के साथ मूल विषय पर परिवर्तित होते है । कुछ कथाकार शिव पुराण में वर्णित पूजा का संदर्भ करते हैं, यद्यपि उनके अभ्यास में कुछ श्लोकों का अन्यय अवश्य छुट जाता है, और वे पूजा व मंदिर प्रवेश के विषयमें स्वयं नहीं समझ पाए हैं **स्त्रीणामनुपनीतानां**...श्पर्शनेनाधीकोरोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च । स्त्रीवापि पतितोऽपि वा.. नारदीय ऐसे अनेक प्रमामोपदब्ध है, पूरी के पूर्माम्नाय पीठाधीश्वर प.पू.जगद्गुरू शंकरार्यजी महाराजश्री, इस विषय को अति सुंदर दृष्टान्त से समझाते है । वैसे ही चातुर्वर्णं मया प्रोक्तं गुणकर्म विभागशः में प्राय लोग गुण को भूलकर मात्र कर्म से ही विभाग मान लेते हैं । भगवान व्यास रचित भागवत् या पुराणों के प्रत्येक अक्षरों को मन्त्र इसलिए मानते हैं कि, एक एक शब्द की, अक्षर की विवेचना होती है । प्रायः इसलिए ही कहा है विद्यावतां भागवते परिक्षा ।

पतिरेव गुरोस्त्रणाम् - नारी के लिए पति ही श्रेष्ठ गुरू की बात हमारे शास्त्र बताते है । स्त्री स्वयं अपने पतिमें ही गुरू का ध्यान करके उपासना के मार्ग पर आगे जा सकती है।

गुरू की आवश्यकता - गुरूम्बीना वृथो मंत्रः, श्रोत्रादिनां ज्ञानाभावे मन्त्रजापं करोति यः। दारिद्रयं च विपति च नरकं प्राप्तनयात्तु सः - बिना गुरू के मन्त्र वृथा है । योगविशिष्ठकारने तो बताया है कि गुरूपदेशशास्त्रर्थैबिना आत्मा न बुध्यते । गुरू तो चाहिए ही चाहिए, यह उपासना एवं आत्मतत्त्व की अनुभूति के लिए आवश्यक है ।गुरोन्मुखान्महाविद्यां, गृह्णीयान् पापनाशिनीम् ।। गुरूमुख से प्राप्त विद्या पापनाशिनी है । शास्त्रने आदेश दे दिया - उपगम्यंगुरूं विप्रमाचार्यं तत्ववेदिनम् । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् (मु.उप) - स गुरूमेवाभिगच्छेत्।श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।आचार्यवान् भव । समर्थ गुरू के पास जाकर, गुरू की कृपा से ही सद्विद्या की प्राप्ति करो । **शरीरं चैव वाचं च बुद्धिन्द्रिय मनांसि च । नियम्य पाञ्जलिः तिष्ठेत्वीक्षमाण गुरोर्मुखम् । गुरुशुश्रुया काया शुद्धिरेषा सनातनी** । गुरू साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप है, उनको आत्म समर्पण करके उनकी कृपापात्र बनना चाहिए, गुरू सुश्रुषा रूप तप से देह शुद्धि हो जाती है । यो गुरू सःशिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरूः स्मृतः । यथा शिवस्तथाविद्या यथा विद्या तथा गुरूः । शिवविद्या गुरूणां च पूजया सदृशं फलम् ।। सर्वदेवात्मश्चासौ सर्वमंत्रमयो गुरूः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यस्याज्ञां शिरसा वहेत् ।। शिवपुराण वायवीय संहिता । शिवस्वरूप गुरू की पूजा - शिव ही पूजा है, उनका आदेश ही मन्त्र है ।

पुस्तके लिखितान्मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये । ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम् ।। मेरूतंत्र- पुस्तक में लिखे या तो वैसे ही मिले मंत्रो का सीधा जप अनिष्टकर होता है । कई जगह पर इसका उल्लेख मिलता है ।मन्त्र की मूल चेतन शक्ति ध्वनि में निहित होती है एवं ध्वनि पुस्तक के निर्जीव पृष्ठों में नही होती।शुद्धि अशुद्धि का ज्ञान भी गुरुमुख से निश्चित मन्त्रो से होता है। गुरूपसत्ति आवश्यक हैं ।

गुरू कैसे होने चाहिए - अपूज्यायत्र पूज्यन्ते, पूजनीय व्यतिक्रमात् । त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दूर्भिक्षं मरणं भयम् ।। शि.पु.रूद्र-सति ३५.१। अपूज्य की पूजा और पूज्य को द्रोह दुर्भिक्ष व आपत्ति का कारण बनता है । यथा गुरू को परखकर करना आवश्यक है । गृहस्थी होकर भी शिखा-संध्यादि से वर्जित व्यक्ति की पूजा पापकारिणी बनती है । जिनके चरण कमलों में परम शांति मिले और मन समाहित रहे,शांत रहे,संकल्प-विकल्पों का शमन हो ऐसे गुरु होने चाहिए, भगवान् आदि शंकर श्रेष्ठ उदाहरण है । आयुर्वेद में कहा जाता है कि जो निष्णात वैद्य होते है, वे रोगी के चहेरा, शरीर के अंग, व्यवहारादि से भी रोग निदान कर लेते है । समर्थ गुरू भी शिष्य की समस्याओं को बीना पूछे पढ भी लेते है, समाधान भी कर देते है ।सिद्धमंत्र गुरोर्दीक्षालक्षमात्रेण

सौख्यदा । महामुनि मुखान्मत्रंश्रवणाद्भुक्तिमुक्तिदम् ।। जपहीनगुरोर्वक्त्रा-पुस्तकेनसमंभवेत् - महा.संहिता) ।

गुरूगीता में कहा है - **तमेगुरोर्दुर्लभं मन्ये शिष्यहृतापहारकाः** । गुकारश्चान्धरः स्यात् रूकारस्तेज उच्यते । अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरूदेव न संशयः । दियतेयेन विज्ञानं क्षीयते पाशबंधनम् । अज्ञानरूपी अंधकार से और वासनाओंके पाशबंधोसे जो मुक्ति दिला सकें ऐसे गुरू । शाब्देपरे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् । आचार्यवान्पुरुषो वेद- मु.उप । क्रमदीपिकायां ४.२ । विप्रंप्रध्वस्त कामप्रभृतिरिपुघटं निर्मलाङ्गं गरिष्ठां, भक्तिं कृष्णाङ्घ्रिपङ्केरुहयुगल रजोरागिणीमुद्वहन्तम् । वेत्तारं वेदशास्तागमविमलपथां सम्मतं सत्सु दान्तंविद्यां यः संविवित्सुः प्रवणतनुमना देशिकं संश्रयेत - १.३४ ॥ नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ कठ. १.३७ ॥ श्रुतिस्तुतौ - विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं,य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः। व्यसनशतान्विताःसमवहाय गुरोश्चरणंवणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥ अगस्त्यसंहितायां च - देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निःस्पृहः । अध्यात्म विद्ब्रह्मवादी वेदशास्त्रार्थकोविदः ॥ उद्धर्तुं चैव संहर्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः। तत्त्वज्ञो यन्त्रमन्त्राणां मर्मभेत्ता रहस्यवित् ॥ पुरश्चरणकृद्धोममन्त्रसिद्धः प्रयोगवित् । तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥ विष्णुस्मृतौ - परिचर्यायशोलाभलिप्सुः शिष्याद्गुरुर्नहि ।कृपासिन्धुः सुसम्पूर्णः सर्वसत्त्वोपकारकः ॥ निःस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः । सर्वसंशयसंछेत्ता नालसो गुरुराहृतः ॥ श्रीनारदपञ्चरात्रे श्रीभगवन्नारद संवादे - ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् । तद्अभावाद्विजश्रेष्ठः शान्तात्मा भगवन्मयः ॥ भावितात्मा च सर्वज्ञः शास्त्रज्ञः सत्क्रियापरः । सिद्धित्रयमायुक्त आचार्यत्वेऽभिषेचितः - श्रीभागवते १०.८७.३३-४८ ॥ यो विद्याच्चतुरोवेदान्सांगोपनिषदो द्विजः, पुराणं विजानाति यः सतस्माद्विचक्षणः । धर्मशास्त्र विदो ये वै, तेषां वचनमौषधम् - वेदवेदांत के ज्ञाता होनेके साथ अच्छे पौराणिक हो ऐसे धर्मशास्त्र के विद्वानों का वचन हि औषध जैसा होता है । दीक्षायुक्तं गुरोः ग्राह्यं मंत्रंह्यथ फलाप्तये, ब्राह्मणः सत्य पूतात्मा गुरोर्ज्ञानीविशिष्यते । उपगम्यगुरूंविप्र माचार्यंतत्ववेदिनम्, जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोग परायणम् । उपासक, तत्ववेत्ता, ज्ञानी एवं पवित्र भी हो, ईश्वर के ध्यान में रत रहते हो - शिष्यचित्तोपहारकः शिष्यके चित्तको समाहित कर सकें । मन्त्रमुक्तावल्याम् - अवदातान्वयः शुद्धः स्वोचिताचारतत्परः। आश्रमी क्रोधरहितो वेदवित्सर्वशास्त्रवित् ॥ १.३८ ॥ श्रद्धावाननसूयश्च प्रियवाक्प्रियदर्शनः। शुचिः सुवेशस्तरुणः सर्वभूतहिते रतः ॥ १.३९ ॥ धीमाननुद्धतमतिः पूर्णोऽहन्ता विमर्शकः। सगुणोऽर्चासु कृतधीः कृतज्ञः शिष्यवत्सलः ॥ १.४० ॥ निग्रहानुग्रहे शक्तो होममन्त्रपरायणः ।ऊहापोहप्रकारज्ञः शुद्धात्मा यः कृपालयः। इत्यादिलक्षणैर्युक्तो गुरुः स्याद्गरिमानिधिः॥ १.४१॥सारांश - ब्राह्मण, शुद्ध आश्रमी, वेदशास्त्र के ज्ञाता, पवित्र,

तपस्वी, शिष्य पर कृपा करनेवाले, निःस्पृही, सर्वविद्या एवं शास्त्रो के ज्ञाता, धर्मशील, शास्त्रानुशासनरत, श्रद्धायुक्त, उपासक, तत्त्वदर्शी, ध्यान-उपासना में रत और शिष्यो को प्रवृत्त करनेवाला, बुद्धिमान, उदार,वक्ता गुरू होने चाहिए । ये सब लक्षण आजके मिडियाप्रसिद्ध एक भी गुरू में प्रायः नहीं मिलेगा । जो सद्गुरू होते है उनको तो शिष्यके कल्याणमें ही रूचि होती है । उनका कोई संप्रदाय बढानेमें रस नहीं होता । उनमें तो कारूण्यरत होता है, कामनारत नहीं ।

भगवान आदि शंकरने भी, अपने सेवक शिष्यको ऐसी शक्ति प्रदान की थी कि, एक सामान्य सेवक जैसे शिष्यने, एक अलौकिक वैदान्त के गूढ रहस्य सभर सुन्दर, स्तोत्र रचना करते-करते, आश्रम में प्रवेश किया, जिसे अन्य शिष्य मूर्ख समझते थे । यही है सद्गुरू की शक्ति एवं भक्ति का रहस्य । गुरू कृपा ही केवलम् ।

वैसा ही एक दूसरा प्रसंग भी है, महर्षि नारदजी को ज्ञात हो गया था कि, वाल्मिकी को कोई ऐसा ही मन्त्र दे, जिसे वह कैसे भी जपे, उनका हित हो । मन्त्रो के उच्चारण से उनके अर्थ एवं फल में अन्तर आ जाता है, जैसे कोई औषध बिना समझे ले ले तो, वह अपना असर तो दिखाएगी ही, मन्त्र भी विपरित फल दे सकते है । नारदजी ने (पुराणों में) कईयों को दीक्षा-मन्त्र दीए है - सबको अधिकारानुसार । ध्रुव को द्वादशाक्षरी नारायण मंत्र और वाल्मिकी को राम मंत्र, क्योंकि वे कैसे भी जपे, राम बननेवाला ही है, उनके अन्तःकरण में अद्भूत कवित्व के नारदजी को दर्शन हो गए थे - वे पक्षीयों की क्रन्दनमें से, महाकाव्य का सर्जन कर सकते है - उल्टा नाम जपे जग जाना । वाल्मीक भये ब्रह्म समाना ।। इसका अर्थ आजके वक्ता यही करते है कि, कोई भी मन्त्र, कैसे भी जपो अच्छा ही है, कोई समस्या नहीं, शास्त्रोक्त विधि विधान की कोई आवश्यकता ही नहीं । जब ऐसा ही था, तो ऋषियों का इतना प्रयत्न व्यर्थ ही माना जाएगा । यह मन्त्रशास्त्र का आविष्कार निरर्थक ही हो गया क्या ?

आजकल तो मिडिया रोज एक गुरू पैदा करता हैं । मिडिया का भी धंधा चले - गुरू का भी धंधा चले । किसकी योग्यता परखनेकी नैतिक जवाबदारी नहीं है । राजनेताओं का स्वार्थ, तो ऐसे बाबाओं से अपना राजकीय हित साधनेका है, विद्वान या तो लालची है, या कर्तव्यपालन में सुषुप्तहै । पीस रही है, आम जनता जो अनुकरणशील है । रोज-रोज, बडे शहरों में विज्ञापन लगे रहते हैं - **योगशिबिर-सत्संगसमारोह**, जैसे **एक्सिबीशन कम सेल** । स्वेच्छाचारी वक्ताओं पर लिखकर, इस ग्रंथकी पवित्रता को क्षति नहीं करनी हैं, इनके विषयमें अन्य स्थान पर यथोचित वर्णन किया ही है । शास्त्रो का उपहास देखना या उनके प्रति सुषुप्ति रखना भी विद्वानों की कर्तव्यपलायनता ही है । हम पाखण्डी गुरूओकी चर्चा से ग्रंथ को अपवित्र नहीं करेंगे ।

गुरू के प्रकार - सामान्यतया शास्त्र कहता है, **प्रेरकसूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा। शिक्षकोबोधकश्चैव षडेते गुरवस्मृता** प्रेरणादायी, मार्गदर्शक, शिक्षक, उपदेष्टा, वाचक एवं सूचक ये छः गुरू है। बालक के लिए माता, किशोर के लिए पिता, स्त्री के लिए पति स्त्रीणां भर्ता गुरूः, एवं वर्णानां ब्राह्मणो गुरू सभी वर्णो को गुरू ब्राह्मण माना है (जो ब्राह्मण द्विजवन्धु या पतित सावित्री न हो ऐसा, केवल नामधारी नहीं या जन्म से नहीं)। इसके उपरान्त माता, पिता, ज्येष्ठ बन्धु, आचार्य, कुलगुरू, पुरोहित, विद्वानों में भी गुरूभाव रखनेकी शास्त्र बात करता है। जिनका सान्निध्यमात्र ही मनसमाहित करने में समर्थ हो, संकल्प-विकल्प रहित हो, एवं बिना पूछे ही अपने प्रश्नो, समस्याओं का उत्तर मिलता हो, मन में अनुपम शान्ति की अनुभूति हो, वही गुरू की उत्तम परिक्षा भी है। गुरू का स्थान ब्रह्मरन्ध्र सरोज में है, जो भगवान शिव का स्थान भी है। गुरू तीन प्रकार के है -

गुरवोबहवः सन्ति मन्त्रतन्त्रार्थगोचराः। दिव्यौघाश्चैव सिद्धौघा मानवौघाक्रमाद्विदुः ।। दिव्या वसन्ति खे नित्यं सिद्धाभूमाविहापि च । मानवौघा मनुष्येषु मम रूपधराःशिवाः।। मन्त्र एवं तत्त्वचिन्तक, शास्त्रवेता गुरू भी दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ तीन प्रकार के है। जो दिव्योघ है वह स्वयं देवलोक - गगनमण्डल में अव्यक्त रूप में होते है, जो सिद्धौघ है वह भूमिपर होते हुए भी दुर्लभ होते है, जो मानवौघ है वह हमारे मध्यमें सहजतासे प्राप्त हो सकते है। कैसे गुरू मिलेंगे, यह शिष्यकी योग्यता पर आधारित है।

सामान्यतया, जिस प्रकार ५ वॉल्ट के बल्बमें, पावरस्टेशन का सीधा सप्लाय नहीं दे सकतें, वैसे ही अनन्तशक्ति या ब्रह्मका, अनाधिकारीको अनुभूति सीधे ही नही कराई जाती है। शक्तिपातानुसारेण शिष्योनुग्रहमर्हति योग्यताके आधारपर ही इस परम तत्वका बोध हो सकता है। हरकोई मेडिकलमें नहीं जा सकता, या आईएएस नहीं बन सकता। यथा योग्यताके अनुसार ही ईश्वर कृपासे गुरू मिलते है। अनुग्रहप्रकारस्य क्रमोयमविवक्षतः– शि.पु.वा.सं.३-४।

जिस प्रकार १०००० वॉल्टकी मोटर को सीधा सप्लाय दे सकते है – किसी ट्रान्सफोर्मरकी जरूरत नहीं है, वैसे ही तप और भक्ति एवं पूर्वजन्मोंके अर्जित पुण्यकी जिसके पास पूंजी है, उसे स्वयं परमात्माके द्वारा उपदेश मिलता है जैसे कि प्रहलाद – ध्रुव – अर्जून – देवहूति आदि। दिव्य विग्रह ही अपने दिव्य स्वरूपसे उपदेश देते है। ये है दिव्यौघ गुरू परंपरा।

कहीं पर प्रभु स्वयं नहीं आते, अपने दिव्य भक्तों ओर सिद्धो को गुरूके रूपमें भेजकर, अनुग्रहीत करते है। क्योंकि ५०० वॉल्टके बल्ब के लिए ट्रान्सफोर्मर चाहिए। जैसे

शंकराचार्य द्वारा चार शिष्योंको उपदेश, शुकदेवजी द्वारा परिक्षितको उपदेश हुआ है । ये है सिद्धौग परंपरा ।

अब आप समझ ही गए होंगे कि ५ वॉल्ट के बल्ब को तो, मिटरसे जो सप्लाय आता है, वो भी सीधा नहीं दे सकतें । उसमें भी एक अधिक ट्रान्सफोर्मर की आवश्यकता बनी रहती है । सज्जन व साधारण अधिकारीयोंको, साधुजन द्वारा जो उपदेश होता है, यह मानवौघ परंपरा है । आज विद्वान ब्राह्मण व कुल पुरोहित, आचार्य जो उपदेश करते है, इसे मानवौघ परंपरा कहते है ।

गुरू एवं मन्त्र दिक्षा कैसे प्राप्त करे- गुरू प्राप्त होना भी भगवान की कृपा या पूर्व के पुण्योदय का ही फल है । यद्यपि चिन्तीत होने की जरूरत नहीं है । शुद्ध निष्ठा एवं श्रद्धा हो तो गुरू स्वयं चलकर सामने आएंगे । जैसे अजगर को शिकार ढूढने नहीं जाना पडता या तो चिपकली को ही देखो, उसका आहार उडते मच्छर, पतंगादि जीव है, किन्तु वो तो दिवाल से ही चिपक कर चलती है, यद्यपि उनका आहार स्वतः ही मुखमें आ जाता है । ध्रुवजी को गुरू वैसे ही वनभ्रमणमें मिल गए और नारायण मन्त्र का उपदेश भी हो गया । वैसे ही प्रह्लादजी को सही गुरू नहीं मिले थे, यद्यपि उनकी भक्ति से उन्हे भी नारदजी जैसे, सद्गुरू प्राप्त हुए है । अब यहां एक गुरू निर्द्दिष्ट बात करते है । स्वप्ने वाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम् ।अकस्माद्यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरोर्विना.. बहुशः स्मरेत् -यदि गुरू न मिले तो, जो भी इष्टमन्त्र में श्रद्धा हो, या कोई स्वप्नदृष्ट मन्त्र हो, अपने इष्ट देवता या शिवजी की प्रतिमा के सन्मुख उसका निरन्तर जप करें । आगम शास्त्रों मे बताया है - जपसिद्धि का प्रथम लक्षण यह है कि गुरूकृपा होना । सिद्धगुरू की प्राप्ति निष्ठायुक्त उपासना से होती है । शिवजी से प्रार्थना करे कि, हमें सद्गुरू की प्राप्ति हो - **त्वत्पादाम्बुजमर्चयामि परमं त्वां चिन्तयाम्यन्वहम् । त्वामीशं शरणं व्रजामि वचसा त्वामेव याये विभो ।। दीक्षां मे दिश चाक्षुषीं सकरूणां दिव्यश्चिरं प्रार्थिताम् । शम्भोलोकगुरो मदीयमनसः सौख्योपदेशंकुरू ।।** गुरू अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि गुरू को भी योग्य शिष्य की आवश्यकता रहती है, जैसे रामकृष्ण परमहंस को नरेन्द्र की, विवेकानन्द की आवश्यकता थी । दृढ इच्छा शक्ति हो तो सद्गुरू अवश्य ही मिलेंगे ।

गुरू की प्राप्ति के लिए व्रत करना पडता है - व्रत शब्द की उत्पत्ति (वृत्त वरणे अर्थात् वरण करना या चुनना) से मानी गई है, । ऋग्वेद में वृत शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है - संकल्प आदेश विधि निर्दिष्ट व्यवस्था, वशता, आज्ञाकारिता, सेवा, स्वामित्व, व्यवस्था, निर्धारित उत्तराधिकर वृत्ति आचारिक कर्म प्रवृत्ति में संलग्नता रीति धार्मिक कार्य उपासना, कर्तव्य अनुष्ठान, धार्मिक तपस्या उत्तम कार्य आदि के अर्थ मे है। वृत से ही व्रत की उत्पत्ति मानी गई है। व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्ध्या सत्यमाप्यते -यजुर्वेद १९.३०। शब्दार्थ -व्रतेन..व्रत से, सत्यनियम के पालन से मनुष्य, दीक्षां..दीक्षा को, प्रवेश को, आप्नोति..प्राप्त करता है, दीक्षया...दीक्षा

से, दक्षिणां...दक्षिणा को, व्रृद्धि को, बढ़ती को, आप्नोति...प्राप्त करता है । दक्षिणा...दक्षिणा से, श्रद्धां...श्रद्धा को, आप्नोति...प्राप्त करता है और सदा, श्रद्ध्या...श्रद्धा द्वारासत्यं...सत्य कोआप्यते...प्राप्त किया जाता है ।व्रत से दीक्षा मिलती है, दीक्षा से दक्षिणा (दाक्षिण्य), दक्षिणा से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। किसी ध्येय सिद्धि के लिए संकल्प बद्ध होना, संनिष्ठ प्रयास करना, आहार, विहार, व्यवहारादि के लिए सुनिश्चित होने को व्रत कहते है । सरकस में या किसी, संगीत समारोह में जो सुन्दर प्रदर्शन होता है, वह सुदीर्घ कालकी तपस्या, व्रत एवं प्रयत्नों का ही फल है, वह उनके निरन्तप अभ्यास का फल है । क्रिकेट कोच पहले, प्रशिक्षणार्थी को पूरे मैदान का चक्कर लगवाते है, नियत पोषाक पहनातें है, आहारादि के नियम बताते है, खेलने की पद्धति सिखाते है, शनैः शनैः प्रशिक्षणार्थी में श्रद्धा का उदय होता है, यह सब व्रत ही तो है । संगीत-नृत्यादिमें भी आहार विहार के नियम होते है ।

शरीरं चैव वाचं च बुद्धिन्द्रिय मनांसि च । नियम्य पाञ्जलिः तिष्ठेत्वीक्षमाण गुरोर्मुखम् । गुरुशुश्रुया काया शुद्धिरेषा सनातनी - गुरू के लिए पूर्ण समर्पण, श्रद्धा एवं निष्ठा अनिवार्य है । जैसे नृत्य शिक्षा, संगीत शिक्षा में गुरू के आदेशानुसार आयाम-अभ्यास करते है, नियमों का पालन भी करते है । **हम डॉक्टर के पास जाते है तो, समर्पित होते ही है । डॉक्टर कहे मुंह खोलो - खोलते है, जोर से सांस लो - लेते है, सो जाओ - सो जाते है, जीभ निकालो - निकालते है, आ-आ करके जोरसे आवाज करो -करते है, आंखे बन्द करो -करते है । इतना ही नहीं उनके सूचनानुसार - आहार-विहार का- पथ्यापथ्य का, दवा लेना इत्यादि मानते है, तभी तो स्वस्थ होते है । हमें यदि हाथ-पांव में मोच आती है या गरदन में दुःखता हो, तो फिजियोथेरोफिस्ट से पास जाते है और उनके आदेशानुसार अंगों को मोडते है, यहि है समर्पित होना** । बस, वैसे ही भवरोग निवृत्यर्थ गुरू को भी समर्पित होना पडता है । निष्ठा एवं दृढ श्रद्धा से सब प्राप्य है ।

दीक्षा का महत्त्व - अब दिक्षा को समझातेहै, क्योंकि अथ शास्त्रीयं विधानं च शिक्षणीयम् ।जपो देवार्चन-विधिः, कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः - मन्त्र मुक्तावली, अतः सभी कार्य दीक्षा के उपरान्त ही उचित है । ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् । अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता दीक्षा तत्त्वार्थवेदिभिः - रूद्रयामल तंत्र।अदीक्षताः ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः । न भवेत्तु फलं तेषां, शिवायामुप्तबीजवत् - योगिनीतंत्र।दीक्षाहीनस्य देवेशी पशोः कुत्सित जन्मनः - रूद्रयामल । अदीक्षितानां मर्त्यानां श्रृणु देवी महेश्वरी अन्नं विष्टा समं तस्य जलं मूत्र समं स्मरेत् - मत्स्य सूक्त।दिक्षाग्मि दग्ध कर्मासौ यायाद्विच्छिन्न बन्धनः । गतस्तस्य कर्म बन्धो निरजीवश्च शिवो भवेत् – कुलार्णव, दीयतेज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाशबन्धनम् । अतो दीक्षेति देवेशि कथिता तत्तवचिन्तकैः - योगिनी तंत्र । दीयते ज्ञानविज्ञानं क्षीयते पापराशयः । तेन दीक्षेति हि प्रोक्ता प्राप्ता चेत्सद्गुरोर्मुखात् - मेरू तंत्र सारांश यह है जिससे परमतत्त्व का

बोध हो, अज्ञान का निर्मूलन हो, उसे दीक्षा कहते है । दिक्षाग्नि दग्धकर्मासौ यायाद्विच्छिन्नबन्धनः । गतस्तस्य कर्मबन्धो निरजीवश्च शिवोभवेत् – कुलार्णव । दिक्षा के उपरान्त कर्मबन्धनों का क्षय हो जाता है, ज्ञान के प्रादुर्भाव के साथ वे भस्मीभूत हो जाते है । दीक्षा उपासना का अनिवार्य अंग है ।

हमारे पुण्योदय एवं गुरू कृपाप्रसाद से ही पाशबंधक्षयकारिणी दीक्षा मिलती है । श्रुति, पुराण व तन्त्रागमों में दीक्षा का सविस्तर वर्णन है, किन्तु हमें समझने के लिए यहां इतना पर्याप्त है । ये जो दीक्षा है वह गुरूकृपा से प्राप्त हो सकती है और वह भी शिष्य के अधिकारानुसार । आज जैसा नहीं कि व्यासपीठ से बीना कुछ विचार किए रटा देते है, किसी मन्त्रको, हो गई दीक्षा । दीक्षा के क्रम एवं प्रकार होते है । दीक्षा कौन दे सकता है- श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् (मु।उप) केवल सद्गुरू और **शक्तिपातानुसारेण शिष्योनुग्रहमर्हति** योग्यताके आधारपर ही इस परमतत्वका बोध होता है । **अनुग्रह प्रकारस्य क्रमोयमविवक्षतः** शि.पु.वा.सं.३.४। सामान्यतः देखे तो, प्राथमिक कक्षा में अक्षरज्ञान करानेवाले शिक्षक पीटीसी होते हैं - पीएचडी नहीं, माध्यमिक कक्षा में स्नातक - बी.एड होते हैं - उच्चतर में प्रायः मास्टर डिग्री, स्नातककोत्तर में पीएचडी, ऐसे ही क्रमशः गुरू की कक्षा भी स्वयं की योग्यता-दक्षता पर अवलंबित है ।

दिक्षा के प्रकार व अनुभूति - दीक्षा प्रकार – १. स्पर्श दीक्षा २. चाक्षुसी-दृष्टि दीक्षा ३. वाचिकी-शब्द दीक्षा ४. मानसी-ध्यान दीक्षा ५. आणवी दीक्षा ६. मान्त्री दीक्षा ७. शक्ति दीक्षा ८. शाम्भवी दीक्षा ९. अभिसेचिका दीक्षा(पूर्णाभिषेकादि) १०. स्मार्तीदीक्षा ११. योग दीक्षा ।

शिव पुराणके अनुसार यह दीक्षा शाम्भवी, शाक्ति व मान्त्रि तीन प्रकारकी होती है ।

१. शाम्भवी दीक्षा : गुरु के दृष्टिपात मात्र से, स्पर्ष से तथा बातचीत से भी जीव को पाश्बंधन को नष्ट करने वाली बुद्धि एवं ईश्वरके चरणोंमें अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है । प्रकृति (सत, रज, तम गुण), बुद्धि (महत्तत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार एवं शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श (पांच तन्मात्राएँ), इन्हें आठ पाश कहा गया है । इन्हीं से शरीरादी संसार उत्पन्न होता है। इन पाशों का समुदाय ही महाचक्र या संसारचक्र है और परमात्मा इन प्रकृति आदि आठ पाशों से परे है । गुरु द्वारा दी गई योग दीक्षा से यह पाश क्षीण होकर नष्ट हो जाता है। इस दीक्षा के दो भेद है : तीव्रा और तीव्रतरा । पाशों के क्षीण होने में जो मंदता या शीघ्रता होती है उसी के अनुसार यह दो भेद है । जिस दीक्षा से तत्काल शांति मिलती है । उसे तीव्रतरा कहते है और जो धीरे-धीरे पाप की शुद्धि करती है वह दीक्षा तीव्रा कहलाती है । शाम्भवी दीक्षा का उदाहरण है, रामकृष्ण परमहंस द्वारा स्वामी विवेकानंद को अंगूठे के स्पर्श से परमात्मा का अनुभव हुआ था ।

२. शाक्ती दीक्षा :- गुरु योगमार्ग से शिष्य के शारीर में प्रवेश करके उसके अंतःकरण में ज्ञान उत्पन्न करके जो ज्ञानवती दीक्षा देते है, वह शाक्ती दीक्षा कहलाती है ।

३. मान्त्री दीक्षा :- मान्त्री दीक्षा में पहले यज्ञमंडप और हवनकुंड बनाया जाता है । फिर गुरु बाहर से शिष्य का संस्कार (शुद्धि) करते है । शक्तिपात के अनुसार शिष्य को गुरु का अनुग्रह प्राप्त होता है। जिस शिष्य में गुरु की शक्ति का पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती, उसमें न तो विद्या, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही आती है । इसलिए शक्तिपात के द्वारा शिष्य में उत्पन्न होने वाले लक्षणों को देखकर गुरु ज्ञान अथवा क्रिया द्वारा शिष्य की शुद्धि करते है । उत्कृष्ट बोध और आनंद की प्राप्ति ही शक्तिपात का लक्षण (प्रतीक) है क्योंकि वह परमशक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है ।दीक्षा की अनुभूति भी दिव्य होती है - देहपातस्तथा कम्पः परमानन्दहर्षणे । स्वेदोरोमाञ्च इत्येच्छक्तिपातस्य लक्षणम् ।। शरीरमें दिव्य चेतनाका संचार, रोमरोम में आनन्द की अनुभूति और बोध का लक्षण है अंतःकरण में सात्विक विकार का उत्पन्न होना । जब अंतःकरण में सात्विक विकार उत्पन्न होता है या वह द्रवित होता है तो बाह्य शारीर में कम्पन, रोमांच, स्वर-विकार (कंठ से गदगद वाणी का प्रकट होना), नेत्र-विकार (आँखों से आंसू निकलना) और अंगा-विकार (शारीर में जड़ता, पसीना आना आदि) प्रकट होते है ।

गुरू की दीक्षा देनेकी रीत भी निराली होती है । वे चाहे कैसे अनुग्रह करे पता नहीं चलता । दीक्षा के प्रकारों का वर्णन योगवाशिष्ठ, तन्त्रागमों, नाथ साहित्य, शिवपुराण एवं स्कन्दपुराण की सूत संहितामें अच्छे से वर्णित है । जो संक्षेप में निम्नानुसार है - **दर्शनात्स्पर्शनाच्छब्दात्वेधदृष्ठ्या तथैव च । संकल्पेन च कारूण्या संक्रमणं शिष्यदेहके । विद्धिस्थूलंसूक्ष्मं सूक्ष्मतरं सूक्ष्मतममपि क्रमतः । स्पर्शन भाषण दर्शन संकल्पेन त्वतश्चतुर्धा तत् ।। यथा पक्षी स्वपक्षाम्यां शिशून्संवर्धयेच्छनैः । स्पर्शदीक्षोपदेशस्तु तादृशः कथितः प्रिये ।। स्वापत्यानि यथा कूर्मी वीक्षणेनैव पोषयेत् । दृग्दीशोक्योपदेशस्तु तादृशः कथितः प्रिये ।। यथा मत्स्यी स्वतनयान् ध्यानमात्रेण पोषयेत् । वेधदीक्षोपदेशस्तु मनसः स्यात्तथा विधि ।। स्थूलं ज्ञानं द्विविधं गुरूसाम्यासाम्यतत्त्वभेदेन । दीपप्रस्तरयोरिव संस्पर्शास्निग्धवर्त्ययसोः।। तद्वद्विविधं सूक्ष्मं शब्दश्रवणेन कोकिलाभ्युदययोः । तत्सुतमयूरयोरिव तद्विज्ञेयं यथासंख्यम्** ।। सारांश - दीक्षा, दृष्टि से, ध्यान से, स्पर्श से, शब्द से, सान्निध्य से मिल सकती है । जैसे पक्षी अपने अण्डों को स्पर्श करके शक्तिप्रदान करते है, टिटहरी एवं कोकिल शब्द से, कीट भ्रमर के गुंजारव से, कमल सूर्य के प्रकाश से, कूर्मी - काचबी दृष्टि से, मछली ध्यान से अपने बच्चों को शक्ति देते है, एक दिपक अपने सान्निध्य से अन्य दिपक को प्रकाशित करते है ।

सद्गुरू का सान्निध्य मात्र, स्वच्छ एवं निर्मल विचारों के लिए कारणभूत बनताहै । जैसे सुगन्धित अत्तर एवं पुष्प बेचनेवाले की दुकान पर कुछ समय बैठनेसे अपने शरीर से सुगन्ध आने लगती है, और मधुशाला-शराबी की दुकान पर बैठनेसे दुर्गन्ध आती है,

कोयला बेचनेवाले की दुकान पर बैठनेसे अपने कपडों पर काला रंग आ ही जाता है और सूर्य के निकलनेसे ही कमल खिल जाते है ।

समयाचार एवं षडध्वशोधन - संक्षेप में समय का अर्थ है स(ब्रह्म) मय - जीवत्व शिवत्व का अद्वैत स्वरूप या ब्रह्माकार वृत्ति - ब्रह्माकार बनना ही समयाचार है- जीवत्व को शिवत्व में विलीन करना समयाचार है । षडध्वशोधन शोधन है - भूतशुद्धि को कहते है । कला, तत्त्व, भुवन(आकार), वर्ण (रंग), पद(देव) और मंत्र(बीजमंत्र), ये छः प्रकार की अध्वाएं कही गई है । अध्वा का अर्थ है नीचे की ओर- अधोदिशा ।

कला पांच प्रकार की कही गई है जो कि आकाशादि तत्त्वों का रूप है । निवृत्ति कला पृथ्वीतत्त्वरूपिणी है, प्रतिष्ठाकला जलतत्त्वरूपिणी है, विद्याकला अग्नितत्त्वरूपिणी है, शांतिकाला वायुतत्त्वरूपिणी है, और शंत्यातीतकला आकाशतत्त्वरूपिणी है । इस प्रकार स्थिर तत्त्व (पृथ्वी), अस्थिर तत्त्व (वायु), शीत तत्त्व (जल), ऊष्ण तत्त्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश तत्त्व का भूत शुद्धि में चिंतन किया जाता है । तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मंत्र ये पंचों अध्वाएं, पंचों कला अध्वओं से व्याप्त है । पाँचों कला अध्वओं एवं पाँचों भूतों (तत्त्वों) का शुद्ध होकर अव्यय ब्रह्म में मिल जाना ही भूत शुद्धि है । सबसे पहले गुरु शिष्य के मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी को जागते है और क्रमशः स्वाधिष्ठान व मणिपुर चक्र का भेदन कर सुषुम्णा नाड़ी के रास्ते से हृदय में स्थित अनाहत चक्र में लाते है । वहां दीये की लौ के सामान आकार वाले शिष्य के जीव को कुण्डलिनी के मुख में लेकर विशुद्धि चक्र (कंठ में) एवं आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) का भेदन करते है और ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार चक्र में ले जाते है । वहां ईश्वर का निवास है । शिष्य की जीवात्मा सहित कुण्डलिनी को परमात्मा में विलीन कर देते है। इस दौरान पृथ्वी तत्त्व (चौकोर आकृति, पीला रंग, ब्रह्मा देवता पद, बीजमंत्र लं, निवृत्ति कला, पैर के तलुवों से जंघा तक) का विलय जल तत्त्व (अर्धचंद्र आकृति, सफ़ेद रंग, विष्णु देवता पद, बीजमंत्र वं, प्रतिष्ठा कला, जंघा से नाभि तक) में करते है । जल तत्त्व का विलय अग्नि तत्त्व (त्रिकोण आकृति, लाल रंग, शिव देवता पद, बीजमंत्र रं, विद्याकला, नाभि से हृदय तक) में करते है । अग्नि तत्त्व का विलय वायु तत्त्व (गोलाकार, धूम्र वर्ण, ईशान देवता पद, बीजमंत्र यं, शांति कला, हृदय से भ्रूमध्य तक) में करते है । वायु तत्त्व का विलय आकाश तत्त्व (वृत्ताकार, स्वच्छ वर्ण, सदाशिव देवता पद, बीजमंत्र हं, शान्त्यातीत कला, भ्रूमध्य से ब्रह्मरंध्र पर्यंत) में करते है । इसके बाद आकाश को अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व (बुद्धि) में, महत्तत्त्व को प्रकृति में और प्रकृति को परमात्मा में विलीन करते है ।

आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादम् कालक्रमेण च- (म.भा,उ.प.) अर्थात् विद्यार्थी एक चौथाई शिक्षा आचार्य से प्राप्त करता है, एक चौथाई अपनी स्वयं की बुद्धि से।

यहां षड्चक्रो की बात के विषय में, किसीने हम से प्रश्न किया था कि, ये चक्र होते कहां है, पूरे शरीर का पोस्टमोर्टम या ऑपरेशन के दरम्यान कभी किसी डॉक्टर या सर्जन ने तो ये नहीं देखा - क्या यह वास्तव में है भी या केवल कल्पना है ? अति सुन्दर प्रश्न । हम विमान में यात्रा करते है - कहीं भी किसी देश के नक्शे की लकीरें - रेखाए नहीं देखी । कहीं बदलते समय की घडी भी नहीं देखी । कहां से वातावरण मे परिवर्तन हुआ - हवामान बदला उसकी नियत रेखा भी नहीं देखी । यदि सब कुछ भौतिक परिमाणो से नपा जाएगा, तब तो, मानवी के क्रोध-प्रेम-आनन्द-द्वेष के भी मीटर बन जाएंगे । पृथ्वी तो गोल है, कहीं भी अक्षांश, रेखांश, कर्कवृत्त, मकरवृत्त, विषुववृत्त, उत्तर-दक्षिण गोलार्ध नहीं देखा और किसी देश की रेखाए न दिखने पर भी उनका अस्तित्व है । समग्र आकाश में कहीं भी कोण नहीं है, यद्यपि गोल पृथ्वी की दिशाए भी है, जो अवकाश यात्रा का प्रधान परिबल माना जाता है । वैसे ही काल-समय का प्रारम्भ कब हुआ, पूर्ण कब होगा, कैसा रंग है समय का, क्या गुणधर्म है इसके, कैसा है यह समय ? कुछ भी तो मालुम नहीं, फिर भी समय को, काल के परिमाण को स्वीकारते है, इससे संसार चलता है, विज्ञान चलता है, सब कुछ परिमाणो से दिखनेवाला तो नहीं होता, इसका मतलब यह नही कि उनका अस्तित्व ही नकारे । सूक्ष्मदर्शक यंत्रो के आविष्कार के पहले रक्त में अनेक श्वेतकण, रक्तकण, पित्तकण थे, दिखते नहीं थे, अब दिखते है इसका अर्थ ये नहीं कि, पहले रक्त दूसरा होगा - कुछ सत्य अनुष्ठान से आत्मसात् किए जाते है, उनकी स्वानुभूति ही इसका प्रमाण होता है । बिजली के तार को छू लेनेपर ही पता चलता है कि, करंट क्या होता है । शरीर में तीन मुख्य नाडीया है सुषुम्णा-ईडा-पिंगला । इनमें से बहत्तर हजार नाडीया निकलती है । प्रधान नाडी सुषुम्णा है, जिसके उपर यह षड्चक्रो की स्थिति मानी गई है और आध्यात्मिक पथ पर अभ्यास से उसकी अनुभूति होती है । इन नाडीयों में शक्ति का अनन्तस्रोत चलता है, **दिव्य ऊर्जा का अधिष्ठान है षड्चक्र** ।

पृथ्वी के उत्तर से दक्षिण ध्रुव पर्यन्त चुम्बकीय शक्ति, अविरत विद्यमान रहती है । बिजली के तार में विद्युत प्रवाह है, दिखता नहीं, उसे टेस्टर से देखा जा सकता है । अवकाश में टीवी, रेडियो, मोबाईल के सिग्नल्स होते है, दिखते नहीं, देखने के नियत साधन एवं पद्धति होती है । कुछ प्रक्रियाओं का, विधियों का कार्य-कारण सम्बन्ध भौतिकरूप से नहीं दिखाया जा सकता, वे गुरूगम्य होती है, उसे स्वानुभूति से ही जान सकते है ।

उपसंहार - ध्वनि, उच्चारण, ध्वनि-ग्रहण, स्फोट आदि का विस्तृत विवेचन तंत्रागमों में मिलता है । एकाक्षरा वै वाक् - जै.ब्रा.२.२४२, मन्त्रार्थदेवतारूपं चिन्तनंपरमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः॥ मननात्तत्तवरूपस्य देवस्यामिततेजसः। त्रायते सर्वभय तस्तस्मान्मन्त्र इतीरितः ॥ देहमास्थाय भक्तानां वरदानाच्चपार्वती । ताप त्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तिता ॥ मन्त्र स्वयं देवता का ही स्वरूप है, भगवान का

शब्ददेह, और उनकी शक्ति ही पराम्बा वाक् है । मन्त्र की अलौकिक शक्ति का दर्शन कराने यह एक प्रयास है । पूरे लेख में कई जगह पर विषयान्तर अवश्य हुआ है, यद्यपि हमें जहां कुछ कहना उचित लगा या संगतिरूप था वहां ज्यादा लिख दिया है या द्विरूक्ति भी की है । मेरी अनुभूति है कि, वर्णो तथा शब्दों में अर्थ निहित होता है और उपासना से स्वतः सत्य एवं अर्थो का स्फुरण होने लगता है । बहोत सारी बाते मुझे आज भी आत्मसात् हो रही है । **अनादिनिधनंब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेर्थभावेन प्रक्रियाजगतो यतः।।** यद्यपि **केवलंशास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योविनिर्णयः । युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिः प्रजायते** ।। अतः भिन्न-भिन्न पुराणादि के तर्क पर विचार करके ही निर्णय करना उचित होता है ।

हरि अनंत हरि कथा अनंता । मन्त्ररूपी शिव का शब्दो में वर्णन करना सर्वथा असंभव है । असितगिरीसमं स्यात, कज्जलं सिन्धु पात्रे,सुरतरुवर शाखा, लेखनी पत्रमूर्वी । लिखति यदि गृहीत्वा, शारदा सर्व कालं,तदपि तव गुणानामीशपारं ना याति। पूरे समुद्र की स्याही बनाकर, वृक्षों की कलमों से, युगो पर्यन्त स्वयं भगवती शारदा भी आपका माहात्म्य वर्णित करना चाहे, तब भी शेष रह जाएगा, तो मुझ मूढ की क्या मति है, जो मंत्ररूप देवता का वर्णन कर पाउं, यद्यपि वेदोपनिषद, पुराण, व्याकरण, तन्त्रागमो, स्मृतिग्रंथादि जहां तक मेरी मति जा सकती है, उस सबका आश्रय करके इस लेख का प्रयास किया है । यहां आपको जितना अनुपयुक्त हो, वो त्याग करें, क्योंकि - **ग्रन्थानभ्यस्य मेघावी ज्ञानविज्ञानतत्पर: । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेत् सर्वमशेषत: ।।** बुद्धीमान मनुष्य, जस ज्ञान को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा रखता है, वह ग्रन्थो में जो महत्वपूर्ण विषय है उसे पढकर उस ग्रन्थका सार जान लेता है तथा उस ग्रन्थ के अनावष्यक बातों को छोड देता है, जैसे किसान केवल धान्य उठाता है । **ममत्वेतां वाणीं** मेरा प्रयास तो मात्र मेरी बुद्धि व वाणी को पुनित करनेका ही है । मेरे इस प्रयत्नको विद्वानों के करकमलो में समर्पित करता हुं । **बुधाग्रे न गुणान्ब्रूयात् साधु वेत्ति यत:स्वयम्** - विद्वानों को ज्यादा बताने की आवश्यकता नहीं है । अक्षर ब्रह्महै, अनंत है, उसका क्षरण नहीं होता, अक्षर स्वरूपा भगवति के समेत भगवान् श्रीमहाकाल के श्रीचरणोमें कोटी कोटी वन्दन । आगे उपासना विभाग में, उपासना के आवश्यक अंगो को स्पष्ट करनेका प्रयास करेंगे ।

विभाग २

उपासना रहस्य

प.पू. श्री देवशंकर भट्टजी (गुरू महाराज) - सिद्धपुर

We are not human beings having a spiritual experience. We are spiritual beings having a human experience.

– Pierre Teilhard de Chardin

The only source of knowledge is experience.

– Albert Einstein

Do you know the difference between education and experience? Education is when you read the fine print; experience is what you get when you don't.

– Pete Seeger

आप अनुभव पैदा नहीं कर सकते, आपको उससे हो कर गुजरना होता है।

उपासना की आवश्यकता एवं प्रकार - आजकल प्रायः बर्थडे पार्टी, मेरेज एनिवर्सरि, लग्न, वास्तु, रिसेप्शन में रिटर्न गिफ्ट देते हैं। परमात्माने एक दिनकी १४४० मिनिट का हमे आयुष्य दिया, जब कई लोगों की मृत्यु हूई होगी, क्या हम भी हमे प्राप्त मिनिटों में से कुछ रिटर्न गिफ्ट पुनः परमात्मा को नहीं दे सकते ? **यद्यजनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः** - भाग.७.९.११ ।। परमात्मा तो **निजलाभतुष्टः** जो अपने स्वरूप में स्थित है, आप्तकाम है । उनकी पूर्णता अन्य की उपासना से अपेक्षित नहीं है । हम तो उपासना भी स्वयं के लिए ही करते है, धरती बहुत अन्त देती है, यदि कुछ उसे वापस दे तो पुनः वह हमे ही अनेकगुणा करके देती है। दर्पण मे देख के शृंगार करनेसे दर्पण की नहीं, अपनी ही शोभा बढती है।

हम हमारे देह स्वरूप को तो जानते ही है। कहां-कहां कितने तील है, हमारा वर्ण कैसा है, हमारे बाल कैसे है, आंखे, होठ, कान, हाथ, पैर इत्यादि कैसे है। तथापि हम हमारे शरीर का घण्टों तक शृंगार करते है, क्यों ? हम भौतिक जगत को स्वयं को सुन्दर दीखाने के यथा संभव यत्न करते है। हम इन्टर्नेट से पूरे ब्रह्माण्ड की जानकारी लेते है, मित्रो के साथ चर्चा करते समय, ग्रहो नक्षत्रों की चर्चा में स्वयं को, विद्वान सिद्ध करनेके पूरे प्रयास करते है। हम मंगल एवं सहस्रों प्रकाशवर्ष दूर चांद की पूर्ण माहिती रखते है, पर हमें अपने अंदर बिराजमान अंगूष्टमात्र परमात्मा का ज्ञान है ? हमने उसे जानने का, उससे तादात्म्य साधनेका, अंशमात्र भी प्रयास किया है ? हम अध्यात्म एवं सहज विज्ञान को जाननेका यत्न नहीं करते। शरीरको सुन्दर दिखाने के लिए तो, फेश्यल करते है, मेकअप करते है, शेम्पु एवं कन्डीश्नर लगाते है, क्रीम-लिप्स्टीक लगाते है, बोडी स्पे एवं परफ्यूम लगाते है, अच्छे अच्छे वस्त्र परिधान, किंमती आभूषण एवं जूते पहनते है। संपूर्ण मेचिंग का पूरा खयाल रखते है। हमने हमारे मन को सुन्दर बनाने का यत्न किया है ? आत्माको परमात्मा तादात्म्य का विचार किया है ? **जीवब्रह्मात्मैक्य** का विचार किया है ? वास्तव में तो वही है सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् । आध्यात्म के प्रति प्रयाण ही शाश्वतानन्द का मार्ग मात्र एक मार्ग है। इस मार्ग का प्रारम्भ उपासना से होता है।

पूर्व विभाग में मन्त्र, गुरू, दिक्षा इत्यादि का यथामति विचार कर लिया, किन्तु उद्देश्य केवल रहस्योद्घाटन का नहीं था । मात्र जानकारी (थियरी) से काम नहीं होगा । टेक्नोलोजीं, ईन्जिनीयरींग या विज्ञान का साहित्य पढने मात्र से सायन्टिस्ट या इजनेर नहीं बन सकते। सर्जरी की पुस्तके पढकर ऑपरेशन नहीं कर सकते। ज्ञान हो, तब भी पर्याप्त अनुभव भी होना चाहिए, कार्य करनेके लिए अधिकृत होना चाहिए। उपासना का मार्ग श्रद्धाप्रधान है। सब शास्त्रोक्त बातों का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलना दुष्कर है, तथापि ये बाते पूर्णतया वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित होती है। केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही स्विकृति मानना तो पशुता है। पशु भी रोटी देखकर पास आता है, दण्ड देखकर भाग जाता है। **ज्ञानं विशेषमधिकं नराणाम्** - हमे तो उससे भी आगे जाना है।

विज्ञान के आविष्कार पूर्व भी, सेव नीचे गिरता था, पृथ्वी गोल थी एवं सूर्य का परिक्रमण करती थी। इस ज्ञान का यदि कोई उपयोग न हो, तो ज्ञान कोई कामका नहीं है, हम इस जानकारी का उपयोग करके अनेक सिद्धिया एवं **समुद्रीगमन, स्पेश शटल** के द्वारा, अनेक लाभ लेते है। **गुग्गल मेप** के द्वारा मार्ग खोजते है, अन्यथा गुग्गल मेप की क्या आवश्यकता थी। किसी ज्ञान की प्रयोगात्मक उपयुक्ति न हो, तो वह ज्ञान मात्र ज्ञान ही रहता है, विज्ञान नहीं बनता।

विमान के आविष्कार के पूर्व, विमान कल्पना में रहा होगा, जैसे आज हम बच्चों को परियों की बाते करते है। मन में जो भी विचार एवं कल्पना आती है, उस के उपर श्रद्धा एवं निष्ठा से काम करने पर ही नए-नए आविष्कार होते है। आल्वा एडिशनने, बल्ब को प्रकाशित करने से पहले, उनके विचारों में, कल्पना में ही रहा होगा, सेंकडो प्रयत्नो के बाद, आज पूरा विश्व उसका प्रकाश देखता है। आविष्कार के पूर्व कोई वैज्ञानिक परिमाण नहीं होंते और आविष्कार सकारात्मक प्रयत्न एवं श्रद्धा से ही होते है। कोई भी आविष्कार का जो स्वरूप है, वह अपनी पूर्वावस्था-पूर्वभूमिका में, कल्पना ही होता है, यद्यपि जितने पद (शब्द) है, उतने पदार्थ अवश्य है, क्योंकि पद ऐसे नहीं बनते। सभी बाबतों को भौतिक परिमाणों के द्वारा दिखाना संभव नहीं होता। यदि सबका, प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने लगेगा, तब प्रेम, क्रोध, राग-द्वेष, क्षुधा-तृषा को नापने के यन्त्र-थर्मोमीटर भी मिलेंगे। आज (सत्यशोधक) लाई डिट्क्टर है, हृदयकी गति एवं विचारों की गति नापने के उपकरण है। परमात्मा की दिव्यानुभूति के लिऐ भी हमारे ऋषियों ने आध्यात्म विज्ञान का मार्ग ढूंढ निकाला है, हमे उपनिषद, योग एवं तन्त्र जैसे उत्तम शास्त्र दिए है। गूढ रहस्यों को आत्मसात् करने के लिए ही भगवान शंकाराचार्यजी ने अपरोक्षानुभूति लिखि है। आध्यात्म विज्ञान में भी श्रद्धा-निष्ठा से सब कुछ आत्मसात् कर सकते है।

श्री कृष्णने कहा है - **श्रद्धावान्प्राप्स्यते सर्वं, संशयात्मा विनश्यति**। श्रद्धा से ही कार्य सिद्धि होती है प्रत्येक बातों का कार्य-कारण सम्बन्द स्पष्ट नहीं मिलता, बुद्धि के उपर श्रद्धा को स्थान देना आवश्यक बनता है। ५०० रूपये लेकर फलवाले की दुकान में से फल खरीदकर लाते है, आप कभी नहीं देखते की नोट पर किसके हस्ताक्षर है, कब यह मुद्रित हुई है, इसमें कौनसे रंग है, यद्यपि रूपया विनिमय के लिए प्रमाणित है। आप फल खरीदते है, उसी ५०० की नोट से वस्तु प्राप्त करते है, वैसे ही उपासना में, मन्त्रों में, गुरू-विद्वानों में श्रद्धा रखनी पडती है। कभी हम डॉक्टर को प्रश्न नहीं करते कि, आप कैसे ऑपरेशन करोगे, दवाई में कौनसे तत्व है, वे कैसे असर करेंगे इत्यादि। हमें श्रद्धा का आश्रय करना ही पडता है।

एक प्रसंग यहां लिखना चाहुंगा। कुछ ४०-४२ वर्ष पूर्व की बात है। पू.डोंगरेजी महाराज की भागवत कथा थी। बीच में निर्जला एकादशी आती थी, पू.डोंगरेजी

महाराज शिवमंदिर में दर्शनार्थ आए थे । हमने पूजा करवाई थी । हमारे एक स्नेही विद्वान थे । अति गरीब, पू.डोंगरेजी के आगे रो कर अपनी व्यथा सूनाने लगे । महाराजने कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया, किन्तु पूजा के उपरान्त उन्हें समीप बुलाकर बोले - मूकं करोति वाचालं.... आप लक्ष्मीपति की शरण जाओ । द्वादशाक्षरी का जप करों । उनका यह उपदेश, मानो शक्तिपात हो गया । उस व्यक्ति ने खूब अनुष्ठान किए, फलतः उनको ऐसी दिशा मिल गई कि, ८ वर्षों मे वे अमीर बन गए । पूर्व कोई उनका सूनता नहीं था, वे कहीं यात्रादि के लिए भी नहीं जा सकते थे । वे ही व्यक्ति नौ देशो में भ्रमण कर आए । हिमालय को लांघकर चीन गए, समुद्र को लांघकर अमरिका भी गए । बडी-बडी कॉन्फरन्सो में संबोधन करने लगे । अनेक संस्थाओं के कार्यक्रमो में मुख्य अतिथि का स्थान पाया । **श्रद्धालोरेव सर्वत्र वैदिकेष्वधिकारतः** - पंचदशी ध्यानदीप ।

आचार्य तुलसीने भी श्रद्धा-विश्वास को **भवानीशंकरौ वन्दे** कहा है । श्रद्धा भगवती पराम्बा का रूप लेकर हमारे हृदय में विराजमान है - **या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता** - हमे हृदयमें इसे उच्चास्थनासीत करना है ।

पशुभावेस्थिता मंत्राः केवला वर्णरूपिणः। सौषुमम्णेध्यन्युच्चरिताःपतित्वं प्राप्नुवन्तिते - त्रिक्सार ।। पुस्तक में लिखे हुए मन्त्र की सदृश जबतक मन्त्रों का अनुष्ठान न करे, वे स्थूल - पशुभाव में होते है । एक बडा कम्प्युटर या यन्त्र खरीद के रखने से क्या होगा, जबतक उसना ज्ञान न हो, उसकी उपयुक्ति न हो । वह एक धातु की रचना-कृति मात्र तो है । घर के आगे खडी कार, उसका मशीन, व्हील सबकुछ तो मात्र धातु, रबर एवं रसायण से बनी आकृति ही है, यदि उसका उपयोग न हो तो । प्रथम गंतव्य निश्चित करना होता है, फिर कार में हवा, पानी, ऑईल, ईन्धन की पूर्ति करनी पडती है । ड्राईवींग सिखना पडता है । गन्तव्य का मार्ग जानना पडता है और मार्ग पर चलाने के नियम (आर.टी.रूल्स) को ध्यान में रखकर, जब गन्तव्य पर प्रस्थान करते है, तब तो गंत्वय प्राप्त होता है । मन्त्रो का भी संस्कार करके, उसे चैतन्यान्वित करनेकी आवश्यकता रहती है और इन ऊर्जावान मन्त्रो से साध्य सिद्धि के लिए पुरश्चरणादि का अवलम्बन करके ही मार्ग प्रशस्ति करनी होती है ।

नानुष्ठानं विना लक्ष्मीनर्भिक्तैः प्राप्यते यशः ।। नोद्यमी सुखमाप्नोति नाभार्यः संततिं लभेत् ।। नाशुचिर्द्धर्ममाप्नोति न विप्रोऽप्रियवाग्धनम् ।। अपृच्छन्नैव जानाति अगच्छन्न क्वचिद्व्रजेत् ।। नारद पुराण १७-५४ ।। उद्यम के बिना, लक्ष्मी, पुत्रादि कुछ भी प्राप्त करना असंभव है । वाणिज्य क्षेत्र में उच्च उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त, उद्यम करना पडता है, टक्नीशियन की शिक्षा के बाद प्राप्त ज्ञान को अनुभूति के स्तर पर तो लाना ही पडेगा । **नानुष्ठानं विनावेद वेदनं पर्यस्यति । ब्रह्मधीस्तवतैवस्यात्फलदेति परामाता ।। जीवहीनो यथादेहः सर्वकर्मसु न क्षमः । पुरश्चरणहीनोपि तथा मन्त्रो न सिद्धिदः ।। न गच्छति विनापानं व्याधिरौषधशब्दतः** । मन्त्रशास्त्र के विषय में यह पूरा तो नहीं,

यद्यपि यथावश्यक जाननेका प्रयत्न तो कर लिया हैं । यः क्रियावान्सपण्डितः - उपासना के पथ पर प्रशस्त होनेके लिए उपासना के विषय में जानना आवश्यक हैं - शास्त्र भी कहते हैं कि, वेदों का, शास्त्रों का केवल पठन ही पर्याप्त नहीं हैं, उनका अनुष्ठान भी करना पडता हैं । बिना पुरश्चरण या अनुष्ठान वे फलदायी नहीं होते । जिस प्रकार देह में प्राणकी आवश्यकता हैं, वैसे ही अनुष्ठान मन्त्रो के प्राण समान हैं । मात्र औषध की जानकारी या निदान ही व्याधि निवृत्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता, औषध सेवन करना पडता हैं । यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य - गर्दभ के पीठ पर रक्खी गई चन्दन की लकडी, उनको भाररूप ही होती है, क्योंकि चन्दन की सुगन्ध से वह अज्ञात हैं, ऐसे ही केवल शास्त्रो का ज्ञान अनेक संकल्प-विकल्पका सृजन करते हैं, जब तक साधना की सुगन्ध न मिले ।

केवल औषधि के ज्ञान से व्याधिशमन नहीं होता उसका सेवन भी करना पडता है । यथा केवल शास्त्रो का ज्ञान ही नहीं अपितु, उपासना, व्रत, तपादि से ही ध्येय सिद्धि हो सकती है । ब्रह्मानुभूति या ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए हमारे यहां तीन वाङ्मय प्रमाणभूत माने गए है, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता, उपनिषद् जिसे प्रस्थान त्रयी कहते हैं । तीनों में उपासना तत्त्व की विस्तृत चर्चा मिलती है । इसके अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र व स्मृतियों में भी विस्तृत चर्चा है । पुराणों में भी मुक्तिके तीन ही मार्ग बताए हैं। कर्म, भक्ति(उपासना) व योग-क्रमेण अध्यात्म.७.७.५९,देवी.७.३७.३,भाग.१०.२०.६-
मार्गास्त्रियोमया प्रोक्ताःपुरामोक्षाप्तिसाधकाः । कर्मयोगोज्ञानयोगो भक्तियोगश्चशाश्वतः ॥
मार्गस्त्रयोमे विख्याता मोक्षप्राप्तौनगाधिप । कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तितयोगश्च सत्तम ॥
योगस्त्रयो मयाप्रोक्ता नृणांश्रेयोविधिस्तथा । ज्ञानंकर्मं च भक्तिश्च नोपान्यास्तिकुत्रचित् ॥

ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्ति(उपासना) योग । तीनों योग हमें ब्रह्मशक्ति का प्रादुर्भाव बताते है और शक्ति से पुनः ब्रह्मानुभूति कराते हैं । वेदों से दिव्य ज्ञानका प्रादुर्भाव ऋषियों हुआ, यह ज्ञानयोग है । ऋषियों ने परमात्मा की अनन्त अपरिमित शक्ति को आत्मसात् किया, इन शक्तियों का वर्णन किया एवं उनको आत्मसात् करने कि प्रणालि और प्रक्रिया का नियोजन किया, परम प्रेमास्पद परमात्मा को पानेके लिए, योग-तंत्र-उपसना एवं कर्मकाण्ड की विधियों का निर्माण किया, यह भक्तियोग एवं इस मार्गपर उपासक प्रशस्त होकर तप-जप-पूजादि करे यहीं कर्मयोग ।

ज्ञान, उपासना एवं कर्म या ज्ञान - योग - भक्ति के द्वारा ही, ब्रह्मसाक्षात्कार संभव है । ये सभी के सभी परमात्मा प्राप्ति के साधन ही है । इन तीनों मार्गो के विषय में, संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है ।

कर्मकाण्डमें उपासना - प्रथम हम कर्म की बात कहेंगे । प्रधानतया कर्म पांच प्रकार के है । कर्म के प्रकार-विधि-फलादि कर्मकाण्डान्तर्गत है **। द्विविधः कर्मकांडः स्यान्निषेध**

विधिपूर्वकः। निषिद्धकर्मकरणे पापं भवति निश्चितम्। विधिना कर्मकरणे पुण्यं भवति निश्चितम् ॥ त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमित्यकाम्यतः। नित्येऽकृते किल्बिषं स्यात्काम्ये नैमित्तिके फलम् । कर्म - नित्य,नैमित्तिक और सकाम के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। नित्यकर्म अर्थात देव-पूजन, संध्या आदि । इसके न करने से पाप होता है । सकाम कर्मफल की इच्छा से किया जाता है और नैमित्तिक कर्म अर्थात पर्व काल में तीर्थ आदि के पुण्यजलों में स्नान दान आदि है, जिसके करने से पुण्य अर्जित होता है । **द्विविधं तु फलं ज्ञेयं स्वर्ग नरकमेव च** । दो प्रकार का फल माना जाता है - स्वर्ग और नरक । चौथा प्रायशित कर्म अपने पापों को क्षय करनेके लिए होते है और पांचवा निषिद्धकर्म जो कोई भी जीव समाज-राष्ट्र-विश्व को अहितकर होनेके कारण शास्त्र, उसे न करनेकी आज्ञा देता हैं । सारांश, द्विजो के लिए गायत्री जप, इष्टदेव का जप नित्यकर्म जैसा है । कभी पर्व या तिथि-ऋतु अनुसार विशेष जप-तप होते है - जैसे कि उपाकर्म के पूर्व विप्र को गायत्री का अनुष्ठान करना होता हैं । नवरात्री में घटस्थापन पूर्वक कुलाम्बा की जपोपासना, श्रावण में शिवोपासना इत्यादि जो है, भाद्रपद में पितृ तर्पण, मांगलिक प्रसंग में गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन, वृद्धिश्राद्धादि जो है वह नैमित्तक कर्म, एवं अनुष्ठान के पूर्व देह शुद्धि के लिए किया जाता है वह प्रायश्चित कर्म और हिंसा, असत्य भाषण, आस्तेय, निंदा क्रोधादि कर्म जो शास्त्र करनेकी अनुमति नहीं देता वे सब निषिद्ध कर्म माने जाते है ।

सामान्यरूप में हम अपने घर नित्य में जो झाडू-पोछा-बरतन की सफाई करते हैं, वह नित्य कर्म, दिपावली-होली आदि पर्वपर कुछ विशेष सफाई करते हैं, वो नैमित्तक कर्म है, घरमें कोई मांगलिक प्रसंग हो या कोई व्यक्ति विशेष का आगमन होनेवाला हो, जिससे अपनी स्वच्छता का प्रदर्शन होना हो, वह काम्यकर्म, आशौच निवृत्ति या ग्रहण के उपरान्त जो सफाई करते है, वह प्रायश्चित कर्म और पॉलिथिन बैग आदि को घरमें न रखना, कूडा घरमें नहीं रखना चाहिए - वह निषिद्ध कर्म है ।

पुराणमें उपासना - यहां भक्ति प्राधान्य है । ज्ञान जो है, वह बिना वैराग्य स्थिर नहीं रहता, यथा श्रीमद्भागवतानुसार भक्ति को ज्ञान और वैराग्य की जननी मानी हैं । योग भी कहता है - **ईश्वर प्रणीधानात्** । गीता में तो, भगवानने पूरे भक्तयोग की चर्चा करके भक्ति को योग बताया है । योग का सामान्य अर्थ होता है जोडना - जो जीव को ईश्वर से जोडती है वह, भक्ति भी योग है । भक्ति भी नौ प्रकार की है, जिसके द्वारा मन-वचन-कर्म से परमात्मा को समर्पित होने का भाव है । मन-वचन-कर्म की शुद्धि आध्यात्मिक मार्ग पर अनिवार्य है, जो नवधा भक्ति से सिद्ध होती है - **श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं (वाणी-वचन-भक्ति) पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं(व्यवहार-कर्म-भक्ति) दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् (मन-मानसिक भक्ति)** ॥ इन सभी प्रकार की भक्ति के आदर्श उदाहरण है - श्रवण (परीक्षित), कीर्तन (शुकदेव), स्मरण (प्रह्लाद), पादसेवन (लक्ष्मी),

अर्चन (पृथुराजा), वंदन (अक्रूर), दास्य (हनुमान), सख्य (अर्जुन) और आत्मनिवेदन (बलि राजा) - इन्हें नवधा भक्ति कहते हैं। भक्ति में द्वैतभाव रहता है, जिसे प्रेमसम्बन्ध से अद्वैत की तरफ ले जाने की चेष्टा होती है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः - व्यासभाष्यम् १४॥ - ज्ञान-वैराग्य की पुष्टि एवं स्थिरता के लिए भक्ति अनिवार्य है, इसका प्रतिपादन अनेक स्थान पर मिलता है। भक्ति की पुण्यभूमि पर ही ज्ञान वैराग्य अंकुरित होकर वटवृक्ष बन सकते है। शास्त्र का भी आदेश है कि - **वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते** ।। वेद, रामायण, पुराण और महाभारत आदि समस्त शास्त्रों के आदि, मध्य और अन्त में सर्वत्र हरि संकीर्तन करना चाहिए। अन्तःकरण में भक्ति न हो तो, सुषुप्ति-जडता आती है और वहां ज्ञान का कोई अर्थ नहीं रहता, ज्ञान टिकता नहीं। **जिस प्रकार अधिक समय से बन्ध कार नहीं चलती, तब उसे धक्के देकर चालू करना पडता है, फिर वह चलने लगती है। यथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूपी चार चक्रोवाली बन्ध गाडी को भक्ति से गतिवान बनाना पडता है**।

योग एवं ब्रह्मसूत्र में उपासना - **महर्षि पातंजलि ने अंतरंग व बहिरंग साधन** की बात योगसूत्र में कही है, जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग है और धारणा, ध्यान समाधि अन्तरंग है।

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्मसाक्षात्कार या ब्रह्मानुभूति के साधनों की चर्चा की गई हैं। ये साधन चार प्रकार के हैं - **परम्परासाधन, बहिरंगसाधन, अन्तरंगसाधन एवं साक्षात्साधन**।

१.परम्परा साधन - नित्य-नैमित्तक कर्म, देवपूजा, हवन, श्राद्ध, व्रतादि।

२.बहिरंग मे आता है श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन,

३.अंतरंग साधन मे साधन चतुष्टय की चर्चा है जैसे विवेक, वैराग्य, षड्सम्पत्ति(शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान इत्यादि) एवं मुमुक्षत्व।

४. साक्षात् साधन में महावाक्य - तत्त्वमसि, अहंब्रह्माऽस्मि, प्रज्ञानंब्रह्म, अयं आत्माब्रह्म की आत्मानुभूति - ब्रह्मात्मैक्यता की स्थिति। सारांश यह सब तपसाध्य ही है। तप के द्वारा ही प्राप्ति है यथा मूल में तप ही है।

तप का महत्व - श्रुति वचन भी है - **तपसा चीयते ब्रह्म। ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरतब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति - अथर्व.११.५.१७। तपसा शक्यते प्राप्तुं देवत्वमपि निश्चयात्। प्रजापतिरिदं सर्वं तपसै वा सृजत्प्रभः** ।। सर्वं वै तपसाभ्यैति तपो हि बलवत्तरं। तथैववेदानृषयस्तपसा

प्रतिपेदिरे - तत्त्ववैशारदीविभूषितव्यासभाष्योपेतम् – पातञ्जल योगसूत्रम् १/१४ । युगान्तेन्तर्हितान् वेदान्तिहासानमहर्षयः । लभिरेतपसापूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभूवा ॥ यज्ञेनवाचः पदवीयमापन् तामन्विविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम् - ऋग्वे १०.७१.३। स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः - व्यासभाष्यम् । दीर्घकालाऽऽसेवितो निरन्तराऽऽसेवितः सत्कारासेवितः तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च सम्पादितः । प्रजावतां । ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः ॥ ५६.६५ ॥ अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा । ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥ ५६.६६ ॥ श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा । कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्या देवपातनात् ॥ ५६.६७ - देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः। स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ५६.६८॥ वायुपुराणम् । तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया । संवत्सरं संवत्स्यथ । यथाकामं...। **तपसा चीयते ब्रह्म** ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात् प्राणो मनःसत्यं । यज्ञ वै श्रेष्ठतमं कर्म । **चित्तैकाग्र्यं परंतपः** । गीता में भी भगवान ने कहा है - **यज्ञानांजपयज्ञोऽस्मि** स्थावराणां हिमालय: - श्रीमद्भगवत्गीता १०.२५ । **तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम्** - केनोपनिषद् ४.८।

सारांश - **जपयज्ञो महेशानि मत्स्वरूपो न संशय:** । शिवजी कहते है - देवी जपयज्ञ मेरा स्वरूप ही है । हमने आगे देखा हैं कि, वेदो का प्रादुर्भाव ऋषियों ने तप के द्वारा किया हैं - यज्ञ एवं तप अति महिमावान् है **। श्रुत्यन्तरभावी यः शब्दोऽनुरणनात्मकः। स्वतो रञ्जयते श्रोतुश्चितं स स्वर उच्यते ।**। यथा श्रुतियों को लगातार उत्पन्न कराने से स्वर की उत्पत्ति होती है - **त्वंस्वाहा त्वंस्वधा ही वषट्कारःस्वरात्मिका** - स्वर जगदंबा का स्वरूप है । तप में देवता प्रतिष्ठित है, जपयज्ञ भगवान का ही स्वरूप है । वह सर्वदा अत्याज्य हैं, सर्वश्रेष्ठ कर्म है । चित्त की एकाग्रता ही तप है । देव-पितृ सब का मोदन तप से होता है । श्रीमद्भागवत में आता है कि ब्रह्माजी ने पूरे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी तप के द्वारा की है । ब्रह्मानुभूति के लिए तप आवश्यक हैं, चित्त की एकाग्रता भी तप के द्वारा सिद्ध होती हैं । पूरे ब्रह्ममाण्ड का सर्जन तप से हुआ है । वेदादि महाज्ञान का प्रागट्य भी तप से ही हुआ है, तप ही देवताओं का आयतन-आश्रय है । सब का आधार तप ही है । तप ही श्रेष्ठतम यज्ञ है । अन्नमनप्राणादि सब की उत्पत्ति का मूल तप में ही है । सभी पुराणों में, वैदिक वाङ्मय में तप की महिमा वर्णित है । तप ही सबका मूळ है, तप का सामान्यार्थ - कुछ पाने के लिए किया हुआ हठात्मक कर्म ।

जपयज्ञो न हिंसया । जपेन पापं शमयेदशेषं,यत्ततकृतं जन्मपरम्परासु। जपेन भोगान जयते च मृत्युं, जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम।।(लिंगपुराण पू भा अ ८५) अर्थात् जप में किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती है , जप करने से देवता प्रसन्न होते है जप से इस जन्म में और पिछले जन्म में किये पाप नष्ट हो जाते है जप से वांछित भोगो की प्राप्ति होती है जप से दीर्घायु सिद्धि और मुक्ति भी प्राप्त होती है ।

आगे चर्चा के पूर्व कुछ पाश्चात्य मतो का भी विचार करें जो प्रत्यक्ष एवं परोक्षतया जप-तप का समर्थन करते हैं -

द सिक्रेट बुक से ....इन सबका निर्देश ध्यान, मानसिक निश्चय-संकल्प, तपादि है ।

बॉब प्रॉक्टर - आपको अपनी हर मनमाही चीज मिल जाती है । हम सभी एक ही असीमित शक्ति से काम करते हैं । ब्रह्माण्ड के नैसर्गिक नियम इतने सचीक है कि हमे स्पेसशीप बनाने मे जरा भी मुश्किल नहीं आती है । आप भारत, ऑस्ट्रेलिया, न्युजीलैंड, स्टॉकहोम, लंदन, टोरंटो, मोन्ट्रियल, न्यूयॉर्क या चाहे जहां रहते हो, हम सभी एक ही शक्ति, एक ही नियम से काम कर रहे है । अगर आप अपने दिमाग मे कोई चीज देख सकें, तो वह आपके हाथ में आ जाएगी ।

चार्ल्स हानेल - मानसिक शक्तियों के कंपन ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ और सबसे शक्तिशाली होते है (१८६६-१९४९)।

जॉन असाराफ़ - हम जिस चीज को पाने का चुनाव करें, उसे पा सकते हैं । इसे कोई फर्क नहीं पडता है कि यह चीज कितनी बडी है ।

प्रेंटिस मलफोर्ड (१८३४-१८९१) - आपका हर विचार एक वास्तविक वस्तु - एक शक्ति है ।

इसी श्रृंखला में आगे बढते है - जपेनदेवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति । जपात्सिद्धि जपात्सिद्धि जपात्सिद्धिर्न संशयः - शाक्तानन्द तरंगिणी । जब तप की बात करेंगे, तो मन्त्र की बात आ ही जाती है । ॐकार के नाद से ही ब्रह्ममाण्डो की रचना हुई है । ॐकार का प्रारम्भ अकार से होता है, गीता में स्वयं भगवानने कहा है अक्षराणां अकारोऽस्मि । अकारः सर्ववर्णाग्रय - वर्णमाला का प्रथम अक्षर है, एवं प्रत्येक अक्षर स्वयं में मन्त्र है, जिसकी आगे हम चर्चा कर चूके है । जब तप-उपासना के मार्ग पर प्रशस्त होना हैं, इस विषय में कुछ विशेष बातें कर ले । आगे के विभाग में मन्त्र के विषय में पर्याप्त चर्चा कर ली हैं, मन्त्र एवं देवता में कोई भेद नहीं है, मन्त्र ही देवता है, शिव है, ब्रह्म है, ब्रह्माण्ड का आधार है, वह शक्ति भी है और शक्तिमान भी वो ही है । मन्त्र का जप ही तप है ।

मन्त्रजप का उद्देश्य - इस प्रकार जप-तप-यज्ञ का प्रधानाशय तो ब्रह्मानुभूति ही है । यह उत्तमस्थिति होती है कि, जहां साधक,साधन,साध्य सभी एकरूप हो जाते हो । **मन्त्र जपते जपते साधक स्वयं मन्त्राकार हो जाता है और मन्त्र देवता का स्वरूप है, यथा देवता के साथ तादात्म्य हो जाता है** । मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानांग्यानरूपिणी । **देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम् ।। मंत्रार्थदेवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदो मंत्रदेवयोः शान्तं** ।। मन्त्र स्वयं में देवता का ही स्वरूप हैं । मन्त्र (शब्दब्रह्म) की शक्ति भगवति पराम्बा वाक् है, एवं मन्त्र में अर्थरूपेण शिवजी

प्रतिष्ठित है । जप यज्ञ करते-करते एक समय ऐसा आता है, जहां वाच्य-वाचक, साध्य - साधक-साधन या ध्यान - ध्येय - ध्याता में एकरूपता आती है । यही तो समाधि का स्वरूप है । यहां संसार का लय - दुःखनिवृत्ति और परमशान्ति की अनुभूति होती है। इसलिए तो कहा है - **जपेनदेवतानित्यंस्तूयमानाप्रसिदति । जपात्सिद्धिजपात्सिद्धि जपात्सिद्धि न संशयः** - शाक्तानंद तरंगिणी।

वैसे तो, जप का उद्देश्य ईश्वरानुभूति ही प्रधानरूप से होना चाहिए, यद्यपि उसको सकाम कर्म का साधन भी बनाते है । प्रायः देखा गया है कि, जीवन में कुछ कर्म पूर्वकर्मो का फल देते है, जीवन में बाधाए-शोकादि की अनेक प्रयत्नो के उपरान्त भी शान्ति नहीं होती है । ऐसी बाधाए क्यों है, इसका समाधान आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र से सुदृढ हो जाता है । भूतज्वरे सेक इवातिवेगा धावन्ति नाड्यो हि यथाब्धिगामाः - तथा भूताभिषंगाच्च त्रिदोषवदुत्थिता । यद्यकस्मात्तथा नाडी न तदा मृत्युकारणम् ।। समांगा वहते नाडी तथा च न क्रमं गता । **अपमृत्युर्न रोगांगा नाडी तत्सन्नपातवते** - महर्षि कणाद । **त्रयो मलाः भूताभिषंगात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः** - माधवनिदान । शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः । तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं समः ५५ । निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्त्वभूतगुणेन्द्रियैः । चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यति हि क्रियाः ५६ । **जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । तच्छान्तिरौषधैर्दानै र्जपहोमार्चनादिभिः** ।। यथा शास्त्रं तु निर्णीतो यथा व्याधिर्चिकित्सित: । **न शमं याति यो व्याधि: स ज्ञेय: कर्मजं बुधै: ।। पुण्यैश्च भेषजै: शान्ता: ते ज्ञेया: कर्म दोषजै:** । विज्ञेया: दोषजास्त्वन्ये केवला वाऽथ संकरा:।। नहि कर्म महत्किंचित् फलं यस्य न भुञ्जते। क्रियाध्रा **कर्मजारोगा:** प्रशमंयान्ति तत्क्षयात् ।।

आयुर्वेद के हिसाब से कुछ व्याधि पूर्वकृत पाप कर्मो का परिपाक-फल है, जिसे **कर्मजव्याधि** या कर्मज रोग कहते है । मेरी स्मृति में स्पष्ट नहीं है, किन्तु रावण-सुषेण संवादमें भी **भूताभिषंग** का उल्लेख मैने कही पढा है । आजके शास्त्रज्ञान रहित मूर्ख वक्ता भले ही ज्योतिष, कर्मकाण्ड, वास्तु का विरोध करें, यह तो पुराणो एवं शास्त्रों में उनकी अल्पज्ञता का प्रदर्शन ही हैं, कितने पुराणों को, शास्त्रों को, वे गलत-मिथ्या साबित कर पाएंगे । क्या महर्षि कणाद, अंगिरा, अगत्स्य, परशुराम, जैमिनी, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, मनु, वेदव्यास, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, आचार्य तुलसीदासजी इत्यादि सब तो गलत नहीं हो सकते और निश्चितरूपेण सर्वत्र प्रक्षेपण भी नहीं हो सकता । कई पुराणों में वास्तु, ज्योतिष, कर्मकाण्ड के स्वतंत्र अध्याय है, जैसे कि अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण इत्यादि । अब ऐसे वक्ताओं के मत से तो, इन पुराणों के ये अध्याय भी निरर्थक हैं, निकाल देने चाहिए । अब निर्णय वाचकवर्ग को करना है कि, कौन मिथ्याभाषी है ? ज्योतिष-वास्तु-कर्मकाण्ड के सेंकडो पुष्टिकर प्रमाण हैं । **शास्त्रनिर्दिष्ट कर्मकाण्ड ब्रह्मानुभूति का प्रथम चरण है ।**

भूताभिषंग क्या है ? प्रायः देखा गया हैं कि, एक ही परिवार के दो संतानों को कोई वाईरल बिमारी लगती हैं । दोनों की चिकित्सा एक ही डॉक्टर के पास हो रही है । दोनों को एक ही जैसी ही सेवा मिल रही है, नियमित औषध सेवन भी कर रहे है, यद्यपि उनमें से एक का स्वास्थ्य अतिशीघ्र ही ठीक हो जाता हैं, दूसरे को अधिक समय लगता हैं, क्यों ? किसीको सामान्य ज्वर बिना औषध भी ठीक हो जाता है, तो किसीको वही ज्वर महारोग या मृत्यु का कारण बन जाता है । कितना भी निष्णात उपचारक क्यों न हो, सामान्यव्याधि कभी कभी असाध्य बनती है । इस दिशा में आयुर्वेद का चिन्तन अति महत्वका एवं पूर्ण तर्क संगत लगता है ।

आयुर्वेद इसे भूताभिषंग या कर्मजव्याधि का नाम देता है, **पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते** - जिनका भोग न हुआ हो, ऐसे अभोक्त कर्म प्रारब्ध बनते है और अगले जन्ममें फलदाता बनते है । गीतामें भी भगवान इसकी पुष्टि करते है - **शुचीनां श्रीमतां गेहे यागभ्रष्टोऽभिजायते** । श्रुतिमें भी इसका स्पष्ट वर्णन है - **कृषिकारो...क्षेत्रेबीजं..। कपूयचरणा कपूययोनिं श्वायोनिं, शूकरयोनिं वा** - छां.उप.प्र.प्रपाठक, **तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा** - बृहदारण्यक ५.१०.७ ।। **योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः स्थाणुमन्येऽनुसंयाति यथाकर्म यथाश्रुतं** - कठो.२.७, **सयथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति ।। तत्कर्म कुरूते ... पापाकारी पापोर्भवति पुण्यःपुण्येन भवति ।। पापः पापेन** - ब्रह्म.४.४.५ । **सति मूले जात्यायुर्भोगः** - योग ।

श्रुति, पुराण, तंत्र में ऐसे कई प्रमाण उपलब्ध है । सारांश यह है कि अगले जन्म में किए हुए पापाचरण प्रारब्ध बनकर, व्याधि बनकर पीडा देते है, कर्मका सिद्धान्त भी यही निर्देशन देता है । इनका शमन जप-होमादि से होता है । इस प्रकार जपतप का ब्रह्मानुभूति के उपरान्त शान्तिकर्म या काम्यप्रयोग किया जाता है ।

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । तच्छान्तिरौषधैर्दानै र्जपहोमार्चनादिभिः ।। यथा शास्त्रं तु निर्णीतो यथा व्यार्धि चिकित्सित: । न शमंयाति यो व्याधि: स ज्ञेय: कर्मजं बुधै:।। पुण्यैश्च भेषजै:शान्ता: ते ज्ञेया: कर्मदोषजै: । विज्ञेया: दोषजास्त्वन्ये केवला वाऽथ संकरा: ।। नहिकर्म महत्किंचित्फलं यस्य न भुञ्जते । क्रियाघ्ना कर्मजारोगा: प्रशमंयान्ति तत्क्षयात् ।। दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनं तु दैवतम् - विष्णुपुराण । ऐसे जो पाप कर्म व्याधिरूपेण पीडा देते है, उनका उपाय भी आयुर्वेद, पुराण आदि में अच्छे से बताया है । उनकी शान्ति के लिए देवाराधन, पूजा, होम, जप इत्यादि बताया है । गीताने भी इस बातका संकेत करते हुए कहा है - अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा **दैवं चैवात्र पञ्चमम्** -१८.१४।। इसमें (कर्मों की सिद्धि में) अधिष्ठान तथा कर्ता और अनेक प्रकार के करण एवम् विविध प्रकार की अलग-अलग

चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ कारण दैव (संस्कार) है, जो केवल जप-तप-पूजा-यज्ञादि से ही सिद्ध होता है । इस प्रकार काम्य कर्म (व्याध्यादि की शांति होती) है । चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ - गीता ७.१६। भगवान कहते है कि चार प्रकार के भक्त होते है, आर्त - जो आपत्तियों से त्रस्त होकर उपासना करता है, दुसरा कामनाओं की पूर्ति के लिए, तीसरा जानने की ईच्छा से और चौथा ज्ञानी है जो मात्र भगवद्प्राप्ति के लिए ही भगवान की पूजा करता है ।

वैसे भी मन्त्रों में अचिन्त्य शक्ति होती है । एक छोटी सी दवा की गोली व्याधि शमन के लिए पर्याप्त है । एक छोटा-सा जेक, महाकाय ट्रक को उठानेके लिए पर्याप्त है, वैसे ही मन्त्रों में बहोत शक्ति होती है । कामना से ही करे, उपासना व्यर्थ नहीं जाती, अन्य शरणागति से तो ईश्वर शरणागति श्रेष्ठ ही है । भय से भागकर या फलेच्छा से भी, यदि उपासना के मार्ग पर आते है तो कुछ गलत नहीं है । यहां सब कुछ प्राप्त करनेका सामर्थ्य है, मंत्रो के प्रभाव से ही कामनाओं का क्षय शनैः शनैः होता जाता हैं । वैसे भी **जब पर्वतारोहण करते है, कुछ सामान साथ में सुविधा के लिए रखते है, किन्तु, किन्तु ज्यों ज्यों उपर जाते है, यह सुख-सुविधा का सामान का भी वजन लगता है और धीरे-धीरे उसे हम छोड देते है** । काम्य कर्म, उपासना शनैःशनैः वासनाओं से उपर उठकर निष्काम की तरफ ही जाती हैं । मंत्रोपासना विधिवत् हो तो, कामनाओं का उपराम होता है ।

क्रमशः निष्कामोपासना में मात्र ईश्वर प्रीत्यर्थ ही भक्ति का प्रादुर्भाव होता है **। निष्काम भक्ति में उपासक ईश्वर का विशेष कृपापात्र भी बनता है** । उसकी प्रत्येक कामना का विचार स्वयं परमात्मा करता है, क्योंकि भक्ताधीन भगवान कहते है । सुरदासजी की लकडी स्वयं बालकृष्ण पकडते थे, भगवान चैतन्य महाप्रभु, नरसिंह, मीरा, तुलसी और कबीर जैसे भक्तो के पीछे-पीछे भागते है । **कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया सरीर। पीछे-पीछे हरि फिरै, कहत कबीर कबीर । हाथ छुड़ावत जात हो, निर्बल जान के मोहे हृदय में से जाओ तो सबल मानु मैं तोहे** । भक्ति की यह पराकाष्टा हैं, जहां साधना एवं साध्य दोनों ही भगवान हैं, इस अवस्था में भक्त भगवान के निकटतम होता है ।

एक सम्राट ने नगरजनो को एलान किया कि, कल के दिन मेरे राजमहल में से जिसे जो पसन्द आए, उसपर हाथ रखकर, ले जा सकते है । नगरजनों भीड लग गई, ईच्छित पदार्थ पाने के लिए । एक छोटा सा बालक भी वहां आया था उसने राजा का हाथ पकड लिया, स्वयं सम्राट को मांग लिया, सम्राट ने उसे राजकुमार बना दिया, वह समस्त राज्य का मालिक बन गया ।

उपासना में अवरोध - प्रायः सूना है कि, प्रयत्नों के उपरान्त भी उपासना में मन ही नहीं लगता । वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् । वि मे मनश्चरति दूर आधीःकिं स्विद्वक्ष्यामि किमु नु मनिष्ये - ऋग्.६.९.६। जब उपासक

उपासना करने बैठता है तो, उनकी इन्द्रिया विषयों में भागती है, कान शब्दों की ओर आंख रूप की ओर भागती है। मन इष्ट में टिकता नहीं, कैसे भजन करें।

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात्। अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् - अपरोक्षानुभूति १२७ ।। अर्थात् प्रायः देखा गया है कि जप-तप, उपासना करते हैं तब बलात् विघ्न आते है । भिन्न-भिन्न विचार, आलस्य, भोगलालसा की तरफ मन एवं इन्द्रियों का चलायमान होना स्वाभाविक होता है।

व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाह - यो.द.स.पा.३०। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आल्लास्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थितत्व ये नौ, चित्त के विक्षेप हैं, वे ही अंतराय अर्थात विघ्नरूप हैं। योगपथ पर चल रहे साधक को जो विघ्न पथभ्रष्ट करते हैं, वे यही नौ प्रकार के विघ्न हैं।

१.व्याधि: शरीर में किसिस प्रकार का रोग, इन्द्रियों में कमजोरी आ जाना तथाचित्त में भ्रम, उद्विग्नता आदि आ जाना व्याधि कहलाती है।

२. स्त्यान: कार्य करने में असमर्थ होने, अकर्मण्यता, कार्य में अनुत्साह, अथवा सामर्थ्य की कमी को स्त्यान कहते हैं।

३. संशय: योग विद्या की वस्तुस्थिति पर विश्वास ना होने तथा अपने प्रयत्न की सफलता पर आशंका करना संशयकहलाता है।

४. प्रमाद:सतर्कता के अभाव से साथ साधना करना, नियमित क्रम को अधुरा छोड़ देना और वह बिगड़ भी जाये, तो भी उसकी चिंता ना करना प्रमादकहलाता है।

५. आलस्य: तमोगुण के रहने पर शरीर का भरी रहना, कार्य में मन ना लग्न, सुस्ती बनी रहना, आलस्यकहलाता है।

६. अविरति : विषयासक्ति होने से मन का विषयों में ही लगे रहना तथा चित्त में वैराग्य का आभाव हो जाना अविरतिकहलाता है।

७. भ्रान्ति दर्शन : किसी कारणवश अध्यात्म के दर्शन और साधन पथ का वास्तविक ज्ञान ना हो पाना अथवा यह साधन उपयुक्त नहीं है , ऐसा भ्रामक ज्ञान भ्रान्ति दर्शननमक विघ्न कहलाता है।

८. अलब्धभूमिकत्व : निरंतरसाधना करनेपर भी साधक की स्थितिमें ना पहुँच पाना तथा मध्यमें ही मनके वेगका अवरुद्ध हो जाना,अलब्धभूमिकत्वकहते है।

९. अनवस्थितत्व : चित्त का एकाग्र अथवा स्थिर ना रह पाना , जिससे भूमिका तक ना पहुँच पाना और अस्थिरता के फलस्वरूप मनोभूमि का डाँवाडोल बने रहना अनवस्थितत्वकहलाता है।

कभी गूम हुई वस्तु नहीं मिलती, किन्तु साधना के दरम्यान उसकी स्मृति आ जाती है। अमेरिका में बसी मौसी ऐसे याद नहीं आती, किन्तु उपासना के दरम्यान उनसे बात करनेका मन होता है, अनेक संकल्प-विकल्प उठतें है। अनेक प्रकार के सुखों को भोगने को मन उत्कट होता है। ऐसे कई प्रकार के विघ्न होते हैं, जिसका वर्णन महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन के समाधिपाद (३१) में किया है।

कभी कभी सिद्धियां भी साधना में बाधक बन जाती है। जैसे कि किसी दर्शनीय स्थल पर जाते है, जहां सूर्यास्त के पूर्व ही पहोंचना होता है। मार्ग में अति सुन्दर वन-उपवन आते है, अति मनभावन पुष्प-फल है, मन लालच करके उसमें उलझ जाता है तो, गंतव्य तक नहीं पहोंच पाता, यदि फल-फूल का उपयोग भी करना हो, तब भी, गन्तव्य को केन्द्रस्थ रखके ही करें, फल-फूल के सेवन को प्राधान्य न दे। साध्य के प्रति सकारात्मक निरन्तर गति ही साध्यप्राप्ति का मार्ग सुगम बनाता है। कामनाओं में भटक जाने से साध्य छूट जाता है।

जप - उपासना में निष्ठा एवं निरन्तरता स्वयं ही विघ्न निवारण करती है। एक पाक फकीर पांच समय की नमाज अदा करता था, खुदा की बंदगी करता था। शैतन ने उसे तकलिफ देना बंद कर दिया क्योंकि अगर वह नादुरस्ति के कारण भी यदि नमाज नहीं पढ पाता तो, खुदा को उसकी चिन्ता होती थी। आज बंदगी क्यो नहीं सुनाई दी, और शैतान को भय रहता था कि, स्वयं खुदा उसकी चिन्ता करता था। किसी बलवान की दोस्ती से दुसरे गुंडे परेशान नहीं करते, उन्हे उस पहलवान का डर रहता है। दुसरी बात यह है कि निरन्तर - नियमबद्ध उपासना से आध्यात्मिक बल की वृद्धि होती है, उसमें वेग (वेलोसिटी), लय (रिधम) एवं सकारात्मक ऊर्जा(मिस्टीरियन फोर्स) आती है। धारणा से साध्य स्वयं समीप आने लगता है, जैसे जंगल में वृक्षपर लटका अजगर निरन्तर शिकार का चिन्तन करता है, उसे कहीं भागने की जरूरत नहीं होती शिकार स्वयं चलकर उसके पास आ जाता है।

विघ्ननिवारण के उपाय - गीतामें अभ्यास द्वारा श्रेयप्राप्ति की बात कही है। **अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय** - अभ्यास करने से कुछ भी अप्राप्य नहीं है। अभ्यास से सब संभव हो जाता है। सरकस में रब्बर की तरह शरीर के अंगो को, मरोडते देखा होगा, यह अभ्यास से ही सम्भव हो सकता है, किसी का श्रेष्ठ नृत्य, संगीत, लेखन, चित्रकाम, शिल्पादि निरन्तर-निष्ठायुक्त अभ्यास का ही परिणाम है।

उपासना में विघ्न तो आएंगे ही। **हम प्रातः कालमें चलना (**Morning Walk) **प्रारम्भ करते है, तब गली के कुत्ते भोंकते हुए पीछे भागते है, लेकिन उनकी एक सीमा है, उससे आगे नहीं आते। इसके उपरान्त भी यदि प्रयास नहीं छोडेंगे, तो एक समय ऐसा आएगा, कुत्ते आपके पीछे भौंकना या भागना बन्द कर देंगे, आपकी निष्ठा के आगे विघ्न**

परास्त हो जाएंगे और विषय रूपी श्वान, जो आपकी साधना में अवरोधक बनते है, वे आपको अवरोध करना बन्द कर देंगे । ट्रेडमील पर चलने के व्यायाम का सीधा लाभ यह है कि, आपके शरीर की चरबी (फेट-कैलेरी) कम हो जाती है, किडनी, न्यूरो सिस्टम्स, रूधिराभिसरण ठीक होता है, स्फूर्ति लगती है, वैसे ही मन का व्यायाम तप-उपासना है, मन के विकार-दोष, अहंकार स्वरूप चरबी जल जाती है, मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है । कभी कभी ऐसा लगने लगता है कि, उपासना का फल नहीं मिल रहा है, किन्तु आप श्रद्धा रक्खे, चलने पर गन्तव्य के समीप पहोंचते ही है, चाहे मन से चले या केवल श्रमसे, मार्ग कटता ही है और गंतव्य समीप आ ही जाता है ।

मानो कि हम, **एक टंकी से दुसरी टंकी में पानी भर रहे है, तो दूसरी टंकी में तुरन्त पानी नहीं आएगा । पहले पाईप में पानी भरेगा, यदि लाईन में कचरा हो तो प्रारम्भ में गंदा पानी भी आ सकता है । लेकिन पानी का प्रवाह चालू ही रहेगा तो, शुद्ध पानी नई टंकी में अवश्य आएगा** । कहनेका तात्पर्य स्पष्ट है कि, **पूर्वकृत पापजन्य विकारों के क्षय होते ही उपासना का परिणाम दिखने लगेगा । यथाम्रे फलार्थं निर्मिते छायागन्ध इत्नूपरद्यते एवं धर्मं चर्यमाणं अर्था अनुत्पद्यते** (आप.स्मृ.) - कुछ फल तो ऐसे भी मिलेंगे जो हमारी उपासना के ध्येय नहीं होते, जैसे कि आम का फल खाने के लिए पेड लगाते है तो, फल के साथ छाया, पक्षीयों का निवास भी बन ही जाएगा । श्वे.उपनिषद के अनुसार - **लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्, वर्णप्रसादम् स्वरसौष्ठवम् च । गन्धः शुभो मूत्र-पुरीषमल्पम्, योगप्रवृत्तिम् प्रथमाम् वदन्ति** । तप में प्रवृत्त होने वाले को आरम्भ में ही कुछ परिणाम मिलते हैं, जिनमें शामिल हैं - शरीर की गंध का शुभ होना, तथा मल-मूत्र का अल्प निर्माण । लघुता (शरीर का हल्का होना), आरोग्य (बीमारियों से मुक्ति), अलोलुपत्व (लोलुपता - लालच का न होना), वर्णप्रसाद (शरीर में कान्ति का होना), तथा स्वर-सौष्ठव (कण्ठ की मधुरता) - योगमार्ग में प्रवृत्त होने वालों को आरम्भ में ही यह लाभ मिल जाते हैं । प्रयास में सातत्य एवं निष्ठा होनी चाहिए ।

पर्याप्त प्रयत्न भी आवश्यक होते है, जैसे कि बडा बरतन गंदा हो तो थोडे पानी से साफ नहीं होता, उसके उपर ड्रोपर से बुंद-बुंद पानी गीराने से वह साफ नहीं होता । व्याधि में यदि वैद्य, औषध की जो मात्रा देते है, उसे पर्याप्त रूप में लेना ही पडता हैं, वैद्य के बताए पथ्यापथ्य का भी अनुसरण करना पडता है, अन्यथा व्याधि नहीं जाएगी । ठीक उसी प्रकार गुरू निर्दिष्ट या शास्त्रोक्त प्रमाण से ही उपासना के पथ पर प्रशस्त होकर ही उचित प्राप्ति होती है ।

शास्त्रोक्तविधि - विधान का महत्व - **न गच्छति विनापानं व्याधिरौषधशब्दतः। विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते । न तु पथ्यविहिनानां भेषजानां शतैरपि ।** पथये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः। पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः - आयुर्वेद ।

सारांश यह है कि **केवल औषध के नाम जान लेनेसे व्याधि दूर नहीं होता । उसका सेवन करना पडता हैं और इसके साथ निर्दिष्ट पथ्यापथ्य एवं आहार-विहार का भी अनुशीलन करना पडता है । व्याधि का उचित निदान भी होना आवश्यक है, औषध सेवन एवं पथ्यापथ्य का अनुशीलन से ही व्याधि निर्मूल होती है** ।इस प्रक्रिया से देह निरामय एवं स्वस्थ बना सकते है । गुरूपसदन, मन्त्रदीक्षा आदि के पश्चात् अनुष्ठान के मार्ग की प्रशस्ति का प्रथम चरण प्रायश्चित से प्रारम्भ होता है । आगे के विभाग में भी इस पर चर्चा हुई है ।

प्रायश्चित - प्रायश्चित का तात्पर्य है शुद्धि । संसार में हम सबसे कोई ना कोई पापकर्म तो हो ही जाते है, चाहे कितनी ही सावधानी क्यो न बर्ते । ये जो पापकर्म है वे ही हमारे उपासना मार्ग को अवरूद्ध करते है, जैसे विकृत आहार से स्वास्थ्य खराब होता है वैसे ही निषिद्ध व्यवहार से अन्तकरण क्लुषित होता है । अनुष्ठान के पूर्व, पापोंकी निवृत्ति आवश्यक होती हैं, क्योंकि वह इष्ट तादात्म्य में बाधक बनती है ।

जिस प्रकार व्यापारि बनकर व्यापारि परिषद में बैठ सकते है, किसान बनकर किसान संघठन में हिस्सेदार बनते है । राजनेता बनकर ही राजक्षेत्र में, कलाकार बनके कला के क्षेत्रमें आगे बढ सकते है । ठीक इसी प्रकार भक्त बनकर ही भगवान का सान्निध्य प्राप्त कर सकते है ।

प्रायश्चित विषये शास्त्रोक्ति इस प्रकार है - **प्रायश्चितविहीनानां महापातकिनां नृणाम् । नरकान्ते भवेज्जन्म चिन्हांकित शरीरिणाम् । धर्मकार्यंमहत्कर्तुं यदीच्छेद्दशभिर्दिनैः । प्रायश्चित्तं यथावित्तं प्राक्कार्यं तेन शुद्धये** ।। परशुराम - अघोरेण च मंत्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते - लिं.पु.२१.५४ ।। कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते । प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् - वि.पु.३.५०॥ प्रायश्चित्तं तु पापानां कलौ पादोदकं हरेः - पुलत्स्य ९.२६ ॥ अन्यत्र - प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने किं दानैः किमुपोषत्रैः ।चान्द्रायणैश्च तृर्थैश्च पृत्वा पादोदकं शुचि ॥ जन्मप्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं यदृच्छति । शालग्रामशिलावरि पापहारि निषेव्यताम् ॥ भक्ष्यं भोज्यं च यत्किञ्चिदनिवेद्याग्र भोक्तरि । न देयं पितृदेवेभ्यः प्रायश्चित्तृ यतो भवेत् ।। अनिवेद्यं तु भुञ्जानः प्रायश्चित्तृभवेन्नरः । तस्मात्सर्वं निवेद्यैव विष्ञोर्भुञ्जृत सर्वदा -ब्र.पु.९.३३९।। पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् । कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचंमृतसूतके -अत्रि ।

सारांश, शुद्धि होनी चाहिए । उपासना के पूर्व प्रायश्चि अनिवार्य है, जिसमें विष्ण स्मरण-पूजन को प्राधान्य दिया जाता है, क्योकि विष्णु को पापहा - पापो के नाश करनेवाले कहे है । इसके लिए चान्द्रायणादि व्रत करना होता है । पितृ, देव, अतिथि आदि का अनादर जैसे असंख्य पापों से मन पर मलीनता के आवरण आते है ।

शुद्धि पुनः दो प्रकार की है - **१. बाह्यशुद्धि (स्वच्छता), २. आन्तर्शुद्धि** । केवल बाह्य शुद्धि से काम नहीं बनेगा । **जैसे कि कोई पात्र बाहर से कितना भी शुद्ध कर लो, किन्तु अन्दर से शुद्ध नहीं होगा तो, उसमें भरा पदार्थ अशुद्ध ही रहेगा । विपरित यदि अन्दर से ही शुद्ध होगा तो भी काम नहीं चलेगा । जैसे लालटेन का काच मात्र अन्दर एवं बाहर दोनों तरफ से साफ होगा तो स्वच्छ प्रकाश बहार नहीं आएगा, दोनों तरफ से साफ होना चाहिए ।**

बाह्य शुद्धि (देहशुद्धि) होती है, दशविधि स्नान से । इसके अंतर्गत दशविधि (१०प्रकार के स्नान) जिसमें १. भस्म स्नान २. मृतिका स्नान, ३. गोमय (गाय का गोबर) स्नान ४. पंचगव्य स्नान ५.गोरज स्नान ६.धान्य स्नान ७. फल स्नान ८. सर्वोषधि स्नान (हल्दी इत्यादि) ९. कुशोदक स्नान (कुशा के जल से) १०. हिरण्य (स्वर्ण) ।आन्तरशुद्धि प्रायश्चित के लिए चान्द्रायणादि व्रत करते है, हेमाद्रि संकल्प करके गोदान भी करते है। पापमुक्ति के लिए दो उपाय है - तपमुक्ति एवं सद्यमुक्ति । तप द्वारा मुक्ति के लिए उपरोक्त व्रतादि करने से पाप भस्मीभूत हो जाते है । सद्यमुक्ति के लिए गोप्रदान वा तन्निष्क्रय द्रव्य का दान करना होता है, तात्पर्य यह है कि दान के लिए भी परिश्रम तो किया ही है । **जैसे कोई अपराध के लिए शिक्षा सहन करे या दण्डक द्वारा नियत दण्ड दे के तुरन्त मुक्त हो जाए । बिना टिकट की यात्रा की सजा ६ मास कैद है या ५०० रूपये या ट्रेन के प्रारम्भ से अन्त गंतव्य तकका टिकिट मूल्य देना होता है ।**

पंचशुद्धि - पंचपूजा - पंचमुक्ति - नित्योपासना में पंचशुद्धि का उल्लेख शास्त्रों में है । पंच शुद्धि - **आत्मशुद्धिः स्थान शुद्धिर्द्रव्यस्य शोधनस्तथा । मन्त्रशुद्धिर्देवशुद्धिः पंचशुद्धिरितीरिता ।। पंचशुद्धि विहीनेन यत्कृतं न च तत्कृतम्** - कालीतंत्र । आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, देवशुद्धि, मन्त्रशुद्धि एवं द्रव्यशुद्धि ये पांचो की शुद्धि के उपरान्त ही उपासना फलीभूत होती है ।

भूतशुद्धि प्राणायामाद्यखिल न्यासैरात्मशुद्धिः । मूलमंत्र मातृकापुटित क्रमोक्रमात् द्विरावृत्या जपेन मंत्रशुद्धिः । पूजाद्रव्याणांमास्त्रपूत सामान्यार्घ जल प्रोक्षणान धेनुमुद्रा प्रदर्शनेन द्रव्यशुद्धिः । इसको हम सादोहरण समझते है ।

मानो, किसी साधु को उपासना के लिए एकान्त स्थान चाहिए । वह स्थान की शोध में निकल जाता है । वन में एक सुन्दर मन्दिर दिखता है और वह उसे उचित स्थान मानकर वह मंदिरके समीप जाता है । समीप में एक जलाशय भी है, प्रांगण में कुछ फल-फूल के वृक्ष भी है । किन्तु, समीप जानेपर पता चलता है कि, यह तो निर्जन है और वहां बहोत कूडा पडा है । मन्दिर में भी शिवलिंग है, किन्तु वहां भी पक्षीयों के गोंसले है, शिवलिंग पर भी पक्षीयोंकी बीट पडी है । शीघ्र ही वह बहार का प्रांगण - मंदिर की सफाई करता है । फिर स्नानादि करके, जलाशय मे गीरे हुए पत्ते-फूल को हटाके शुद्धजल लेकर, मन्दिर

को धोता है । फल-पुष्पादि शुद्ध करके लाता है । चन्दन काष्ट को पत्थर पर गीसकर चन्दन तैयार करता है । शिवलिंग को साफ करता है । न्यासादि पूर्वक मन्त्र से विधिवत् पूजा करता है । यही पंचशुद्धि भी है और पंचपूजा भी । **मन्दिर एवं प्रांगण की सफाई स्थानशुद्धि है, स्नान, नित्यकर्म, प्राणायामादि (देह) आत्मशुद्धि है, शिवलिंग का क्षालन करके शुद्ध करना देव शुद्धि है, शुद्ध जल से फल-फूल को धोकर शुद्ध करना द्रव्यशुद्धि एवं न्यास-विनियोगादि, ऋष्यादि स्मरण पूर्वक मन्त्रो से देवताओं का ध्यान, पूजा, जपादि मन्त्रशुद्धि है ।**

यहां पंच शुद्धि के साथ पांच प्रकार की पूजा भी हो जाती है । जो निम्नानुसार है -
अभिगमनमुपादानं योगःस्वाध्यायएवच । इज्यापंचप्रकारार्चा क्रमेणकथयामि ते । १०।।
तत्वाभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम् । उपलेपं च निर्माल्यदूरीकरणमेव च । ११।।
उपादानंनाम गंध पुष्पादिचयनं तथा । योगोनामस्वदेवस्य स्वात्मनैवात्मभावना । १२।।
स्वाध्यायोनाममंत्रार्थानुसंधापूर्वको जपः। सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च हरेःसंकीर्त्तनं तथा । १३।।
तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्चस्वाध्यायःपरिकीर्तितः। इज्यानामस्वदेवस्यपूजनंचयथार्थतः। १४।
इतिपंचप्रकारार्चा कथितातवसुव्रते - पद्म पुराण अध्याय ७८ ।।
देवस्थान की सफाई, लिंपन, क्षालन, निर्माल्य को दूर करने को कहते है अभिगमन । पूजा के लिए सुन्दर फल-फूलादि एकत्रित करने को कहते है उपादान । देवता का ध्यान, न्यासादिक को कहते है योग । भगवान के सन्मुख मंन्त्रजप, स्तोत्र-स्तुत्यादि को कहते है स्वाध्याय । श्रद्धाभाव से विधिवत् भगवान का पूजन को कहते है इज्या ।

सार्ष्टिसामीप्य सालोक्य सारूप्यैकत्वमप्युत । दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।
भागवत.३.२९.१३।। उपरोक्तानुसार पूजा करनेसे पांच प्रकार का देव तादात्म्य शनैःशनैः सिद्ध होता है - १. सालोक्य: सालोक्य का अर्थ है भौतिक मुक्ति के बाद उस लोक को जाना जहां भगवान् निवास करते हैं । २. सामीप्य: सामीप्य का अर्थ है भगवान् का पार्षद-सेवक बनना । ३. सारुप्य: सारुप्य का अर्थ है, भगवान् जैसा स्वरूप-तेज प्राप्त करना । ४. सार्ष्टि: सार्ष्टि का अर्थ है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना । ५. सायुज्य: सायुज्य का अर्थ है भगवान् के ब्रह्मतेज या ब्रह्मज्योति में समा जाना ।

उपासना के अंग - अब आगे उपासना के अंग जैसे कि स्नानादि नित्यकर्म, आसन, वस्त्र, माला, आचमन, प्राणायाम, अजपाजप, विनियोग, गुरूपूजन, भुशिद्धि, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका, अन्तर्याग, मातृकान्यास, मन्त्र के अर्थ, आहारविहारादि नियमों की सविस्तर चर्चा करेंगे । उनकी शास्त्र एवं तर्कसंगत चर्चा से उपासना भावप्रधान बनेगी । शास्त्रोक्त विधि-विधान से की हुई उपासना सांगोपांग मानी जाती है, जो शीघ्र एवं उत्तम फलदायी होती है । उपासना में बहोत सारे नियम हैं, यद्यपि स्वास्थ्य, समय एवं संजोगानुसार निष्ठापूर्वक जितना अनुशीलन हो सके,

अच्छा ही है। यद्यपि किसी भी उपासना के पूर्व वर्णाश्रमोचित नित्य कर्म का प्राधान्य को नहीं भूलना चाहिए - कारिका यह है कि ब्राह्मेमुहूर्ते यथाविधि स्नात्वा.. । द्विजों के लिए शास्त्रोक्त षड्कर्म अनिवार्य है - **सन्ध्यास्नानंजपोहोमः स्वाध्यायोदेवतार्चनम् । वैश्वदेवं तथातिथ्यमुद्धृतं चापि शक्तितः** - पराशरस्मृति १३९। पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् । मातापितागुरूणां च संविभागोयथार्हतः (दक्षस्मृति), सन्ध्या, स्नान, जप, होम, स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ), वैश्वदेव (बलि), आतिथ्य, माता-पिता-गुरू-पुरोहितादि को वन्दन इत्यादि । अब हम प्रत्येक अंग की यथावकाश चर्चा करेंगे ।

समय एवं स्नान - आजकल प्रायः देखा है कि, बडे शहरों में, दिन के समय में वाहनव्यवहार की व्यस्तता को ध्यानमें रखते हुए, रात्री के समय सफाई कार्य होता है । प्रातः काल गार्बेज वान आकर एकत्रित किया हुआ कूडा उठा ले जाती हैं । यह एकत्रित किए हुए कूडे में बैठकर कोई चाय - पानी - नास्ता नहीं करता ।

ठीक परमात्माने हमारे शरीर में भी ऐसी ही व्यवस्था की है । दिवस दरम्यान इन्द्रिय व्यापार एवं ऐहिक प्रवृत्ति या इतनी होती हैं कि, शरीर के आन्तरिक मलों की निवृत्ति ठीक से नहीं हो सकती । हमारे शरीर के आन्तरिक भागो से, प्रयत्नो से भी, मल निकालना दुष्कर होता है । यथा रात्री के सुषुप्तिकाल में, जब सभी इन्द्रिया अपने कार्यकलाप को त्यागकर विश्राम करती है, तब हमारा उत्सर्जनतंत्र मलोपहार का कार्य प्रारम्भ कर देता है । निद्रा के दरम्यान सभी आन्तरिक मल शरीर के अग्रभाग में आ जाते है । आन्त्र (आन्तरडों) का मल मलद्वार पर आ के खडा हो जाता है । रक्तशुद्धि व रूधिराभिसरण का मल किडनी द्वारा मूत्राशय में आ जाता है । श्वसन व अन्ननलिका का मल मुख मे टोक्षिक के रूपमें आकर खडा हो जाता है । नेत्र-दर्शन का मल जलरूप में आंखो के कौनों पर आ जाता है, इसी प्रकार कर्णनासिकादि में मल निष्कास के लिए तैयार हो जाता है । शरीर के प्रत्येक रोमछिद्रों पर दुर्गंधयुक्त वायु या प्रस्वेद के रूपमें मल आ जाता है, जिसे शौच, दन्तधावन, स्नानादिक क्रिया द्वारा दूर किया जाता है । किन्तु आजका शिक्षितवर्ग बेडटी या बिना स्नान ही नास्ता करता है । कूडे पर बैठकर खानेवालों को आप शिक्षित या सुधारावादी कैसे मान सकते हो ? यथा निद्रा का अति महत्त्व है, निद्रा शान्तिप्रदा है, उसे **निद्रारूपेण** संस्थिता देवी का रूप माना है ।

उत्तम काल ब्राह्ममूहुरते माना जाता है । प्रात: ४ से ५.३० बजे का समय ब्रह्म मुहूर्त कहा गया है । **ब्रह्ममुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी** - ब्रह्ममुहूर्त की निद्रा पुण्य का नाश करने वाली होती है।

वेदों में भी ब्रह्म मुहूर्त में उठने का महत्व और उससे होने वाले लाभ का उल्लेख किया गया है। **प्रातारत्नं प्रातरिष्वा दधाति तं चिकित्वा प्रतिगृह्यनिधत्तो। तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचेत सुवीरः॥** - ऋग्वेद-१.१२५.१॥, **यद्य सूर उदितोऽनागा**

मित्रोऽर्यमा। सुवाति सविता भगः॥ - सामवेद-३५, **उद्यन्त्सूर्यं इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे** ।। अथर्ववेद- ७.१६.२, अर्थात् - सुबह सूर्य उदय होने से पहले उठने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इसीलिए बुद्धिमान लोग इस समय को व्यर्थ नहीं गंवाते। सुबह जल्दी उठने वाला व्यक्ति स्वस्थ, सुखी, ताकतवाला और दीर्घायु होता है। व्यक्ति को सुबह सूर्योदय से पहले शौच व स्नान कर लेना चाहिए । इसके बाद भगवान की पूजा-अर्चना करना चाहिए। इस समय की शुद्ध व निर्मल हवा से स्वास्थ्य और संपत्ति की वृद्धि होती है । सूर्योदय के उपरान्त भी जो नहीं जागते, वे निस्तेज हो जाते है ।

स्नानका मात्र धार्मिक महत्व ही नहीं हैं - प्रथम तो निरामय-स्वास्थ्य की वह प्रथम आवश्यकता है, अर्वाचीन विज्ञान भी इसकी पुष्टि करता है, रोग निवृत्ति की यह पूर्व शरत है । हम आयुर्वेद से प्रारम्भ करते है - **निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम् । हृद्यमलहरं श्रेष्ठ सर्वेन्दियविशोधनम् ।। तन्द्रापाप्मोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम् । रक्तप्रसादनन्यापि स्नानमग्रेश्व दीपनम्** - अ.हृ व चरक।। स्नान के गुण.. स्नान निद्रा, दाह और श्रम (थकावट) को दूर करता है, शरीर के पसिने, खुजली और तृषा (प्यास) को मिटाता है, हृदय के लिये हितकर तथा मलनाशक है, स्नान करने से शरीर की सभी (ग्यारह) इन्द्रियों की शुध्दि हो जाती है, स्नान से तन्द्रा (झपकी आना) और बुरे विचार नष्ट होते हैं, शरीर की तुष्टि होती है तथा स्नान से पुंस्त्व (पुरुष शक्ति) की वृद्धि होती है, स्नान अशद्ध रक्त को शुद्ध करता है और पाचकाग्नि का दीपक है । तन एवं मन के मल को दूर करने कि प्राथमिक विधि को स्नान कहते है । स्नान के काल के हिसाब से स्नान को उत्तम-निम्न-कनिष्ट के प्रकारों में विभाजित किया है ।

देव स्नान - आज के समय में अधिकांश लोग सूर्योदय के बाद ही स्नान करते हैं । जो लोग ठीक सूर्योदय के पूर्व किसी नदीं में स्नान करते हैं या घर पर ही विभिन्न नदियों के नामों का जप करते, विभिन्न मंत्रों का जप करते हुए स्नान करते हैं तो उस स्नान को देव स्नान कहा जाता है।

ब्रह्म स्नान - ब्रह्ममुहूर्त में यानी सुबह लगभग ४-५ बजे जो स्नान भगवान का चिंतन करते हुए किया जाता है, उसे ब्रह्म स्नान कहते हैं ऐसा स्नान करने वाले व्यक्ति को इष्टदेव की विशेष कृपा प्राप्त होती है और जीवन के दुखों से मुक्ति मिलती है।

ऋषि स्नान - यदि कोई व्यक्ति सुबह-सुबह, जब आकाश में तारे दिखाई दे रहे हों और उस समय स्नान करें तो उस स्नान को ऋषि स्नान कहा जाता है। सूर्योदय से पूर्व किए जाने वाले स्नान को मानव स्नान भी कहा जाता है। सूर्योदय से पूर्व किये जाने वाले स्नान ही श्रेष्ठ होते हैं ।

दानव स्नान - आज के समय में काफी लोग सूर्योदय के बाद और चाय-नाश्ता करने के बाद स्नान करते हैं, ऐसे स्नान को दानव स्नान कहा जाता है। आजकल युवा वर्ग स्वयं को

भले ही सुशिक्षित-सुधारावादि मानते है, किन्तु उनका ज्ञान अर्धघटवत् ही है, प्रायः वे दानव स्नान ही करते है ।

शास्त्रों के अनुसार हमें ब्रह्म स्नान, देव स्नान या ऋषि स्नान करना चाहिए । यही सर्वश्रेष्ठ स्नान हैं । स्नान की विधि भी शास्त्रों वर्णित है - तीर्थादि का स्मरण करके, भगवान वरूण की प्रार्थना करके ही ब्राह्म मूहूर्त में स्नान करना चाहिए । परिशिष्ट में उसका पूर्ण विधान है ।

स्थान, आसन एवं वस्त्र - यज्ञादि के पूर्व भूमि शोधन एवं पूजन होता है । जहां उपासना - जपयज्ञ होना है, वहां भी शोधन-शुद्धिकरण का विचार करना होता है । वैसे भी धरती को हम माता कहते हैं, माता का पूजन अग्रीम होना चाहिए, यथा कर्मारम्भे भूशुद्ध्यादि करके आसन वंदन करते है । जहां हम यन्त्र या देवता का स्थापन करते है वहां उत्तम आसन बिछाते है, तो हमारा मुलाधार चक्र जहां आसीन होना हो, वहां भी आसन का विचार तो करना ही होगा ।

स्थान - स्थान का अपना महत्व होता है । **किसी क्लब या मंदिर के लिए, भिन्न प्रकार का सिमेन्ट, मिट्टी, ईंटे नहीं होती । एक ही प्रकार के सिमेन्ट - ईंटो से घर बनते है, मंदिर बनते है, क्लब, होटल बनते है, यद्यपि सभी स्थानों में अपनी मनोस्थिति एक सी नही होती । स्थान का अपना प्रभाव अवश्य होता है** ।

पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्। तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम्॥
हड्डियों की गुहा - हमारे शरीर में दोनों छातियां मानो दो पहाड, इसमें हृदयरूपी गुहा, नदी संगम - हमारे शरीर में तीन प्रमुख नाडीयां है इडा-पिंङ्गला और सुषुम्णा जिसे गंगा यमुना सरस्वति भी कहते है, इन तीनो का संगम हमारे आज्ञा चक्रमें हैं योग के हिसाब से वहां ध्यान लगाकर बैठना सर्वोच्च माना है । अन्य निम्नानुसार है -

उद्यानानि विक्तानि विल्वमूलं तटं गिरेः। तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम्॥
अश्वत्थामलकीमूलं गोशालाजलमध्यतः। देवतायतनं कूलं समुद्रय निजं गृहम्॥
साधनेषु प्रशस्तानि स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम्। अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति॥
गृहे शतगुणं विद्याद्गोष्ठे लक्षगुणं भवेत्। कोटिर्देवालये पुण्यमनन्तं शिवसन्निधौ॥
म्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कातङ्कविवर्जिते। एकान्तपावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते॥
सुदेशे धर्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे। रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेत् तापसः प्रिये!॥
गुरूणां सन्निधाने च चित्तैकाग्रस्थले तथा। एषामन्यतमस्थानमश्रित्य जपमाचरेत्॥
संमोहन तंत्रे - आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिःसुतलं छन्दः । कूर्मोदेवता आसनाभिमन्त्रेणविनियोगः - ५.२१॥ पृथ्वीत्वयादि मंत्र से आसन शुद्धि करते हैं ।

आसन - शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः - गीता ६.११। किसी भी कार्य में सानुकूलता का आधार आसन होता है । किसी भी कर्म का साफल्य उनके आसन-आधार पर ही होता है । **एक पायलोट को विमान उड्डयन के लिए खास प्रकार की सीट होती है, हैवी अर्थमुवर के चालक-ड्राईवर की सीट अलग प्रकार की होती है । किसी टेक्निशियन को कार्य करनेकी बैठक व्यवस्था, किसी मेनजर की बैठक, रिशेप्शनीस्ट की बैठक का प्रकार भिन्न-भिन्न होता है । संगीतकार की, वाद्य-वादक की बैठक भी कुछ खास प्रकार की होती है । यथा आसन का भी अपना महत्व है** । आसन एवं पूजा वस्त्र विषये शास्त्रमत निम्नानुसार है -

आसनंतद्विजानीयादितरत्सुखनाशनम् । चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैवभावनात् । अपरो.
कुशदुर्वासनेदेविह्यासने शुभ्रकम्बले।उपविश्यततोदेवि जपेदेकाग्रमानसः ।।
शुक्ल सर्वत्र वै प्रोक्तं वश्ये रक्तासनं प्रिये । पद्मासने जपेन्नित्यं शान्तिवश्यकरं परम् ।।
वस्त्रासने च दारिद्र्य पाषाणेरोगसंभवे । मेदन्या दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्कलम् ।।
कृष्णाजिनेज्ञानसिद्धिःमोक्षश्रीव्याघ्रचर्मणि । कुशासनेज्ञानसिद्धिःसर्वसिद्धिस्तुकम्बले ।।
आग्नेय्यां कर्षणंतैव वायव्यांशत्रुनाशनम् । नैऋत्यां दर्शनं चैव ईशान्यां ज्ञानमेव च ।।
उदंमुखःशान्तिजाप्ये वश्ये पूप्वमुखतथा । याम्ये तु मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ।।
इति स्कान्दोक्त उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरूगीतायां द्वितीयोध्याय ।

जिस आसन में बैठकर आप उपासना करते हैं, उसमें आपकी मानसिकता एवं शारीरिक ऊर्जा तरंगों की विशेष गति तथा विशेष दिशा और निर्दिष्ट होती है । जबकि जिस पर आप बैठे हैं, वह उन ऊर्जा तरंगों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति का एक ठोस आधार देता है । उस ऊर्जा के क्रिया-प्रतिक्रिया की संभावित क्षति के प्रतिशत में कमी लाता है और उसे पूरी तरह से रोकता है । ब्रह्माण्ड पुराण के तंत्र सार में विविध आसनों की फलश्रुति बताई गई है। खुली जमीन पर कष्ट एवं अडचने, लकडी का आसन दुर्भाग्यपूर्ण, बांस की चटाई का आसन दरिद्रतापूर्ण, पत्थर का आसन व्याधियुक्त, घास-फूस के आसन से यश-हानि, पल्लव (पत्तों) का आसन बुद्धिभ्रंश करनेवाला तथा एकहरे झिलमिल वस्त्र का आसन जप-तप-ध्यान की हानि करनेवाला तथा एकहरे माध्यम से विद्युत्संक्रमण शीघ्र होता है लेकिन लकडी, चीनी मिट्टी या कुश आदि वस्तुओं में विद्युत्संक्रमण नहीं होता। पहले प्रकार के पदार्थ संक्रामक तथा दूसरे प्रकार के पदार्थ असंक्रामक होते हैं। विद्युत प्रवाह के संक्रामक और असंक्रामक तत्वों के आधार पर प्राचीन ऋषि-मुनियों ने आसन के लिए विविध वस्तुओं की योजना बनाई है ।

गाय के गोबर से लिपी-पुती जमीन, कुशासन, मृगाजिन, व्याघ्राजिन एवं ऊनी कपडा आदि वस्तुएं असंक्रामक होती है। यदि ऐसे आसन पर बैठकर नित्य कर्म, संध्या या साधना की जाए तो पृथ्वी के अंतर्गत विद्युत प्रवाह शरीर पर कोई अनिष्ट प्रभाव नहीं डालता । इसमें मृगाजिन,व्याघ्राजिन एवं सिंहाजिन उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने जाते हैं। इस

विषय में यजुर्वेद कहता है - कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनि: । अर्थात् काले मृग का चर्म सभी पुण्यों का जनक है । मृग चर्म का एक चमत्कारी गुण यह भी है कि यह पार्थिव विद्युत प्रवाह से हमारी रक्षा करता है । साथ ही उसके अंगीकृत विशिष्ट ऊर्जा प्रवाह के कारण सत्व गुणों का विकास होता है । शरीर में स्थित तमोगुणी वृत्ति का अपने आप नाश हो जाता है । आयुर्वेद कहता है - मृगाजिन पर बैठने वाले मनुष्य को बवासीर तथा भगंदर आदि रोगों का कष्ट नहीं होता। जिस तरह मृगाजिन से सात्विक ऊर्जा की प्राप्त होती है, उसी तरह व्याघ्राजिन एवं सिंहाजिन से राजस ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके अलावा बाघ और शेर के चर्म के आसपास मच्छर, बिच्छू तथा सर्प आदि जहरीले प्राणी नहीं फटकते । परंतु ये आसन शरीर में अतिरिक्त उष्णता उत्पन्न करते हैं। इन सभी बातों का विचार करने के बाद ही अपने लिए आसन का चुनाव करें। यदि दीर्घ काल तक साधना करनी हो तो उपर्युक्त में से कोई आसन लेना जरूरी है। उसके दोष निवारण के लिए ऊनी वस्त्र डाल लें । यहां यह जान लेना भी आवश्यक है कि चर्मासन प्राप्त के लिए हरिण आदि का शिकार न करे। सहज मृत्यु के बाद प्राप्त चर्म से बना आसन ही साधक के लिए उपयोगी सिद्ध होता है । योगशास्त्र में भी आसन को अष्टांगयोग का एक अंग माना है ।

यदि चर्मासन उपलब्ध न हो तो दर्भासन का उपयोग करें । आसन के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा एक विशेष मुद्दा भी ध्यान में रखें - साधना करते समय शरीर में उत्पन्न होने वाली अतिरिक्त ऊर्जा और उष्णता का बाहर निकलना भी आवश्यक है । इसके अतिरिक्त पृथ्वी की उष्णता एवं ऊर्जा को, अपने शरीर में संक्रमित नहीं होने देना चाहिए । दोनों कार्य सफल हों, इस दृष्टि से वैसा आसन उपयोग में लाना चाहिए । आसन के तौर पर लकडी का उपयोग करना फायदेमंद नहीं है । लकडी मंद संक्रामक है । लकडी के आसन पर बैठकर पुरश्चरण करने वाले साधक को ग्लानि आती है - यह अनुभव की बात है । ऊनी आसन पृथ्वी की आंतरिक ऊष्णता एवं ऊर्जा के लिए अहितकर न होकर शरीर की अतिरिक्त ऊर्जा तथा ऊष्णता बाहर निकालने में सहायक होता है। आसन चुनते समय यह ध्यान रहे कि उस पर बैठने से हमारे शरीर को कष्ट न हो और जमीन के ठंडे स्पर्श के कारण पैरों में सूजन न आए।

वस्त्र - वस्त्र मात्र लज्जा निवृत्ति के लिए ही नहीं है, उपासना में उसका महत्व है । मिलियरी में, महाविद्यालयो में, महाकाय कम्पनी-ऑर्गेनाझेशन्स में, पोलिस में पिरधान प्रणाली एवं वस्त्रो के रंग - ड्रेसकोड का महत्व है । **सभी धर्मो एवं सम्प्रदायों में वस्त्र परिधान का अगल ही महत्व है । जैन, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई अपने अपने सम्प्रदायों में बताए हुए वस्त्र परिधान करके ही उपासना करते है । मात्र सनातन धर्मीयों को छूट चाहिए** - वे पेन्ट शर्ट पहनकर, सिए हुए वस्त्र पहनकर मंदिर में चले जाते है । दक्षिण भारत मे वैदिक संस्कार आज भी विद्यमान है । प्रायः उत्तर एवं मध्यभारत संस्कृति विहीन होता जा रहा है । शास्त्रमत से देखे - सदोपवितानाभाव्य सदाबद्ध शिखेन च ।

नित्य उपनयन धारण करनी चाहिए, शिखा बन्ध होनी चाहिए । **जप होमोपवासेषु धौतवस्त्र धरो भवेत् । अलंकृतः शुचिर्मोनी श्रद्धावान् विजितेन्द्रियः** । जप, होम और उपवास में धुले हुए वस्त्र धारण करने चाहिए । स्वच्छ, मौन, श्रद्धावान और इन्द्रियों को जीत कर रहना चाहिए ।

स्नात्वैव वाससी धौते अक्लिन्ने परिधापयेत् । अभावे धौतवस्त्रस्य पट्टक्षौमादिकानि च ।। अकच्छस्य द्विकच्छस्य अशिखोशिखवर्जितः । पाककर्ता हव्यग्राही षडैते ब्राह्मणाधमाः ।। पूजा, भोजन आदि के समय धोती अवश्य बांधनी चाहिए । धोती लुंगी की तरह नहीं बाँधना चाहिए, कच्छ (लांग) लगा कर (धोती बांधने का जो वास्तविक रीत है) बांधना चाहिए । बिना लांग बांधे पूजा आदि नहीं करना चाहिए ।

न कुर्यात् सन्धितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप । न दग्धं न च वै छिन्नं पारक्यं न तु धारयेत् ।। सिले हुए, फटे हुए, जले हुए, दुसरो का (पारक्यका अर्थ विदेशीके लिये भी किया है), विदेशी वस्त्र पहन कर देवकर्म नहीं करना चाहिए ।

वस्त्र फट गया हो, वस्त्र को सुई से जोड़ दिया गया हो, मूषक द्वारा कुत्रा गया हो, धोबी के यहा से धूल कर आया गया हो, ये सभी वस्त्र देव वह पितृ कार्य दोनों में वर्जित है ।
अधौतंकारुधौतं वा परेद्युधौतमेव वा । काषायंमलिनंवस्त्रं कौपीनं च परित्यजेत् ॥
धौताधौतं तथा दग्धं सन्धितं रजकाहृतम् । शुक्रमूत्ररक्तलिप्तं तथापि परमं शुचि ॥
काकविष्ठासमं ह्युक्तमविधौतं च यद्भवेत् । रजकादाहृतं यच्च न तद्वस्त्रं भवेच्छुचि ॥
कीटस्पृष्टं तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन कारितम् । मूत्रं वा मैथुनं वापि तद्वस्त्रं परिवर्जयेत् ॥
धारयेद्वाससी शुद्धे परिधानोत्तरीयके । अच्छिन्नसुदशे शुक्ले आचामेत्पीठसंस्थितः ॥
जपहोमोपचारेषु धौतवस्त्रपरो भवेत् । अलंकृतःशुचिर्मौनी श्राद्धादौविजितेन्द्रियः - वशिष्ठ । एकवस्त्रातु या नारी मुक्तकेशाव्यवस्थिता । नसाधिकारिणीज्ञेया श्रौतेस्मार्ते च कर्मणि - वि.पा.।। नजीर्णमलवद्वासा भवेच्चविभवे सति - मनु । स्वयंधौतेनकर्तव्या क्रिया धर्मम्याविपश्चिता । नतुमेजकदैतेन नाहतेन न कुत्रचित् - देवलः। नस्यूतेन नदग्धेन पारक्योण विशेषतः । मूषकोत्कीर्णजीर्णेन कर्मकुर्याद्विचक्षणः - महाभा.। ईषद्धौतंनवश्वेतं सदशंयन्नधारितं । अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनं ।।

जो वस्त्र धोया गया हो, नवीन, सफेद, दशा युक्त हो तथा जो पहले न पहना गया हो, उसे अहत जानना चाहिये । वह कर्मो में पवित्र है । इसके आलावा पूजा एवं दैनिक वस्त्र धारण में अधो और उर्ध्व धारण किये जाने वाले वस्त्रों को पहनना वर्जित किया है । सिली सिलाई धोती ,पायजामा,पेंट, नीकर,आदि पैरों से ऊपर चढ़ा कर पहने जाते हैं। साथ ही ग्रंथि युक्त वस्त्र भी नहीं होना चाहिए । धोती के नाड़े में गठान रहेगी । कुर्ता, बनियान, कमीज , टी शर्ट ,उर्ध्व धारण वस्त्र हैं । इसलिए ये भी पूजा आदि में नहीं पहने जा सकते । बगल बंडी, बुशर्ट ,ओपनशर्ट, कोट, जाकेट,ये उर्ध्व धारण वस्त्र नहीं है अतः पूजा में पहनें जा सकते हैं । टोपी से पगड़ी भी इसी कारण से श्रेष्ठ मानी गयी है।

आचमन एवं प्राणायाम - सामान्यतया पूजोपासना के पूर्व आचम्यप्राणायाम्य कहते है । हमारे पास तीन शरीर है १ स्थूलशरीर (पंचभौतिक), २ सूक्ष्मशरीर (इन्द्रियजन्य) एवं ३ कारणशरीर (पूर्ववासनामय) । इन तीनों शरीरों की शुद्ध आचमन से होती है । जल को जीनव कहते है । उसमें दिव्य चेतना-स्फुरणा होती है, इसलिए तो बेशुद्ध या अर्धचेतन व्यक्ति के उपर जल डालते है । **अद्भिर्गात्राणिशुद्धयन्ति मनःसत्येनशुद्धयति । विद्यातपोभ्यांभूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति** - मनुस्मृति ५.१०९ । शरीर के अंग जल से शुद्ध होते हैं और मन सत्य से शुद्ध होता है । विद्या और तप से आत्मा की शुद्धि होती है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है । सामान्य आचमन में हम **ॐ केशवायनमः स्वाहा । ॐ नारायणायनमः स्वाहा । ॐ माधवायनमः स्वाहा । ॐ गोविन्दायनमेति हस्तं प्रक्षाल्य** बोलते है । किन्तु मन्त्र पुरश्चरण मे इष्ट मन्त्र के चार या तीन भाग करके या तो पूरे मन्त्र से आचमन करते है, जैसे कि ॐ नमःशिवाय का अनुष्ठान करते है तो ॐ आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, नमः विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, शिवाय शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ॐ नमःशिवायेति सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा । महापूजा या समयार्चना के अन्त में पूजा शेष जल से पुनः **तत्वाचमन** करते है, जिसका उद्देश्य तीन प्रकार के मलो की निवृत्ति है । **मलत्रयाः - दोष तीन प्रकार के होते हैं - आणव , कार्मिक और मायिक । कार्मिक दोष तो कर्म से उत्पन्न दोष हैं। जीव अनादिकाल से अनेक कर्मों को अन्तःकरण में इकट्ठा किए चलता है, आणव मल । जहाँ कार्मिक दोष होगा वहां आणव दोष अवश्य होगा । मायिक मल है अविद्या - देहाध्यास, द्वैतादि, पूजा उपरान्त तत्त्वाचमन से ये तीनो मल की निवृत्ति करते है** । उपासना में अन्तराय या अशुची होने पर आचमन से शुद्धि हो जाती है ।

शाक्त दर्शन में छत्तीस तत्व माने गए है जो तीन वर्गों में विभक्त है - **१.शिव तत्व २.विद्या तत्व३.आत्म तत्व । वेदान्त में, स्थुल-सूक्ष्म-कारण तीन शरीर की बात है** ।

१.शिव तत्व :- शिव तत्व में दो तत्वों, शिव और शक्ति का समावेश है।
२.विद्या तत्व :- विद्या तत्व में सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या सम्मिलित है।
३.आत्म तत्व :- आत्म तत्व में इकत्तीस तत्वों का समाहार है, जिनकी गणना इस प्रकार मानते है- माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), और पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) ।

प्राणायाम - कौषीतकी उपनिषद् मे कहा है - **यावदस्मिन्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः** हमारा आयुष्य काल में कैसे नियत हो सकता है, क्योंकि काल की सापेक्षता की बात तो हमारे यहां वेद, पुराणों में, हजारों वर्ष पूर्व, कई स्थान पर बताई है ।विज्ञान भैरव में अनुवर्तनात् (अनिवर्तात्) - प्राण, अपान की उन्मेष और निमेष - अनुवृत्ति प्राणायाम योग के आठ अंगों में से एक है। प्राणायाम = प्राण + आयाम। इसका का शाब्दिक अर्थ है

- प्राण (श्वसन) को लम्बा करनाया प्राण (जीवनीशक्ति) को लम्बा करना।

काल की सापेक्षता को, प्राणायम को सीधा सम्बन्ध है । **कालादुत्पद्यतेसर्वं कालदेवविपद्यते । नकालनिरपेक्षं हि क्वचित्किंचन विद्यते** - शिव पुराण ७.१। **स्वप्ने वियद्गतिं पश्येत्स्वमूर्धच्छेदनं यथा । मुहूर्तेवत्सरौघं च मृत पुत्रादिकं पुनः ।। एतज्जालमसद्रूपं चिद्भानोः समुपस्थितम् । यथा स्वप्नमुहूर्तेऽन्तःसंवत्सरशतभ्रमः** - यो.वा ।। श्रीमद्भादवत् एवं अन्यपुराणों में इसके आधारित कई कथाए भी है । जैसे कि गाधी को जलकी एक डूबकी में ६० वर्षोकी अनुभूति होती है । काल अनादि अनन्त है । इसका प्रारम्भ व अन्त किसीको पता नहीं हैं । वह निर्गुण-निराकार है । वह अच्छा-बुरा नहीं है, उसकी लम्बाई भी व्यक्ति एवं अवस्था सापेक्ष है । **त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्** - कृष्णविरह में गोपीयों को एक त्रुटि - कालका छोटा भाग भी युग से भी बडा लगता हैं । **यथास्वप्ने मुहूर्तेस्यात्**...एक मुहूर्त के स्वप्नकाल में कई वर्षो की अनुभूति होती हैं, वह सत्य भी प्रतीत होती हैं, हर्ष या दुःख भी देती हैं । अब प्रश्न यह है कि आयु की अवधि-काल गणना का परिमाण क्या होना चाहिए । सूर्य सिद्धांत के पहले अध्याय के श्लोक ११.२३ के अनुसार, **हमरा जीवन हमे श्वासों में मिला है । सामान्यतया एक स्वस्थ व्यक्ति का शरीर ७८८४००००० श्वासों की क्षमतायुक्त होता है** । किसी मोटर, कोम्प्रेशर या लाईट की आयुष्य उनके उपयोग पर निर्भर होता है जैसे कि एक बल्ब का आयुष्य १ हजार कलाक का है, अब उसकी आयुष्य उसके उपयोगाश्रित होगी । यदि नित्य १० कलाक चलाते है तो, १०० दिन चलेगी और नित्य २ कलाक चलाएंगे तो ५०० दिन चलेगी । ठीक उसी प्रकार यदि हम नित्य २१६०० सांस लेते है तो, हमे १०० वर्ष का स्वस्थायुष्य मिलता है, किन्तु ज्यादा देहासक्ति एवं भौतिकपरायणता के कारण काम-क्रोधादि का आवेग बलवत्तर बनता है, जिसके कारण प्रायः ३०००० से भी ज्यादा श्वास लेते है, परिणामतः जल्द ही वृद्धत्व आता है, स्वास्थ्य क्षीण होता है, आयु क्षीण होती है । लोकानामन्तकृत्कालःकालोन्यःकल्नात्मकः । स द्विधास्थूल सुक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते ।। अर्थात - एक प्रकार का काल संसार का नाश करता है और दूसरे प्रकार का कलानात्मक है अर्थात जाना जा सकता है । यह भी दो प्रकार का होता है १.स्थूल और २.सूक्ष्म । स्थूल नापा जा सकता है इसलिए मूर्त कहलाता है और जिसे नापा नहीं जा सकता इसलिए अमूर्त कहलाता है । ज्योतिष में प्रयुक्त काल (समय) के विभिन्न प्रकार : प्राण (असुकाल) - स्वस्थ्य मनुष्य सुखासन में बैठकर जितनी देर में श्वास लेता व छोड़ता है, उसे प्राण कहते हैं ।

६ प्राण = १ पल (१ विनाड़ी), ६० पल = १ घडी (१ नाडी), ६० घडी = १ नक्षत्र, १ नक्षत्र-अहोरात्र (१ दिन रात), अतः १ दिन रात = ६०*६०*६ = २१६०० प्राण । इसे यदि आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो, १ दिन रात = २४ घंटे = २४ X ६० X ६० = ८६४०० सेकण्ड्सअतः १ प्राण = ८६४००/२१६०० = ४ सेकण्ड्स, अतः एक स्वस्थ्य

मनुष्य को सुखासन में बैठकर श्वास लेने और छोड़ने में ४ सेकण्ड्स लगते हैं । प्राचीन काल में पल का प्रयोग तोलने की इकाई के रूप में भी किया जाता था ।

प्राणायाम का अर्थ मात्र स्वाशों को नियंत्रित करना या कम करना नहीं है, मनोनिग्रह भी है । हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है - **चलेवाते चलंचित्तं निश्चलेनिश्चलं भवेत् । योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्** ॥२॥ अर्थात् प्राणों के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान हो जाता है और प्राणों के निश्चल होने पर मन भी स्वत: निश्चल हो जाता है और योगी स्थाणु हो जाता है । अतः योगी को श्वांसों का नियंत्रण करना चाहिये।यह भी कहा गया है - **यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते । मरणं तस्य निष्क्रान्तिः ततो वायुं निरोधयेत्** ॥ जब तक शरीर में वायु है, तब तक जीवन है । वायु का निष्क्रमण (निकलना) ही मरण है । अतः वायु का निरोध करना चाहिए । **मनोलये सर्व लयं याति - इन्द्रियाणां मनोनाथो मनोनाथस्तु मारुत:। मारुतस्य लयो नाथ: स लयो नादमाश्रित:** - हठयोग प्रदिपिका । मन में अगाध शक्ति है, मन के नियंत्रण-नरोध से अपरिमित शक्ति मिलती है, किन्तु मन को नियंत्रित करना अति दुष्कर है । योग शास्त्र कहता है कि **यत्र यत्र प्राणास्तत्र तत्र मनः** - मन व प्राण की गति परस्परावलम्बित है, यथा एक के नियंत्रण से दुसरे का नियंत्रण करना सुलभ हो जाता है। जैसे, **किसीका एक पग बंधा हो तो दूसरा पांव स्वतः नियंत्रित हो जाता है** । **प्राणस्य आयाम: इत प्राणायाम । सति श्वासप्रश्वासयो गतिविच्छेद: प्राणायाम** - यो.सू.२.४९ । अतः प्राण की स्वाभाविक गति - श्वास-प्रश्वास को नियंत्रित करनेको कहते है प्राणायाम । **दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनां च यथामलाः । तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्य निग्रहात्** - मनु.। जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं, वैसे प्राणायाम करनेपर, मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं । प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य - योगसूत्र । जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न-जल बाहर निकल जाता है, वैसे देहस्थ दोषोंको प्राणायाम बलात् बहार फेंक देता है ।

जीव को ब्रह्म से जोडने की क्रिया को योग कहते है । श्वास बनके अंदर गया वायु, उच्छवास बनकर बहार निकलता हैं - यथा आंतरमन या अध्यात्म को बाह्य जगत अधिभूत एवं अधिदैव का सेतु है । **प्राणो वै बलम्** प्राण ही बल है - **प्राणस्येदं वशे सर्वं पृथिवी** - प्राण पर नियंत्रण करके समस्त विश्व पर नियंत्रण कर सकते है, यहीं है प्राण की शक्ति । **मोक्षेण योजनादेव योगीहात्र निरूच्यते** - तंत्र । जैन - हरिभद्रसूरिजी - **मुक्खेण जोयणाओ जोगो** - जोडने को योग कहा है । बौद्ध एवं जैन धर्म में भी प्राणायाम के महत्त्व का वर्णन है ।

प्राणायाम के प्रमुखप्रकार : १ नाड़ीशोधन, २ भ्रस्त्रिका, ३ उज्जाई, , ५ कपालभाती, ६ केवली, ७ कुंभक, ८ दीर्घ, ९ शीतकारी, १० शीतली, ११ मूर्छा, १२ सूर्यभेदन, १३

चंद्रभेदन, १४ प्रणव, १५ अग्निसार, १६ उद्गीथ, १७ नासाग्र, १८ प्लावनी, १९ शितायुआदि।इसके अलावा भी योग में अनेक प्रकार के प्राणायामों का वर्णन मिलता है जैसे-१ अनुलोम-विलोम प्राणायाम, २ अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम, ३ अग्नि प्रसारण प्राणायाम, ४ एकांड स्तम्भ प्राणायाम, ५ सीत्कारी प्राणायाम, ६ सर्वद्वारबद्व प्राणायाम, ७ सर्वांग स्तम्भ प्राणायाम, ८ सम्त व्याहृति प्राणायाम, ९ चतुर्मुखी प्राणायाम,१० प्रच्छर्दन प्राणायाम, ११ चन्द्रभेदन प्राणायाम, १२ यन्त्रगमन प्राणायाम, १३ वामरेचन प्राणायाम,१४ दक्षिण रेचन प्राणायाम, १५ शक्ति प्रयोग प्राणायाम, १६ त्रिबन्धरेचक प्राणायाम, १७ कपाल भाति प्राणायाम, १८ हृदय स्तम्भ प्राणायाम, १९ मध्य रेचन प्राणायाम, २० त्रिबन्ध कुम्भक प्राणायाम, २१ ऊर्ध्वमुख भस्त्रिका प्राणायाम, २२ मुखपूरक कुम्भक प्राणायाम, २३ वायुवीय कुम्भक प्राणायाम, २४वक्षस्थल रेचन प्राणायाम, २५ दीर्घ श्वास-प्रश्वास प्राणायाम, २६ प्राह्याभ्न्वर कुम्भक प्राणायाम, २७ षन्मुखी रेचन प्राणायाम, २८ कण्ठ वातउदा पूरक प्राणायाम, २९ सुख प्रसारण पूरक कुम्भक प्राणायाम,३० नाड़ी शोधन प्राणायाम व नाड़ी अवरोध प्राणायाम ।

प्राणायाम की विधि एवं विनियोग इस प्रकार है - योग विज्ञान है, इससे सदैव लाभ ही होगा यह मानना मिथ्या हैं । शिबिर में आठ-दस हजार लोगों को, दो दो हजार रूपये लेकर, शिबिर करनेवाले गुरूओं को भी योग की यह बात स्वीकारनी पडेगी । योगी के आसन का आधार का चतुष्कोण है, जिसमें चारित्र्य, शिक्षा, अपरिग्रहिता एवं करूणा का स्थान होता है । **अनुचित योग या प्राणायाम पतनकारक बनता है - प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ।। हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरः कर्णाभिवेदनाः। भवन्ति विविधा रोगाः प्राणायाम व्यतिक्रमात् ।। अतः शास्त्रोक्त मार्गेण प्राणायामं समभ्यसेत् -** मं.कौ.१५९-१६०-१६१।।
ॐकारस्य ब्रह्मऋषिर्देवोऽग्निस्तस्य कथ्यते । गायत्री च भवेच्छन्दो नियोगःसर्वकर्मसु ।।
त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः प्रारम्भे सर्वकर्मसु । व्याहृतिनां च सर्वासामृषिश्चैव प्रजापतिः ।।
गायत्र्युष्णिगनुष्टप्च बृहतीत्रिष्टुबेवच । पङ्क्तिश्च जगती चैव छन्दांस्येतानि सप्तवै ।।
अग्निर्वायुस्तथा सूर्यो बृहस्पतिरपाम्पतिः । इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः ।।
प्रास्यायमने चैव विनियोग उदाहृतः । विश्वामित्र ऋषिश्चन्दो गायत्रीसविता तथा ।।

प्राणायाम विधि -
इडया कर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया । धारयेत्पुरितं योगी चतुःषष्ठ्या तु मात्रया ।।
सुषुम्मामध्यगं सम्यक्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः। नाड्यापिङ्गलया चैनं रेचयेद्योगविग्रहः।।
इडया कर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया । धारयेत्पुरितं योगी चतुःषष्ठ्या तु मात्रया ।।
सुषुम्मामध्यगं सम्यक्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः। नाड्यापिङ्गलया चैनं रेचयेद्योगविग्रहः।।
रेचकदृष्टन्यायेनात्राप तथात्वात् । निमेषोन्मेषणं मात्राकालस्तु व्यक्षरस्तथा ।।

श्वास अन्दर लेने को कहते है रेचक, रोकने को कहते है कुम्भक, निश्वास को करते है रेचक इनका प्रमाण २-८-४ है। इष्ट मन्त्र को २ बार स्मरण पूर्वक श्वास लेना है, ८ बार स्मरण करते हुए रोकना है और ४ बार स्मरण करते हुए निकालना है। जहां से श्वास लिया है, उनसे विपरित करनेसे (अनुलोम-विलोम) एक प्राणायाम बनता है। ऐसे कम से कम तीन प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम के समय निम्नानुसार भावना हृदयमें रखनी चाहिए - तेजोबिन्दु उपनिषद एवं अपरोक्षानुभूति के अनुसार(११६-१२०) यथार्थ अनुभूति -

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत्। सादृष्टिःपरमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ॥
द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् । दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥
चित्तादि सर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्। निरोधःसर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥
निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः। ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिःपूरको वायुरीरितः ॥
ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुंभकः प्राणसंयमः । अयंचापि प्रबुद्धानां अज्ञानां घ्राणपीडनम् ॥

पूरा ब्रह्माण्ड दिव्य चेतना से भरा है - सर्वत्र सकारात्म ऊर्जा व्याप्त है। काल के प्रत्येक क्षण में एवं स्थल के प्रत्येक कण में ईश्वरीय चेतना है। जब हम श्वास लेते है तो ईश्वरीय ऊर्जा को अन्दर लेते है, फिर उस प्राप्त चेतना को रोककर, शीर्ष से पादान्त रोम-रोम में प्रसारित करते है और जब श्वास (उच्छवास) बहार नीकालते है तो, देहान्तर्गत समस्त दोष, व्याधि, नकारात्मकता को बहार निकालते है। ऐसी भावना से जो करते है वही सही प्राणायाम है, अन्यथा मात्र नाक को पीडा देना ही है। प्राणायाम के उपरान्त माता-पिता-गुरू को वन्दन करना चाहिए। अन्यत्र ध्यानम् -

नीलपङ्कजविश्यातामानीय नाभिमध्यतः। महात्मानं चतुर्बाहुं पूरके तु हरिं स्मरेत् ।।
हृत्पद्मे कुम्भके ध्यायेद्ब्रह्माणं पङ्कजासनम्। रक्तेन्दीवरवर्णाभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ।।
रेचके शङ्करं ध्यायेल्ललाटस्थं त्रिशूलिनम्। शुद्धस्फटकसंकाशं संसारार्णवतारकम् ।।

संध्यादि षड्कर्म - श्रृति कहती हैं कि - अहरहः संध्यामुपासीत - अर्थात् द्विजोंको प्रतिदिन संध्या करनी चाहिये। अकृत्वा वैदिकं नित्यं प्रत्यवायी भवेन्नरः - वैदिक कर्म नित्य न करनेसे द्विज प्रत्यवायी (पतित) बनता है। अहोरात्रस्य या संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जिता। सा तु संन्ध्यासमाख्याता मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।। संध्या कि विधि व क्रम स्वसूत्रानुसार करना चाहिए।

गुरू गणपति पूजा - मातृ-पितृ वन्दना सर्वादौ है। गुरू-गणपति पूजा का महत्व कई ग्रंथों में है और प्रायः सबको सुविदित भी है ही, इस अनुमान के साथ विशेष चर्चा नहीं करते है। हमारे शरीर में प्रथम चक्र मूलाधार है, जो आधार शक्ति का द्योतक है। आधार स्थिरता किसी भी कार्य में प्रारम्भ से पूर्णता पर्यन्त अत्यावश्यक है। **त्वं**

मूलाधार स्थितोसि नित्यम् - वहां गणपति का स्थान हैं । कोई भी मार्ग में आगे बढे आधार-स्थिरता तो पूर्वशरत रहेगी ही । षड्चक्रों में भी यह प्रथम है, यथा गणपतिपूजा सर्वकार्य में अग्रिम स्थान पर होती है । माता-पिता जिसको हमने संसार में आनेसे सबसे पूर्व देखा है एवं हमारे अस्तित्व का आधार भी है, यथा उनकी पूजा की भी अग्रता होनी चाहिए । गुरू की पूजा सभी मार्ग में देवपूजा या उपासना में प्रारम्भ में ही करनेका शास्त्रमत है । गुरू का स्थान आज्ञा चक्र में है, वहां गुरूदेव द्विपत्रात्मक कमल में हं क्षं वर्णयुक्त होकर ज्ञानशक्ति के साथ बिराजमान है । यह षडचक्रो में ब्रह्मानुभूति के पूर्व का अन्तिम चक्र है । परमात्मा के तादात्म्य के उत्तुंग शिखर की यह अन्तिम चट्टान है, जिसकी उपेक्षा करके कोई भी ब्रह्मरन्ध्र तक पहोंचने में समर्थ नहीं हो सकता । गुरूकृपा से हमारे चार हेतु सिद्ध होते हैं - **१. स्वस्वरूप निरूपण, २. स्वच्छप्रकाश विमर्श, ३. स्वात्माराम पिञ्जर विलीनिकरण, ४. जीवब्रह्मात्मैक्य सिद्धि** । हमारे मूल स्वरूप का बोध कराते है, शुद्धविद्या से ज्ञान का प्रकाश देते है, जिसके द्वारा सत्यासत्य का विवेक होता है, जीवभाव व देहाध्यास की निवृत्ति कराते है - अविद्या जन्य अज्ञान से मुक्ति दिलाते है और अन्त में ब्रह्म साक्षात्कार कराते है, ईश्वर का तादात्म्य बढाते है **और गुरू स्वयं कोई कर्तृत्व या अभिमान न रखके स्वयं कतक रेणु (फटकरी - alom) की तरह, जल को शुद्ध करके जल में नीचे बैठ जाते है** । परमात्मतत्व का बोध करानेवाले गुरू के विषय में ज्यादा लिखने की आवश्यकता नहीं है । **सद्गुरू को प्रसिद्धि नहीं चाहिए, उनको फोटो, बैनर, प्रचार की आवश्यकता नहीं होती । वे शिबिर करने शहरों में नहीं आते । अधिकारी शिष्य स्वयं उनको ढूंढकर, स्वयं उनके पास जाते हैं । बैनर व प्रचार तो व्यापारि करते हैं, उनका ध्येय मात्र कमानेका होता हैं । सच्चे गुरू प्रसिद्धि से दूर होते है। उपवन के पुष्य नहीं कहते कि, मेरे पास सौंदर्य है, सुगंध है, हमे वहां जाते ही अनुभूति होती है, सद्गुरू का सान्निध्य मात्र ही ऊर्जावान् होता हैं** ।

आजकल तो, बडे शहरों में, आयेदिन, त्रिदिवसीय शिबिर, राजयोग शिबिर, ज्ञानयज्ञादि के पोस्टर लगे रहते है, ओर एक्जिबीशन कम सेल मे लोग बेचारे ठगे जाते है ।

संकल्प - सकल्पं सरहस्यं च तामाचार्य प्रचक्षते - मनुस्मृति २.१४०। हमारे यहां प्रत्येक कार्य के पूर्व संकल्प किया जाता है, वह विधि का ही महत्वका अंग है । **संकल्प्य च जपेन्नित्यंपुरश्चरणपूर्वकम् । यच्चित्तस्तेनैष प्राणामायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति** - प्रश्नोपनिषद् (३१०) - संकल्पानुसार सिद्धि व गति मिलती है, हमारी साधना की निश्चयात्मकता बनती है । मनुस्मृति में कहा गया है -
संकल्पमूल:कामौ वै यज्ञा: संकल्पसम्भवा: । व्रतानियम कर्माश्च सर्वेसंकल्पजा: स्मृता।।
संकल्पेनबिनाकर्म यत्किंचित्कुरुतेनरः। फलंचाप्यल्पकंतस्य धर्मस्यार्द्धक्षयों भवेत् ॥
संकल्प के बिना जो कर्म किया जाता हैउसका आधा फल नष्ट हो जाता है ।
आदौसङ्कल्पउद्दिष्टःपश्तात्तस्यसमर्पणम्।अकुर्वन्साधकःकर्मफलंप्राप्नोत्यनिश्चितम् - महा.

अवश्यंतान्त्रिकंकालमुल्ल्खेतन्यथाशिवे । बहिर्मुखंतुतत्कर्मभवेद्भस्महुतंयथा- यामले ।। भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः (तै. उप.२.८.१) इत्यादिका । सकलेतर निरपेक्षस्य भगवतः संकल्पात्सर्वेषां स्थितिः प्रवृत्तिः च उक्ताः तथा तत्संकल्पादेव सर्वेषामुत्पत्तिप्रलयौ अपि । **सर्गः संकल्पमात्रेण - संकल्पमात्रमिदमुत्सृज** । संकल्प मात्र कलनेन जगत्समग्रं, संकल्प मात्र कलने हि जगद्विलासः । आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् अथ.९.४.२ ।। किसी कार्य सिद्धि के लिए संकल्पशक्ति अग्रस्थान में है, इसके बिना कार्य असम्भव है, वह चित्त का निर्माण करके, उसकी कार्यक्षमता, श्रद्धा बढाकर कामना सिद्धि प्रदान करती हैं ।

ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचने का दृढ़ संकल्प किया और उनके मन से मरीचि, नेत्रों से अत्रि, मुख से अंगिरा, कान से, पुलस्त्य, नाभि से पुलह, हाथ से कृतु, त्वचा से भृगु, प्राण से वशिष्ठ, अँगूठे से दक्ष तथा गोद से नारद उत्पन्न हुये। इतनी रचना करने के बाद भी ब्रह्मा जी ने यह विचार करके कि मेरी सृष्टि में वृद्धि नहीं हो रही है अपने शरीर को दो भागों में बांट लिया जिनके नाम 'का' और 'या' (काया) हुये । उन्हीं दो भागों में से एक से पुरुष तथा दूसरे से स्त्री की उत्पत्ति हुई । पुरुष का नाम स्वयम्भुव मनु और स्त्री का नाम शतरूपा था । ऐसी पुराणों में संकल्प शक्ति की अनेक कथाए हैं । यह पूरा ब्रह्माण्ड, परमात्मा का ही चिद्विलास है, संकल्प मात्र से उत्पन्न हुआ है ।

संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रं संकल्पमात्रकलने हि जगद्विलासः ।
संकल्पमात्रमिदमुत्सृज निर्विकल्पमाश्रित्यमामकपदं हृदि भावयस्व ॥ ४५॥
यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यंतदाभवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ।
स्याद्बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्तिसुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ॥ ३७॥
शिवपुराण में भी यही बात है - प्रकृत्यवस्थापितकारणानां या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः । तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥
प्रकृत्यवस्थापितकारणानां या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ॥
मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सो ऽसृजन्मनसैव च ॥
पुरस्तादसृजद्ब्रह्मा धर्मं संकल्पमेव च । इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा द्वादशादौ प्रकीर्तिताः ॥
संकल्प्य च महातीव्रं तपः परमदुश्चरम् । सदा मनसि सन्धाय भर्तुश्चरणपंकजम् ॥
तत्सर्वमप्राकृतवैभवस्य संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ।
चतुर्युगसहस्त्रंयत्संकल्प इतिकथ्यते । चित्तं चेतयते चापि मनःसंकल्पयत्यपि ॥
इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्याकार्यनियामिका । ज्ञानशक्तिस्तुतत्कार्यंकरणंकारणंतथा ॥
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति । यथेप्सितंक्रियाशक्तिर्यथाध्यवसितं जगत् ॥
कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात्संकल्परूपिणी ॥ शिवपुराण-वाय.अध्याय १.२ ।।

सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥ संकल्पपूर्वक किए गए कर्म को व्रत कहते हैं। आचारव्यवहार का शास्त्रानुसार विधान (अग्नि पुराण-१७५.११)

मनुष्य की समस्त कामनाओं का प्रकटीकरण संकल्प के माध्यम से होता है। सभी यज्ञ संकल्प के पश्चात ही संपन्न होते है। कोई भी नित्य, नैमित्तिक, काम्य, पारलौकिक, पारमार्थिक, आध्यात्मिक, निष्काम एवं प्रासंगिक अनुष्ठानों के पूर्व संकल्प करना अति आवश्यक है। सम्यक् कल्पना को कहते है संकल्प।

पंचांगमयः संकल्पः **- संकल्प के पांच अंग है १. देश, २. काल, ३. साधक, ४. साध्य, ५. साधन**। हम प्रायः बोलते है **देशकालौ संकीर्त्य - आईन्स्टाईन से हजारो वर्ष पूर्व हमने काल की सापेक्षता की बात कहीं है, न केवल कही है उनका संदर्भ हम हमारे नित्य-नैमित्तक कर्मो में है, हम उसका अनुशीलन अग्रता से करते है**।

संकल्प का प्रथम अंग है देश। **संकल्प में सर्व प्रथम हम बोलते है देश -** अस्मिन्महति ब्रह्माण्डे.. भारतवर्षे, जम्बुद्विपे.. अरण्ये.. ग्रामे इत्यादि। क्योंकि देश का महत्व है। देश बदल जाने से काल भी बदल जाता है। देश बदलता रहता है। १९४० में लाहोर में या करांची में किया कार्य भारत में किया माना जाता था, किन्तु आज वहीं किया गया कार्य पाकिस्तान का होगा। दोनों का आधिपत्य, धर्माम्नाय भी भिन्न-भिन्न हैं।

दुसरा अंग है काल, काल के विषय में भी शास्त्रोक्ति है। भारत में यदि संकल्प प्रातः ९ बजे करते है तो, साउदी अरेबिया में प्रातः ६.३० बजे होते है। ब्रिटन या अमेरिका में हो सकता है दिन, तारिख ऐवं तिथि भी अलग हो। **यदि काल का विचार न करे तो, कोई व्यक्ति गुना करके परदेश चला जाए तो, वह व्यक्ति वही दीन या वही कालमें अन्यदेश में हो जाएगा - निर्दोष छूट जाएगा। इसलिए प्रत्येक देश का नियत काल स्टान्डर्ड टाईम भिन्न-भिन्न होता हैं।**

तृतीय अंग है साधक। साधक अपने व्यक्तित्व, कुल, गौत्र से सभान होना चाहिए। जबतक स्वयं की पूर्ण जानकारी नही होती या स्वयं विषये निश्चित नहीं होता, उसका अन्य प्राप्य या प्राप्ति का कोई अर्थ नहीं रहता। अपना गोत्र, वेद, शाखा, प्रवरादि के विषय में तो सर्व प्रथम ज्ञान होना चाहिए। **अपने बच्चे को भी हम सर्व प्रथम अपना नाम, माता पिता का नाम, निवास का स्थल पहले सिखाते है। अन्यथा कुम्भ के मेले में गया ता वापस मिलना असंभव। कर्ता को स्वयं का पता होना आवश्यक होता है।**

चौथा अंग है साध्य। हमारा लक्ष्य सुनिश्चत होना चाहिए। **शरसंधान से पूर्व निशाना होना चाहिए - ध्येय की पूर्वनिर्धारणा आवश्यक होती है**। मैं ने एक दशमी कक्षा के विद्यार्थी को पूछा - कितने मार्क्स(नंबर) लाओगे - क्या बनना है। वह बोला, पता नहीं ज्यादा से ज्यादा नंबर लाने है। मैने उसे सलाह दिया कि, **घरसे निकलो तो निश्चित**

करना पडता है कि हम कहां और क्यों जाते है । बंदूक की गोली छोडने से पूर्व निशाना होना चाहिए । हमारी उपासना का उद्देश्य क्या है, मात्र ईश्वरानुभूति भी हो सकता है, या निष्काम भी हो सकता है, यद्यपि संकल्प जरूरी है ।

पंचम अंग है साधन । हमारा साध्य निश्चत है, किन्तु हमारे पास उसकी प्राप्ति के साधन क्या है और वे पर्याप्त है या नहीं । **जेब में ५० रूपये लेकर, मोबाईल खरीदने निकलो तो, आपका साध्य प्राप्ति अयोग्य है** । साध्य के संदर्भ में पर्याप्त साधन का विचार भी हम संकल्प में करते है । **वैसे तो लोग, नमःशिवाय की एक माला फेर कर भगवान से मांगते है, मेरे घर पुत्रपौत्रादि हो, सुख सम्पत्ति हो, वाहन-मकानादि का सुख हो, और क्या क्या मांग लेते है । भाई आप पार्ट टाईम टाईपीस्ट की नौकरी करके ५ लाख की पगार मांगो तो, मेरे हिसाब से मूर्खता ही है । गंतव्य तक किसमें जाएंगे यह साधन है** ।

हमे यदि कहीं जाना हो तो, सर्व प्रथम हम कहां है, उसका पता हमें होना चाहिए । फिर जहां जाना हो वह गन्तव्य का पता होना चाहिए । फिर साधन-माध्यम, आप कैसे जाना चाहते है, कार से या ट्रेन से, विमान से या नौका से, वो भी नक्की करना पडता है । गंतव्य पर प्राप्ति के समय पर साधन का आधार होता है । आपको अहमदाबाद से तीन घण्टे में ही मुंबई जाना हो, तो विमान ही चाहिए, ट्रेन नहीं चलेगी । काम्य प्रयोग में इसका महत्व बनता है, नेतालोग इलेक्शन के समय अनुष्ठान कराते है, पंद्रह दिनमें कार्य सिद्धि करनी होती है, अनुष्ठान की जप संख्या यदि पंचलक्ष है तो, इसके हिसाब से ब्राह्मणों को नियुक्त करना पडेगा । आपको यदि नई ऑफस दो दिन में चालू करना हो, तो इस हिसाब से कारीगरों को काम मे लगाना पडेगा ।

हम कोई अज्ञात विस्तार में फंस गए है और अपने मित्र को फोन करते है कि, वो आपको लेने आए, तो वह पहले पूछेगा कि आप कहां खडे है । आपको अपना, आप कहां खडे है, कहां जाना हैं, यह निर्णय करनेको संकल्प करते है ।

संकल्प में पंचाग का स्मरण करते है - **पञ्चाङ्गस्यफलं श्रुत्वा गङ्गास्नान फलं लभेत् ।। तिथिर्वारो तथा विष्णु, नक्षत्रं विष्णुमेव च । योगश्च करणश्चैव सर्वं विष्णुमयं जगत् ।। तिथिवारं च नक्षत्रं योग: करणमेव च । यत्रैतत्पञ्चकं स्पष्टं पञ्चांङ्गं तन्निगद्यते।। जानातिकाले पञ्चाङ्गंतस्यपापं न विद्यते । तिथेस्तुश्रियमाप्नोति वारादायुष्यवर्धनम्।। नक्षत्राद्धरते पापं योगाद्रोगनिवारणम् । करणात्कार्यसिद्धिःस्यात्पञ्चाङ्गफलमुच्यते।। मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानांचसर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्यफलभाग्भवेत् ।।** देवल । पूर्व संकल्प करनेसे कार्यमें आनेवाले आशौचादि दोष की निवृत्ति होती है । महर्षिअत्रि - **पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् । कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचंमृतसूतके ।। यज्ञेप्रवर्तमाने तु जायेताथम्रियेत वा । पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्रविद्यते ।।** दक्षस्मृति ।

तैतिरीय ब्राह्मण का यह वचन विशेष उल्लेखनीय है कि **अनृतेखसुवैक्रियमाणे वरूणों गृहयाति अप्सुवे वरण:,** यदि संकल्प सत्य न हो तो उस कर्म का फल वरूण हरण करता है, अर्थात् वह कर्म व्यर्थ हो जाता है । संकल्प के निमित्त जो पानी छोडा जाता है, उसे उदक कहते हैं । उदक के बिना किया हुआ संकल्प सर्वथैव व्यर्थ होता है, ऐसा शास्त्र संकेत है । कुछ अवसरों पर संकल्प आवश्यक होता है परंतु, यदि जल मिलना असंभव हो तो नारियल या सुपारी पर हाथ रखकर अथवा तुलसी बिल्वपत्र हाथ में लेकर संकल्प किया जा सकता है । यदि वह भी संभव न हो, तो केवल मानसिक संकल्प करके बाद में यथावकाश विधिवत संकल्प करें । यदि विधिवत संकल्प नहीं कर सकते तो कर्म का स्वरूप, देवता एवं कालावधि आदि का उच्चारण अपनी मातृभाषा में करके पानी छोडना भी पर्याप्त होता है ।

संकल्प का उद्गम स्थान मन है । मन में ही संकल्प-विकल्प उठते है । **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः** मन ही मुक्ति एवं बंधन का कारण भी है । प्रायः इसलिए ही यजुर्वेद में शिवसंकल्प सुक्त की प्रार्थना है । ऋषियों ने मन की अनंत शक्ति का परिचय पाया था और यह मन शिवसंकल्पयुक्त हो ऐसी प्रार्थना करी है, क्योंकि मनमें निरन्तर संकल्प-विकल्प उठते ही रहते है, वे सभी शिवमय-कल्याणकारी हो ।

विनियोग - विनियोग का महत्व भी बहोत है । **बिना विनियोग किया कर्म निष्फल हो जाता है, जैसे बिना एड्रेस किए डाली हुई पोस्ट कहीं नहीं पहुंचती** । विनियोग में उक्त मन्त्र का पूर्ण विवरण होता है । **जैसे दवा की बोटल पर उनके पूरे कन्टेन्ट होते है, कंपनी का नाम, किस रोग के लिए है, उत्पादन तारिख इत्यादि, बिना नाम या लेबल की दवा कोई उपयोग की नहीं होती । विनियोग में मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक आदि का उल्लेख मिलता है** । ये सब मन्त्र के अंग है, जिनकी चर्चा अब क्रमशः करेंगे ।पुराण, स्मृति एवं तन्त्रागमों मे इसकी विस्तृत चर्चा है, यहां कुछ अंश..
साधनं मूल मन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते । पुरश्चरणीयत्वा विनियोगादिकर्मणाम् ।।
ऋषिं छंदश्च कीलं च बीजशक्तिं च दैवतम् । न्यासं षडंगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः॥
साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिकेतथा । जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वामन्त्रेण च क्रमात् ॥
पुरतोविनियोगस्य मन्त्रसाधनमाचरेत् । साधनंमूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते ॥
शि.पु.वा.सं । **आर्षच्छन्दश्चदैवत्यं विनियोगस्तथैव च । वेदितव्यः प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः -** व्यास. । **अविदित्वा ऋषिच्छन्दो देवतं योगमेव च । योध्यापयेद्याजयेद्वा पापीयान् जायते तु सः -** याज्ञ. । त्वमेव परमेशानि अस्याधिष्ठातृदेवता ।चतुर्वर्ग फलावाप्त्यै विनियोगःप्रकीर्तितः - ५.१४८ ॥ करणेषु तु संस्कारमारभन्ते पुनः पुनः । विनियोग विशेषांश्च प्रधानस्य प्रसिद्धये ॥ ३,७.९२ ॥ **इदं प्रधानं शेषोऽयं विनियोगक्रमस्त्वयम् -** वाक्यपदीय ।

आईटी क्षेत्र में मेरा ३० से भी ज्यादा वर्षों का अनुभव रहा है । संकल्प एवं विनियोग को समझने के लिए उदाहरण का उपयोग करते है - आईटी में, ग्लोबल स्टोरेज या क्लाउड स्टोरेज को, आज प्रायः सब जानते हैं - प्रचलित है । आप जानते है, उसमें कैसे डेटा स्टोर होता है और कैसे रीट्राईव (नीकलता) होता है - उस मास स्टोरेज में ह्यूज (बहोत) डेटा होता है, फिर भी उसमें से आपका ईच्छिच डेटा नीकलता है । प्रत्येक डेटा-फाईल के आगे एक फिजिकल-लॉजिकल एड्रेस टेग, एमएसी, फाईल टाईप (डेटा किसमें खूलेगा) इत्यादि होता है, जिससे डेटा की बिलोंगींग-प्रोप्राईटरी-टाईप आदि निश्चत होता है, बस ऐसा ही होता है संकल्प एवं विनियोग से - संकल्प से डेटा की प्रोप्राईटरी, जैसे की किसने, कहां से, किस उद्देश्य से उपासना की है तथा विनियोग से मंत्रकी जाति, ऋषि, छन्द (फाईलटाईप) निश्चित होती हैं । पूरे ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्षण की, पूर्ण ईमेज ब्रह्माण्ड में होती है । यह कार्य चित्रगुप्तादि करते है ।

ऋषि - ऋषन्ति जानन्ति सर्वमिति ऋषयः मन्त्रदृष्टारः - मन्त्रो की शक्ति, उपयोग, देवता इत्यादि का विस्तृत ज्ञान जिसने तप से आत्मसात् किया वह, उस मन्त्र का ऋषि मानते है । **सामान्य तया हम बोलते है पायथोगोरस का सिद्धान्त, डार्विन का उत्क्रान्तवाद, आईन्स्टाईन की रिलेटीविटी, डोप्लर का सिद्धान्त इत्यादि । जिस व्यक्ति ने जो शक्ति का परिचय करवाया, आविष्कार किया, वह आविष्कार, सिद्धान्त उसके नाम से जाना जाता है । वह उसका ऋषि है ।** श्रीलंका नित्य अनेक यात्री जाते हैं यद्यपि हनुमानजी के गमन पर सुन्दरकाण्ड गाया गया । यथा सिद्धान्त या शक्ति का आविष्कर्ता के नाम से आविष्कार जाना जाता है ।

ऋषि शब्द गत्यर्थक ऋ धातु और षिङ् प्रापणेप्रत्यय से बना है । अभिप्राय है कि जो मन्त्र-गति से,अर्थात् त्वरितगति से परमात्मा के स्वरुप को प्राप्त करता है, वह साधक ही ऋषि है, जिसे मन्त्र-द्रष्टा ऋषि कहते हैं । किसी वस्तु का कोई न कोई मूल(आदि) स्रष्टा होता ही है - यह तय है । मन्त्र-दीक्षा लेकर, साधना-क्रम में साधक ऋष्यादि न्यास द्वारा उस ऋषि से तादात्म्य स्थापित करता है और तब वह अपनी साधना-द्वारा उस ऋषि के ही समान मन्त्र-गति से परमात्मा तक पहुँचता है (अभीष्ट फल प्राप्त करता है)। परमात्मा और गुरु का स्थान शिर में सर्वमान्य है,अतः मन्त्र के ऋषि का न्यास शिर में ही किया जाना चाहिए । शिर के स्पर्श की विधि(मुद्रा) पूर्व निर्दिष्ट अंगन्यास के अनुसार ही, यानी दाहिने हाथ की चारो अंगुलियों(अंगूठा रहित)के अग्रभाग से शिरोदेश का मृदु स्पर्श सानुभूति पूर्वक ।

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयोरथानाम् ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्ययावयत्सखः - ऋग्. १०.२६.५।। **भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रंबल मोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु** - अथ.१९.४१.१ - ऋषि, यज्ञो के प्रतिपादक, शुद्ध, पवित्र, ज्ञानी, बुद्धिमान एवं निष्पाप है, जीवनरथो के प्रेरक-संचालक है, सर्वत्र करूणा

रखनेवाले को ऋषि मानते है। जो सबके कल्याण की भावना एवं आत्मरतिवाले है, वे ऋषि तप एवं दीक्षा प्राप्त करके ज्ञान का अर्जन करते है। वेदोत्पत्ति - बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः । यदेषां श्रेष्ठंयदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः - ऋ.१०.७१.१ ॥ सृष्टि के आरम्भमें विभिन्न पदार्थो के नामकरण की इच्छावाले ऋषियों ने जो वचन उच्चारित किए वह वाणी का आदि स्वरूप (वेद) था। परमात्मा की प्रेरणा से ही इनकी हृदयगुहा में ज्ञानप्रकट हुआ। वैदिक ऋषियों ने धर्म(सत्य) का साक्षात्कार (अनुभव) किया, साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवु: ऋषियों ने मंत्रो के अन्तर्निहित सत्य का दर्शन किया। उपनिषद् ऋषियों के अनुभवजन्य उदगारों के भण्डार हैं।

छन्द - प्रजापतिरेवछन्दोभवत् - शत.ब्रा.७.२.३.१ । छादयतिमंत्रप्रतिपाद्य यज्ञादिनी तिच्छन्दः । मन्त्रामननात् - **छंदासि छादनात् । स्तोमःस्तवनात् । यजुर्यजेतरित्यादिं** - निरूक्त ७.३.१२। स्वयं प्रजापति छन्द स्वरूपमें अवस्थित है। छन्द शब्द में इच्छा वाचक और ददानार्थक है - देने अर्थ में। ऐसे अभीष्ट फल देने वाला मन्त्र ही है, जो गुरु-मुख से प्राप्त होता है, शिष्य की कर्ण-गुहा में। इस क्रम में आत्मज्योति मूलाधार से उठ कर हृदयादि से होते हुए, सहस्रदलपद्म में आकर प्रतिष्ठित होती है। मन्त्रमय छन्द का न्यास मुख में किया जाना चाहिए, क्यों कि साधक द्वारा जो मन्त्रोच्चारण किया जायेगा- अक्षरों काउसका स्थान मुख ही है। मुख में छन्द न्यास करने की मुद्रा वैसी ही होगी, जैसे पांचों अंगुलियों को एकत्र करके हम भोज्य - ग्रास लेते हैं।

छन्दांसि जज्ञिरे - वैदिक छन्द के विषयमें अति महत्व रखता है उच्चारण। भगवान पाणिनी ने भी वेदों को नमस्कार किया - **आर्षत्वात् साधु**। यहां कहनेका तात्पर्य यह है कि, वेदमन्त्रों का पठन वेदशाखा के हिसाब से करना चाहिए। **आजकल गीत-संगीतमय कैसेट मिलती है, उससे कोई लाभ नहीं होता, उसको मन्त्रजप मान ही नहीं सकते, आगे (उच्चारण में) उसकी चर्चा हो चूकी है**। भिन्न-भिन्न छन्दो के उपरान्त सामगान, यजुर्वेद का वेदघोष, ऋग्वेद की ऋचा को बोलने की पद्धति गुरूगम्य है, उसे गुरूपसदन होकर पढना पडता है। उनकी स्वर व्यवस्था एवं उच्चारण विधान पूर्णतया विज्ञानमय है। इसलिए कहा है **छन्दसि बहुलाम्** - इस बहुलम् शब्द की विशेषता आचार्यों के शब्दों में इस प्रकार है - **क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचित्भाषाक्वचिदन्यमेव । विधेर्विविधानं बहुधासमीक्ष्य चतुर्विधंबाहुलकं वदन्ति**। वैदिक मंत्रों में प्रयुक्त छंद कई प्रकारके हैं, जिनमें मुख्य हैं - **गायत्री** - सबसे प्रसिद्ध छंद। आठ वर्णों (मात्राओं) के तीन पाद। गीता(११) में भी इसके सर्वोत्तम बताया गया है। **त्रिष्टुप** - ११ वर्णों के चार पाद - कुल ४४ वर्ण। **अनुष्टुप** - ८ वर्णों के चार पाद, कुल ३२ वर्ण। वाल्मीकि रामायण तथा गीता जैसे ग्रंथों में जो है। इसी को श्लोक हैं। **जगती** - ८ वर्णों के ६ पाद, कुल ४८ वर्ण। **बृहती**- ८ वर्णों के ४ पाद कुल ३२ वर्ण। **पंक्ति**- ४ या ५ पाद कुल ४० अक्षर २ पाद के बाद विराम होता है पादों

में अक्षरों की संख्याभेद से इसके कई भेद हैं । **उष्णिक-** इसमें कुल २८ वर्ण होते हैं तथा कुल ३ पाद होते हैं २ में आठ आठ वर्ण तथा तीसरे में १२ वर्ण होते हैं दो पद के बाद विराम होता है बढे हुए अक्षरों के कारन इसके कई भेद होते हैं । वर्णो के न्यूनाधिक से नीचृद्-बृहती बनते है । छन्द के लिए अग्निपुराण अ.३२९ निम्नानुसार बताया है -

छन्द	गायत्री	उष्णिक	अनुष्टुप्	बृहती	पङ्क्ति	त्रिष्टुप्	जगती
आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
दैवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

देवता - मन्त्रोदेवाधिष्ठितोऽसावक्षर रचनाविशेषः - देवता से अधिष्ठित यह एक अक्षर रचना विशेष है । मन्त्र देवताओं के विग्रह है । प्रत्येक मन्त्र के देवता होते है, वैसे तो आगे चर्चा कर चूके है कि मन्त्र स्वयं देवता है । सर्वेवर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये । शक्तिस्तु मातृका ज्ञेयो साच ज्ञोया शिवात्मिका - कामधेनु तंत्र । देहमास्थायभक्तानां वरदानाच्च पार्वति । तापत्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तिता ।। ध्यानेन परमेशानि यद्रूपंसमुपस्थितम् । तदेवपरमेशानि मंत्रार्थविद्धिपार्वति ।। शिवात्मकाःशक्तिरूपाज्ञेया मन्त्रास्तथाणवाः। तत्वत्रयविभागेन वर्तन्ते ह्यमितौजसः – नेत्रतंत्र । मन्त्र के प्रत्यक अक्षर देवता है । देवता स्वयं साधको को वरदान देने हेतु मन्त्ररूपी देह का आश्रय लेते है । मन्त्र में अर्थरूपेण शिवजी भगवति परावाग् शक्ति के साथ बिराजमान है, इसकी चर्चा आगे भी दी गई है । **दिव** धातु से बने देव शब्द में भावार्थक **तल** प्रत्यय या कि विस्तारार्थक **तनु** धातु से बने **त** शब्द का संयोग है। तात्पर्य है सर्वात्मना देवत्व(हृदय में देवभाव) प्राप्त करना, जिसका मूल स्थान हृदय है। अतः देवता का न्यास यहीं करना चाहिए। न्यास की यहां मुद्रा होगी - खुली हथेली से हृदय का सानुभूति पूर्वक स्पर्श। वैदिक ऋचाए तीन प्रकार की है - शष्या, याज्या या पुरोनुवक्या । इसमें जो याज्या है, वह देवयजन यज्ञादि में उपयुक्त होने वाली हैं। यज्ञादौ कर्मण्यनेन मन्त्रेणेदं कर्म तत्कर्तव्यमित्येवं रूपेण यो मन्त्रान्करोति व्यवस्थापयति - हमारे ऋषियों ने यज्ञादि कर्मो के लिए जो मन्त्र प्रयुक्त किये है, उसे लिंगमन्त्र कहते है, उसका अर्थ कुछ और ही होता है । देहमास्थायभक्तानां वरदानाच्चपार्वती । तापत्रयादिशमनाद्देवता परिकीर्तिता ।। मन्त्र तो देवताओं का देह है । यावदिन्द्रियसंताप मनसासंनियम्य च । स्वात्तेनाभीष्टदेवस्य चिन्तनंध्यानमुच्यते ।। मन्त्र के देवता का ध्यान करके जप करना चाहिए । मन्त्रके देवताका ज्ञान अति महत्व है ।

बीज - देवतायाः शरीरं तु बीजादुत्पद्यते ध्रुवम् - देवताओं का शरीर मन्त्रबीजों से उत्पन्न हुए है। बीजभावस्थितंविश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी- योगिनीहृदय- समग्र ब्रह्माण्डो की उत्पत्ति का इन बीज में है । **बीज का स्फोट ही उत्त्पत्ति का आधार है । बीज वीर्य या रज(पुरुष-स्त्री)का प्रतीक है,जिसका स्थान क्रमशः लिंग वा योनि है** । यहीं आसपास मूलाधार की भी स्थिति है । **पुरस्क्रिया हि मंत्राणां प्रधानं बीजमुच्यते** - मन्त्रों में बीज का महत्व प्रमुख माना जाता है । जिस प्रकार बीज से वटवृक्ष बनकर, उसपर फल बैठते है, मन्त्र का बीज ही मन्त्रो के फल का आधार है । साधना क्रम में बीज के न्यास(स्थापना) का तात्पर्य है कि समुचित स्फुरण और विकास कुण्डलिनी के साथ ऊर्ध्वमुखी हो,और समुचित फल साधक को प्राप्त हो सके। इस प्रकार निश्चित है कि बीज-न्यास का स्थान पुरुष में लिंगप्रदेश,और स्त्री में योनिगुहा (उच्च साधक के लिए- सीधे मूलाधार) में ही होना चाहिए। इसकी मुद्रा होगी- दाहिने करतल को पीछे लेजाकर, गुदप्रान्त का वाह्य स्पर्श करते है ।

शक्ति - शतकोटिमहादिव्ययोगिनीप्रतिकारणात् । तीव्रस्फूर्तिप्रदानाच्च शक्तिरिष्य भिधीयते ।। मन्त्र से प्रकटित ऊर्जा में अनन्त शक्ति होती है, **मन्त्र की नियमित उपासना से वह शक्ति आत्मसात् होती है, जिस प्रकार चुम्बक के समीप पडे हुए लोहे में चुम्बकत्व आ जाता है** । मन्त्र के सभी वर्ण मातृका है । मातृका शब्द से विश्व को उत्पन्न करनेवाली नादात्मिकाशक्ति का बोध होता है । अतः ये मातृकाएँ साक्षात् शक्ति-स्वरुपा हैं । शरीर को चलायमान बनाने का काम पैरों का है । अतः मन्त्र-शक्ति का न्यास पैरों में होना चाहिए । मुद्रा होगी बारी-बारी से दोनों पैरों का सामान्य स्पर्श ।

कीलक - उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुचिकया हठात् – कीलक का अर्थ है कि मन्त्र शक्ति को उजागर करने की चाबी, जिस प्रकार चाबी से कपाट को खोलकर इसमेंसे पदार्थ नीकाले जाते है, वैसे ही कीलक मन्त्रो का उत्कीलन करता है । शरीर का केन्द्र नाभिमंडल है । कीलन का कार्य यहीं किया जाता है । यह भी एक प्रकार का सुरक्षा-कवच है, किन्तु कवच से जरा भिन्न है-अवरोधात्मक रुप से। इसे केन्द्रीकरण भी कह सकते हैं । पूरी शक्ति को एकत्र कर के रख देने जैसा, जहां पूरी तरह सुरक्षा मिल जाय। इस कीलन के विपरीत की क्रिया निष्कीलन की होती है,जिसका प्रयोग विशेषरुप से कीलित मन्त्रों के लिए करना अनिवार्य होता है। निष्कीलन न्यास का अंग नहीं है। कीलक के प्रयोग के समय तत्मन्त्र का मानसिक उच्चारण करते हुये,अपनी चेतना को नाभिकेन्द्र पर केन्द्रित करना चाहिये,तथा दाहिने अंगूठे से नाभिगह्वर का स्पर्श करे । नाभि बडा शक्तिकेन्द्र है । **गर्भस्थ शिशु की नाभी माता की नाभि से जुडकर पुरा देह निर्माण करती है** ।

अभीष्ट फल- ऋष्यादि न्यास का अन्तिम चरण है यह । वांछित क्रिया का समुचित परिणाम प्राप्त होना ही साधक का अभीष्ट होता है। वस्तुतः यह प्रार्थीभावावतरण की क्रिया है। अतः इस न्यास की मुद्रा होगी- खुली हुयी अञ्जलीद्वय(दोनों हाथ को एकत्र कर भिक्षा मांगने जैसी) को हृदय(भाव-केन्द्र)के समीप रख कर,विहित मन्त्र-पद का मानसिक उच्चारण । इस न्यास के समय साधक अनुभव करे कि इष्ट की कृपा बरस रही है उस पर। आगे सकाम - काम्य कर्मो की चर्चा कर चूके है । फल का प्राधान्य इसलिए है कि, मन्त्रों मे अनन्त शक्ति है, साधक इस शक्ति को कौनसी दिशा देता है। वैसे तो फलश्रुति में बहोत कुछ होता है और वर्णीत सब कुछ देनेका सामर्थ्य भी मन्त्र में है । कम से कम फलाशाय से भी उपासना करें, तो मन्त्रकी मूलशक्ति असर तो करेगी ही करेगी । **बच्चे दवा नहीं खाते इसलिए उनको दवाकी गोली सुगरकोटेड बना कर देते है, सिरप भी सुन्दर फ्लेवर युक्त बनाके देते है, इस बहाने दवा का सेवन करते है और दवा अपना असर देना शरू करती है** । दूसरी बात कहे, यदि आप कोई निजी कार्य के लिए किसी व्यक्ति का संपर्क करते है, व्यवहार वाणिज्य प्रधान हो । वित्त व्यवहार के बाद (सौदा अनुसार) आपका कार्य सिद्ध हो जाता है, फिर वह व्यक्ति के संपर्क से आप बार-बार आपका कार्य कराते है । दीर्घ काल के बाद आपकी मित्रता बढती है, आत्मीयता आ जाती है, फिर व्यापारिक सम्बन्ध से अपनापन ज्यादा लगता है, ठीक इसी प्रकार सकाम भक्ति-उपासना से भी धीरे-धीरे ईश्वरानुराग बढता ही है, चाहे उसकी कक्षा निम्न ही क्यो न हो । **इस से मन्त्रमें श्रद्धा भी बढती है और शनैःशनैः भौतिक सुखों से उपरति होती है, इष्ट तादात्म्य ही शेष रहता है** ।

न्यास एवं न्यास के प्रकार - अस् क्षेपणे स्थापने च । न्यासस्तु देवतात्मत्वात्स्वात्मनो देह कल्पना - अपने शरीर को देवतात्मक समझने (वस्तुतः देवतात्मक तो है ही) हेतु न्यास किया जाता है । कृतेनयेन देवस्य सारुप्यं याति मानवः।। तथाच - **ऋषिच्छन्दो देवतानां विन्यासेन विना,जप्यते साधितोऽयेष तुच्छ फलं भवेत्** ।। अर्थात् ऋषि,छन्द, देवता का विन्यास किए विना, जो मन्त्र-जप किया जाता है, उसका फल तुच्छ यानी न्यून हो जाता है। मातृका शब्द से विश्व को उत्पन्न करनेवाली नादात्मिकाशक्ति का बोध होता है । अतः ये मातृकाए साक्षात् शक्ति-स्वरुपा है।न्यासस्तु देवतात्मत्वात्स्वात्मनो देह कल्पना - अपने शरीर को देवतात्मक समझने (वस्तुतः देवतात्मक तो है ही) हेतु न्यास किया जाता है । **न्यासंविनाजपं प्राहुरासुरं विफलंबुधाः । न्यासात्तदात्मको भूत्वा, देवोभूत्वा तु तंयजेत् ।। अकृत्वा विधिवन्न्यासान्नाचार्याम् अधिकारवान् । चैतन्यंसर्वभूतानांशब्दब्रह्मेति मेमतिः** ।। बिना न्यास किए किए गए जप का फल नहीं मिलता । न्यास से देवता को स्वहृदय में आत्मसात् करके उपसना मार्गपर प्रशस्त होते है । आगे भी बताया है कि किसान बनकर ही किसानसंघ में सम्मिलित होते है और व्यापारी बनकर ही व्यापारी महामण्डल में । कवि बनकर कवियों के साथ बैठते है ऐसे ही भक्त (भगवद्रूप) बनकर भगवान से समीप जाना चाहिए । जीवमात्र परमात्मा

का अंश है **ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन** । अंश की अंशी के प्रति गति सहज होती है, जैसे दिपक की ज्योत उपर होती है क्योंकि उसका (तेज) का अधिष्ठान सूर्य है और पानी कहीं भी हो वह समुद्र की तरफ बहता है क्योंकि उनका उद्गम समुद्र है ।

एक अति महत्व की बात करते है - अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्... चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत् -ऐत. ब्रा.२.४.२। **स ईभतेमे नु लोकालोकपान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् । तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखंनिरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी इमभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यतहृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः** - ऐते प्र.खं.१.१-४।। **ता एता देवता सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्राजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति** - ऐते.द्वि.द्वि.शं १।। ब्राह्मण ग्रंथो में कहा है कि, परमात्मा ने देवताओं को उत्पन्न किया और उनके आश्रय के लिए शरीर बनाया, जिसमें उन्हें उन इन्द्रियों के अभिमानी देवता बनाकर स्थिर किया । **ताभ्यः पुरूषमामयत्ता अब्रुवन्सुकृतं वतेते पुरूषो वाव सुकृतम् । ता अब्रवीद्यथाऽयतनं प्रविशतेते** - एत.१.२.३ परमात्माने देवताओं के लिए मानव शरीर उपस्थित किया और देवता इसमें प्रविष्ट हो गए । अग्नि ने वाक् बनकर मुख में प्रवेश किया । नाक में होकर वायु देवता-प्रविष्ट हुए । सूर्य ने नेत्रों में निवास किया । दिग्पाल कानों में प्रवेश कर गये । चन्द्रमा मन बनकर हृदय में समाया । यदि हम देव, वेद मन्त्र, वाक्, जप, स्वर के तात्विक स्वरूप को समझ सके तो निस्सन्देह मन्त्रशक्ति के अद्भुत चमत्कार मूर्तिमान होकर सामने खड़े हो सकते हैं । जब हमारे में देहासक्ति, भौतिकता बढती है तो, आसुरी शक्तियां हितशत्रु बनकर संग्राम करनेको उद्यत होती हैं । मन में तामसिक व आसुरी शक्तियों का उपद्रव बढता हैं, तब दैवीशक्तियों का ह्रास होता है, निर्बल होने लगती है, क्योंकि उनका आहार हव्य है, जो यज्ञ, उपासना से पुष्टि मिलती है, उनका बल कम होता जाता है, देवताओं का बल क्षीण होता जाता है । जो पदार्थ देवताओं के लिए उपयुक्त होते है, उसे हव्य कहते है, पितृओं के लिए उपयुक्त होते है, उसे कव्य कहते है । हव्य न मिलने से देवों का बल क्षीण होता है और वे असुरों से पराश्त होते है । इसीका उल्लेख अन्य पुराणों एवं दुर्गा सप्तशती में भी है । दुर्गासप्तशती में कथा इस प्रकार है -
एतेषां ज्ञानेन्द्रियादीनामधिपतयो दिगादयः । दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवन्हींद्रोपेन्द्रमित्रका । तथा चन्द्रश्चतुर्वक्त्रो रूद्रःक्षेत्रज्ञ ईश्वरः ।। क्रमेण देवताः प्रोक्ताः श्रोत्रादीनां यथाक्रमात् ।।
जित्वा च सकलान्देवानिद्राऽभूमहिषासुरः । अन्येषां ताधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति । स्वर्गान्निराकृता: सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥७॥

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् । प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ ४३॥ तुष्टवुस्तां सुरा देवीं सहदिव्यैर्महर्षिभिः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ अर्थात् आसुरी शक्तियोंने देवताओं को पराश्त किया, इन्द्रादि देवताओं के अधिकारों को स्वयं भोगने लगा । परास्त देवता स्वर्ग से निकाले गए, जो पृथ्वीपर बलहीन होकर विचरण करने लगे । हमारे इन्द्रियों के देवता भी जब भोगासक्ति एवं देहासक्ति से परास्त होते है, तब मन्त्ररूपी महाशक्ति से उन्हे शक्तिमान करना होता है । न्यास के द्वारा देवताओं की शक्ति पुनःस्थापित कर सकते है ।

न्यास विषये आगे विचार करते है । न्यास के कई प्रकार है, जैसे ऋष्यादि न्यास, करादि न्यास, हृदयादि(षडंग) न्यास, गोलकन्यास, एकादश न्यास, षोढान्यास, मातृका न्यास, पीठन्यास इत्यादि ।

ज्ञानार्णवतन्त्रम् में कहा गया है - **हृदयं च शिरो दवि ! शिखां च कवचं ततः। नेत्रमस्त्रं न्यसेत् ङेऽन्तं,नमः स्वाहा क्रमेण तु ।। वषट् हुं वौषडन्तं च, फडन्तं योजयेत् प्रिये ! षडङ्गोऽयं मातृकायाः, सर्वपाप हरः स्मृतः।।** षडङ्गन्यास के करने में इष्ट-मन्त्र-बीज को ही छः दीर्घस्वरों से युक्त करके, तत्तद् अंगों में प्रतिष्ठा करने की भावना की जाती है। कुछ मन्त्रों के षडंगन्यास में उनसे सम्बन्धित विशिष्ट देवतात्मक पदों की योजना करने की विधि भी मिलती है। हालांकि सबका उद्देश्य (लक्ष्य) मात्र एक ही है - देवमय होने का प्रयास।

ऋष्यादिन्यास - कृतेनयेन देवस्य सारुप्यं याति मानवः।। तथाच- ऋषिच्छन्दो देवतानां विन्यासेन विनाजप्यते साधितोऽयेष तुच्छ फलं भवेत् ।। अर्थात् ऋषिछन्ददेवता का विन्यास किए विनाजो मन्त्र-जप किया जाता हैउसका फल तुच्छ यानी न्यून हो जाता है। मातृका शब्द से विश्व को उत्पन्न करने वाली नादात्मिकाशक्ति का बोध होता है। अतः ये मातृकाए साक्षात् शक्ति-स्वरुपा हैं।

षोढान्यास - न्यास की पराकाष्ठा है - षोढान्यास । गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशिरूपीणिम्, देवी मन्त्रमयीं नौमिं मातृकापीठ रूपिणीम् । षोढ़ा का शाब्दिक अर्थ है छः प्रकार का । यह अति गोपनीय न्यास है । इसकी विधि अलग-अलग महाविद्याओं के लिए अलग-अलग है। इसकी चर्चा श्रीकालीनित्यार्चन,श्रीकल्पद्रुमादि ग्रन्थों में विशेष रुप से मिलती है। कहते हैं कि यह न्यास अपने आप में एक साधना तुल्य है। विशेष प्रचलित षोढान्यास के अन्तर्गत गणेश सूर्यादिनवग्रह, अश्विन्यादिनक्षत्र, मेषादिराशि, शिख्यादि योगिनी, विविध पीठादि का प्रयोग किया जाता है। इसकी साधना से साधन-पथ के सारे विघ्नों का नाश होकर,साधक का उत्तरोत्तर विकास होता है । सामान्य दैवी शक्तियां भी साधक को विचलित नहीं कर पाती ।

पञ्चभूतांगदेवानां न्यसनान्यास उच्यते - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशादि पंचमहाभूतासृत देवों की स्थापना करने से ही न्यास की क्रिया सम्पन्न होती है।चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः । तत्प्राप्य कुण्डीलीरुपं,प्राणिनां देह-मध्यगं । वर्णात्मनाऽऽविर्भवति,गद्य-पद्यादि भेदतः।। सभी भूतों का चैतन्य रुप शब्दब्रह्म ही है। वही कुण्डलिनी रुप में समस्त प्राणियों में स्थित है, जो वर्णात्मा द्वारा गद्य-पद्य रुपात्मक व्यक्त होता है।

मातृकान्यास - जैसा कि इस न्यास के नाम से ही स्पष्ट है । इसमें मातृकाओं अर्थात् वर्णों(अक्षरों)की स्थापना, शरीर के विशिष्ट अंगों में विधि पूर्वक की जाती है । अकारादि वर्णमाला का ही सांकेतिक नाम मातृकाहै। वर्ण या अक्षर शब्द-ब्रह्म या वाक् शक्ति के स्वरुप हैं। इनका सूक्ष्म रुप विमर्श-शक्ति के नाम से ख्यात है,जिसे परावाक् कहतें हैं, जिसमें स्फुरणा मात्र होती है। यही मातृका या चैतन्यात्मक शब्द-ब्रह्म हमारे शरीर में कुण्डलिनी के रुप में व्यक्त हुयी है। सृष्टि का सृजन वर्णों (ध्वनियों) से ही हुआ है। मातृका शब्द से विश्व को उत्पन्न करने वाली - नादात्मिकाशक्ति का बोध होता है। अतः ये मातृकाए साक्षात् शक्ति-स्वरुपा हैं । भावनायोग द्वारा इन्हें शरीर के अंगों में न्यस्त करके,साधक विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है, जो शक्ति सुप्त पड़ी है (प्राणीमात्र में), उसेमें चैतन्य (जागृत) करता है।

उक्त मातृकान्यास के दो भेद हैं, वहिर्मातृका न्यास और अन्तर्मातृका न्यास । अन्तर्मातृका के पुनः तीन उपभेद होते हैं-सृष्टि-मातृका-न्यास, स्थिति-मातृका-न्यास, संहार-मातृका-न्यास । सृष्टि-मातृका-न्यास में भाव-शरीर की उत्पत्ति की जाती है, स्थिति-मातृका-न्यास में उत्पन्न किये गये, शरीर में देवता से तादात्म्य स्थापित किया जाता है, तथा संहार-मातृका-न्यास में साधना-विरोधी मल से आवृत भौतिक शरीर का विलयन किया जाता है। मातृका न्यास के प्रारम्भ में बहिर्मातृका-न्यास का ही अभ्यास किया जाता है, जिसमें उक्त वर्णों को शरीर के विभिन्न अंगों पर आरोह-अवरोह क्रम से न्यस्त करते हैं,और अन्तर्मातृका-न्यास में शरीर के भीतर जाकर विविध चक्रों(पद्मों)में न्यस्त करते हैं। इस प्रकार मातृका-न्यास अपने आप में अद्‌भुत क्रिया है, जिसे साधने से साधक दिव्यभाव को प्राप्त होता है।

स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारो वनिनोयते । ब्रह्मचारिणःउत्पत्ति स्त्रियःशूद्रस्य चेष्टत ।। इस प्रकार गृहस्थ के स्थितिक्रम उत्तम माना है । ये न्यास का विधि आगे बताएंगे ।

मुद्रा - कुछ कार्यविशेष के लिए हम सामान्य व्यवहार में भी मुद्राओं का उपयोग करते है,जैसे कि किसीको समीप बुलाना,चूप करना,नीकालना, क्षुधा-तृषा, बच्चो को बात समझाना,पशु-पक्षीयों से व्यवहार करना इत्यादि । संगीतनृत्य में भावोद्वेगा एवं रसानुभूतियो की अभिव्यक्ति का माध्यम मुद्रा ही है । **आत्मना जापते मोदता मुद्रा**

परिकीर्तिता ता ज्ञेया धारणाध्यान-समाध्याख्यास्तु मोक्षदाः - सच्चे योगी द्वारा सदैव आत्मानन्द में ही निमग्न रहकर सुखी रहना ही मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा को जानकर ही धारणा, ध्यान तथा समाधि की अवस्था को पारकर योगी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

मुद्रा के विषय में शास्त्र क्या कहते है - भगवति ललिता को जो आनन्दित कर दे वही मुद्रा है । योगिनीहृदय में - **श्रुणुदेवी प्रभ्यामि मुद्राःसर्वार्थसिद्धिदाः। याभिर्विरताभिस्तु सम्मुखा त्रिपुरा भवेत् ।।** भगवति को प्रत्यक्ष करानेवाली बताया है । **मोचयन्ति प्रहादिभ्यः पापौघं द्रावयन्ति च । मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः शक्तयोः मताः।** उसे पापो का मोचन करनेवाली शक्ति कहा है । **मन्त्र वै ज्ञानशक्तिश्च मुद्रा तैव क्रियात्मिका** । स्वतंत्र तंत्र में कहा है **परमात्मनोः क्रियाशक्ति । मुद्रया तु तया देवी आत्ममा वै मुद्रितो यदा । तदा चौर्ध्वं त विसरेद्वाधानैनोर्ध्वतः क्रमात्** - नेत्रतंत्र ७.३३। स्वात्मस्वरूपाभिव्यक्ति के तीन साधन है मन्त्र, ध्यान, मुद्रा । शैवशाक्त परम्परा में मुद्रा का अर्थ है शक्ति । आनन्दोल्लास श्रीःक्षुल्लकिताष्टमहासिद्धिसौभाग्या । दृश्यते यत्र दशायां सैव दवस्य सर्वमुद्रा - महेश्वरानन्द कृत परिमल ।। योग प्रचलित महासिद्धियों को भी छोडकर ऐश्वर्यरूपिणी, परमात्मा को उत्साहित करनेवाली श्री – परमाह्लादिनी शक्ति जो स्वानुभूतिरूपेण प्रकाशित होती है – वही परमात्मा की पूजा की मुद्रा है । मुदस्वरूपलाभाख्यं देहद्वारेणचात्मनाम् । रातपर्यति यत्तेन मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ।। देवीयामल में उसे मात्र कर्मकाण्डीय न मानकर उसके तात्विक स्वरूप पर कहा है कि, मुद्रा देह द्वारा स्वात्मस्वरूपोन्ममीलन – स्वरूपालाभ कराकर आनन्द प्रदान करानेवाली क्रिया है । **चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शने यदा । करोति स्वेच्छापूर्णा विचिकीर्षासमन्विता ।। क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनाद्द्रावणात्तथा । मुद्राख्या सा यदा संविदम्बिका विकलामयी** - योगिनी हृदय । मुद्रा ईश्वर को प्रसन्न करनेवाली विश्व की क्रिया शक्ति है ।

आगमग्रंथो में देवता का आवाहन, अभिमन्त्रण, नैवेद्यादि समर्पण के लिए विशेष मुद्राओं का संकेत है । अथावाहनादि विधिः - आवाहनादिमुद्राश्च संदर्श्यावाहनं बुधः। तथासंस्थापनं सन्निधापनं सन्निरोधनम् ६.२६॥ सकलीकरणं चावगुण्ठनं च यथाविधि । अमृतीकरणं कुर्यात्परमीकरणं तथा ६.२७॥ आवाहनंचादरेण सम्मुखीकरणं प्रभोः। भक्त्या निवेशनं तस्य संस्थापनमुद्राहृतम् ६.२८॥ तवास्मीति त्वदीयत्वदर्शनं सन्निधापनम् । क्रियासमाप्तिपर्यन्तं स्थापनंसन्निरोधनम् ६.२९ ॥ सक्लीकरणंचोक्तं तत्सर्वाङ्गप्रकाशनम् । आनन्दघनतात्यन्तप्रकाशो ह्यवगुठनम् ६.३०॥ अमृतीकरणं सवैरेवाङ्गैरवरुद्धता । परमीकरणं नामाभीष्टसम्पादनं परम् ६.३१ ॥ मुद्रा विधानम् नाम की पुस्तिका में मुद्राओं को आकृतियों के साथ बतायी गई है, यद्यपि सब मुद्राओं का ज्ञान न हो तो भी योनि मुद्रा तो जाननी ही चाहिए, पूजा, जपोपरान्त इसके दर्शन से लाभ होता है – पारिभाषिकयोनिमुद्रा यथा। मन्त्रमुक्तावल्याम् । मन्त्रार्थमन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां नवेत्ति यः । शतकोटिजपेनापि तस्यसिद्धिर्नजायते- शाक्ता.तर. ।। योनिमुद्रां

ततःपश्चात्दर्शयित्वा विसर्जयेत् ॥ आकृति परिशिष्ट में है । द्वौ पाणी प्रसृतीकृत्य कृत्वा तूत्तानमञ्जलिम् । अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयोस्ततः ॥ अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठां पुरो न्यसेत् । दक्षिणस्यानामिकायां कनिष्ठां दक्षिणस्य च ॥ अनामिकायाः पृष्ठे तु मध्यमे विनियोजयेत् । द्वि तज्न्यौं कनिष्ठाग्रे तदग्रेण्व योजयेत् ॥ योनिमुद्रा समाख्याता देव्याः प्रीतिकरी मता ॥ त्रिवारं दर्शयेदग्रे मूलमन्त्रेण साधकः । तां मुद्रां शिरसि न्यस्य मण्डलं विन्यसेत्ततः ॥ इति कालिकापुराणे ५३ अध्याय ॥

इस्लाम धर्म में, आपने नमाज़ी भाईयों को देखा होगा, नमाज़ के दरम्यान हाथ मुंह पर फेरते है, मुख दिशाओं में गुमाते हैं, ईसाई लोग भी अपने स्कंध एवं हृदय पर क्रोस बनाते है, यह प्रकारान्तरेण मुद्रा ही है ।

माला, प्रकार, संस्कारदि - जनसामान्य में भ्रम है कि माला का उपयोग मात्र गिनती के लिए ही है । **माला के मनको का गठन भी एक विशिष्ठ प्रक्रीया के आधारित है । माला में से एक विशिष्ट ऊर्जा प्रवाहित होती है** । माला धारण किए हुए और माला से जप करते हुए, शिवजी, दत्तात्रेय, गायत्री, ब्रह्माजी माला धारण करी है । माला मात्र संख्या का साधन ही नहीं, उनके प्रकार एवं संस्कार, गठन की रीत, फेरने की रीत का भी शास्त्रों में उल्लेख है । **मात्र हिन्दु ही नहीं, ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्धादि सम्प्रदायों में भी उल्लेख है । मुस्लिम धर्म मे ईसको तस्बीह कहते है । यह माला(तस्बीह)में मनके १०१ होते है** । माला में रूद्राक्ष, प्रवाल, मौक्तिकादि का उपयोग सूचक है । ये मात्र संख्या गणन का उपकरण नहीं है । वे ऊर्जावान् है, उनका विशिष्ट उपयोग है । अक्षमालिकोपनिषद् में माला का वर्णन है । माला विषये शास्त्रीय मत निम्नानुसार है । माला के लिए ब्राह्मणग्रंथो से लेकर पुराण, तंत्रागमों पर्यन्त चर्चा मिलती है ।

जपसंख्यातुकर्तव्या नासंख्यातंजपेत्सुधीः। नसंख्याकारकस्यास्य सर्वंभवति निष्फलम् ॥ तन्त्रअंगिराऋषि के अनुसार - **असंख्यातुयज्जप्तंतत्सर्वंनिष्फलंभवेत्** । बिनामाला संख्याहीन जपका कोई फल नहीं मिलता है । कुछ चर्चा हम आगे भी कर चुके है ।

माला में मनकों की संख्या - अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रंज्ञानेनसंजपेत् । मुण्डमालातन्त्रे - मणिसंख्या महादेवि! मालायाःकथयामि ते । पञ्चविंशतिभिर्म्मोक्षं पुष्ट्यै तु सप्तबिंशतिः। त्रिंशद्भिर्धनसिद्धिः स्यात्पञ्चाशन्मन्त्रसिद्धये । अष्टोत्तरशतैःसर्वसिद्धिरेव महेश्वरि । एतत्साधारणं प्रोक्तं विशेषंकामिनां वदे।जपसंख्या तु कर्तव्या नासंख्यातं जपेत्सुधीः । नसंख्याकारकस्यास्य सर्वंभवतिनिष्फलम् ॥ अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥

उपरोक्तानुसार जप संख्या १०८ की बनती है । शिवजी के मुण्डमाला के अनुसार देवी के जन्मो के साथ संख्या का संबंध है ।

अन्य तर्क ऐसे भी है - षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्त्राण्येकं विशांति। एतत् संख्यान्तितं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।।माला के दानों की संख्या १०८ संपूर्ण ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करती है।माला में दानों की संख्या १०८ होती है। शास्त्रों में इस संख्या १०८ का अत्यधिक महत्व होता है। माला में १०८ ही दाने क्यों होते हैं, इसके पीछे कई धार्मिक, ज्योतषिक और वैज्ञानिक मान्यताएं हैं। सूर्य की एक-एक कला का प्रतीक होता है माला का एक-एक दाना। एक मान्यता के अनुसार माला के १०८ दाने और सूर्य की कलाओं का गहरा संबंध है। एक वर्ष में सूर्य २१६००० कलाएं बदलता है और वर्ष में दो बार अपनी स्थिति भी बदलता है। छह माह उत्तरायण रहता है और छह माह दक्षिणायन। अत: सूर्य छह माह की एक स्थिति में १०८००० बार कलाएं बदलता है। पृथ्वी भी २४ घण्टे मे २१६०० कला व्यतित करती है। इस अर्ध दीनमान १०८०० होता है। उसका शतांश आत्मपुष्टि में उपयोग करने का अर्थ है १०८ संख्या जप। ज्योतिष के अनुसार ब्रह्मांड को १२ भागों में विभाजित किया गया है। इन १२ भागों के नाम मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन हैं। इन १२ राशियों में नौ ग्रह सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु विचरण करते हैं। अत: ग्रहों की संख्या ९ का गुणा किया जाए राशियों की संख्या १२ में तो संख्या १०८ प्राप्त हो जाती है। एक अन्य मान्यता के अनुसार ऋषियों ने में माला में १०८ दाने रखने के पीछे ज्योतिषी कारण बताया है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुल २७ नक्षत्र बताए गए हैं। हर नक्षत्र के ४ चरण होते हैं और २७ नक्षत्रों के कुल चरण १०८ ही होते हैं। माला का एक-एक दाना नक्षत्र के एक-एक चरण का प्रतिनिधित्व करता है।

जप संख्या - जाप संख्या निशित है, उसे तो करना ही पडेगा उसको करने के बाद ही सिद्धि मिलती हैउसका विज्ञान यह है की हमारे शरीर में कुल १०८ शक्ति केंद्र है। इसका रहस्य गुरुगम्य है। प्रत्येक के एक अधिस्थाता देव और देवी है । माला में जो सुमेरू होता है, उसको छोडकर जप किया जाता है। मेरुहीना च या माला मेरु-लङ्घा च या भवेत्। अशुद्धप्रतिकाशा च सामाला निष्फला भवेत् - मुण्डमालातन्त्र। मेरूंत्यक्त्वा हरिंभजेत्। इसे शिवजी की जटा भी मानते है, यथा उसका उल्लंघन नहीं किया जाता।

जैन मत से - बारह गुण अरहंता, सिद्ध अट्ठे व सूरि छत्तीसं। उज्झाया पणवीसं, साहु सत्रवीस अट्ठसयं - अर्थात् अर्हत् के बारह गुण, सिद्धो के आठ गुण, आचार्यों के छत्तीस गुण, उपाध्यायों के पच्चीस गुण एवं साधुओं के सत्ताईस गुण सर्व मिलाकर पंच परमेष्ठी के १०८ गुण होते है, इसी प्रकार नवकरवाली (माला) के भी १०८ मनके दाने होती हैं।

माला के प्रकार - वैष्णवेतुलसीमाला, गजदन्तैर्गणेश्वरे। त्रिपुराजपनेशस्ता रूद्राक्षैः रक्तचन्दनैः ।। रक्त चंदन, रक्तचंदन, मूंगा, स्फटिक, रुद्राक्ष, काठ, तुलसी, मोती, कीमती पत्थर एवं कमल गट्टे आदि प्रकार की माला होती है। माला के बिना संख्याहीन

किए गए मंत्र जप का भी पूर्ण फल प्राप्त नहीं हो पाता है । अत: जब भी मंत्र जप करें, माला का उपयोग अवश्य करना चाहिए - नित्यातन्त्रे नवमपटले - ईश्वर उवाच ।

अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम्। अथ मुक्ता-फलमयी भोगमोक्षप्रदायिनी। राजवश्यकरी सर्व-सिद्धिदा नात्र संशयः। यथा मुक्ताफलमयी तथा स्फटिकनिर्मिता। रुद्राक्षमाला गिरिजे मोक्षदा च समृद्धिदा। प्रवालघटिता माला वश्यदा कर्मसाधिनी। माणिक्यरचिता माला साम्राज्यफलदायिनी। पुत्रजीवक-माला तु विद्यालक्ष्मीप्रदायिनी। पद्मवीजाक्षमालातु महालक्ष्मीप्रदायिनी। रक्तचन्दनवीजाक्षमाला-वश्यफलप्रदा। मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले । स्फाटिकैर्मोक्षलाभः स्यात्रुद्राक्षैर्बहुपुत्रदा । जीवपुत्रैश्चधनदा पाषाणैर्गोगमोक्षदा । शुद्धस्फटिकमाला तु महासम्पत्प्रदा प्रिये! । श्मशान धूस्तुरैर्मालाएका धूमावती विधौ । तथा - मणिरत्नप्रबालैश्चहेमराजतसम्भवा । माला कार्य्या कुशग्रन्थ्या सर्वभोगफलप्रदा । समायाचारतन्त्रे द्वितीयपटले - पूर्व्वाम्नायादि सर्वेषां मालां शृणु यथाक्रमम् । जप्प्वा येनाशु लभते फलं देवैश्च दुर्ल्लभम् । अक्षमाला प्रथमतो मातृकार्णस्वरूपिणी । अथ मुक्तामयी माला रतिमोक्षफलदा। सर्वसिद्धिकरी माला सर्वराजवशङ्करी । प्रवालमालावश्यार्थं सर्वकार्यफलप्रदा - माणिक्यरचितामाला साम्राज्यफलदायिनी । पद्माक्षरचिता मालायशी लक्ष्मीप्रदा सदा । सुवर्णरचिता माला सर्वकाम-फलप्रदा । रक्तचन्दनमाला च भोगदा मोक्षदाभवेत्। रुद्राक्षरचिता माला सर्वकामफलप्रदा । सर्व-मालां प्रपूज्याथ चन्दनेन विलेपिताम् । समाश्रित्यजपेन्नित्यं यथोक्तफलमाप्नुयात्। एता मालाश्च सुभगे!पञ्चाम्नायेषु पूजिताः - मुण्डमालातन्त्रे। देव्युवाच - अक्षमाला तु कथिता यत्नतो न प्रकाशिता। अक्षमालेति किं नाम फलं वा किं वदस्व मे। ईश्वर उवाचअक्षमाला तु देवेशि! काम्यभेदादनेकधा । भवति शृणुतत् प्राज्ञे! विस्तरादुच्यते मया । अनुलोमविलोमेनक्लृप्तया वर्णमालया । आदिलान्तलादिआन्तक्रमेण परमेश्वरि! । क्षकारं मेरुरूपञ्च लङ्घयेन्न कदाचन । मेरु लङ्घनदोषस्तु तत्रैव - चित्रिणी विसतन्त्वाभा ब्रह्मनाडीगतान्तरा । तया संग्रथिता माला सर्वकामफलप्रदा । अष्टोत्तरशत जप्त्वा आदिक्लीवं समाचरेत्। ऋॠऌॡद्वयं यत्तु तद्धिक्लीवं प्रचक्षते । वर्गाणामष्टभिर्वापि काम्यभेदात् क्रमेणतु अकचटतपयशा अष्टौ वर्गाः प्रकीर्त्तिताः। मालया-जपविशेषस्तु नित्यातन्त्रे - अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन सुलचने!। समाश्रिव्य जपेद्विद्वान् लक्षमात्रमन-न्यधीः। योषितः सकला वश्याः सप्तद्वीपस्य पार्बति!। ततो द्वितीयलक्षञ्च प्रजपेद्वीरवन्दिते! । पाताल-तलनागेन्द्रकन्या वश्या भवन्ति हि। ततो लक्षत्रवंमद्रे! प्रजपेत् साधकोत्तमः । देवाङ्गना भवन्त्येववश्यास्तस्य महेश्वरि! । महापातककोटीक्ष नाश-येत् कमलेक्षणे! अभिमानेन सौभाग्यं सौख्यं सौ-न्दर्य्यमाप्नुयात् । चतुर्लक्षं प्रजप्याथ महायोगीश्वरोभवेत्। पञ्चलक्षजपादृवि! कुवेरपदवीं व्रजेत् । षड्लक्षंतु प्रजप्याथ देवपूज्यो भवेन्नरः । अणिमाद्यष्टसिद्धीनांनायको नात्र संशयः। राजानो वशगास्तस्य योषितश्च विशेषतः । नवलक्षं महादेवि! योजपेत् साधकोत्तमः। रुद्रमूर्त्तिः स्वयं साक्षात् कर्त्ता हर्त्ता न संशयः - समया-चारतन्त्रे । उत्तराम्नाये या माला भूयः शृणु वदामि ते। अथ वर्णमयी

माला सर्व्वोत्कृष्टा च सा मता । महाशङ्खमयी माला वाञ्छितार्थफलप्रदा। उडुम्बरफलस्याथसूक्ष्मस्याथ कृता मता । योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डेद्वितीय पटले। ईश्वर उवाच। वर्णमाला शुभा प्रोक्तासर्वमन्त्रप्रदीपनी। तस्याः प्रतिनिधिर्देवि! महाशङ्ख-मयी शुभा। महाशङ्खः करे यस्य तस्य सिद्धिरदूरतः। तदभावे वीरवन्द्ये! स्फाटिकी सर्वसिद्धिदा । मणिभेदेनफल भेदमाह मुण्डमाला तन्त्रे त्रिंशतैश्वर्य्यफलदा पञ्च-विंशैस्तु मोक्षदा। चतुर्द्दशमयो मोक्षदायिनी भोगवर्द्धिनी । दशपञ्चात्मिका माला मारणोच्चाटने स्थिता। स्तम्मने मोहनेवश्य रोधने अञ्जने तनोः। पादुकासिद्धिसंघे च शतसख्याप्रकीर्त्तिता । अष्टोत्तरशतं कुर्य्यादथवा सर्वकामदम् - योगिनी तन्त्रे । मणिसंख्या महादेवि! मालायाः कथयामि ते । पञ्चविंशतिभिर्म्मोक्षं पुष्ट्यै तु सप्तबिंशतिः। त्रिंशद्भिर्धन सिद्धिः स्यात् पञ्चाशन्मन्त्रसिद्धये। अष्टोत्तरशतैःसर्वसिद्धिरेव महेश्वरि!। एतत्साधारणं प्रोक्तं विशेषंकामिनां वदे। शिवौवाच। दन्तमाला जपे कार्य्येगले धार्य्या नृणा शुभा । दशनैर्यदि कर्त्तव्यां संख्यादन्तस्यते प्रिये । सर्वसिद्धिप्रदा माला राजदन्तेन मेरुणा । अन्यत्रापि महेशानि! मेरुत्वेनैवमादिशेत् । नित्यं जपकरे कुर्य्यान्न काम्यमवरोधनात् । काम्यमपि करे कुर्य्या-न्मालाऽभावे प्रियंवदे। अत्राङ्गुल्या जपं कुर्य्यात् अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत् । अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं तन्निष्फलंभवेत् । उत्पत्तितन्त्रे प्रथमपटले। नित्यं नैमित्तिकं काम्यंकरे कुर्य्याद्विचक्षणः । करमाला महादेवि! सर्वदोषविवर्जिता । छिन्नभिन्नादिदोषोऽपि करे नास्ति कदाचन । अक्षयस्तु करोदेवि! माला भवति तादृशी । ग्रन्थिः साकुण्डलीशक्तिः पञ्चाशद्वर्णरूपिणी । अतएव महेशानि! करमाला महाफला - योगिनीतन्त्रे । यहां हम करमाला, वर्णमाला (अक्षमाला) का शास्त्रानुसार चर्चा करेंगे । आम्नाय एवं कामना के संदर्भ मे माला के प्रकारों का वर्णन तन्त्रागमों मे विस्तृतरूप से मिलता है ।

करमाला - करमाला का चित्र परिशिष्ट में दिया है । योगिनीतन्त्र में इस प्रकार है - नित्यंनैमित्तिकंकाम्यंकरेकुर्य्याद्विचक्षणः । करमालामहादेवि सर्वदोषविवर्जिता ।। छिन्नभिन्नादिदोषोऽपि करेनास्ति कदाचन। अक्षयस्तुकरोदेवि मालाभवतितादृशी।। ग्रन्थिः सा कुण्डली शक्तिः पञ्चाशद्वर्णरूपिणी । अत एव महेशानि करमाला महाफला।।

पुराणों में भी कई जगह पर इसका विधान है । मुण्डमालातन्त्र में इस प्रकार है ।
अनामिका द्वयं पर्वप्रादक्षिण्यक्रमेण तु । तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता ॥
कनिष्ठामूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च । तर्जनीमूलपर्यनतमष्टपर्वसु संजपेत ॥

अक्षमाला - सभी मालाओंमें वर्णमालाको सर्वश्रेष्ठ एवं सद्यसिद्धिदायिनी बताई है ।
श्रीकण्ठादिक्षान्ताः सर्वेवर्णाः बिन्दुसहिता मातृका सर्वज्ञताकरी विद्या । मुण्डमालातन्त्रे - देव्युवाच–
अक्षमाला तु कथिता यत्नतोनप्रकाशिता। अक्षमालेति किं नामफलं वा किं वदस्व मे। ईश्वर उवाच-

अक्षमाला तु देवेशि काम्यभेदादनेकधा। भवति शृणुतत् प्राज्ञे विस्तरादुच्यते मया ।। अनुलोमविलोमेनक्लृप्तया वर्णमालया। आदिलान्तलादिआन्तक्रमेण परमेश्वरि ।। क्षकारं मेरुरूपञ्च लङ्घयेन्न कदाचन।गुरूं प्रकाशयेद्विद्वान् न तु मन्त्रं कदाचन ।। अक्षमालाञ्च विद्याञ्च न कदाचित्प्रकाशयेत् - मु.मा. ४४ ।। क्रमोत्क्रमगतैर्माला मातृकार्णैः क्षमेरुकैः । सबिन्दुकैः साष्टवर्गैरन्तर्यजनकर्म्मणि ॥ आदि कु चु टु तु पु यु शवोऽष्टौ वर्गाः प्रकीर्त्तिताः । अकारादिवर्णान् सबिन्दून् प्रत्येकं कृत्वा शतं संजप्य अकारादीनां कवर्गा-दीनाञ्च वर्णाणां अन्तिमवर्णं सानुस्वारं कृत्वा पूर्ब्बमुच्चार्य्य मन्त्रजपः कार्य्यः । अनेन प्रकारेणाष्टोत्तरशतसंख्यो जपो भवति । अन्त- र्यजनमित्युपलक्षणम् । सबिन्दुं वर्णमुच्चार्य्य पश्चान्मन्त्रं जपेत् सुधीः । अकारादिक्षकारान्तं बिन्दुयुक्तं विभाव्य च ॥ वर्णमाला समाख्याता अनुलोमविलोमिका । क्षकारंमेरुमेवात्र तत्रमन्त्रं जपेन्नहि ॥इति नारदीयवचनात् ॥ प्रकारान्तरं विशुद्धेश्वरे । अनुलोमविलोमेन वर्गाष्टकविभेदतः । मन्त्रेणान्तरितान् वर्णान् वर्णेनान्तरितान् मनून् ॥ कुर्य्याद्वर्णमयीं मालां सर्व्वतन्त्रप्रकाशिनीम् । चरमार्णं मेरुरूपं लङ्घनं नैव कारयेत् ॥ इति तन्त्रसारः ॥ अपि च । अनुलोमविलोमेन क्लृप्तया वर्णमालया । आदिलान्तलादि आन्तक्रमेण परमेश्वरि । क्षकारं मेरुरूपञ्च लङ्घयेन्न कदाचन ॥ इति मुण्डमालातन्त्रम् ॥ क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या पञ्चाशद्वर्ण मालया । योजपः सतु विज्ञेय उत्तमः परिकीर्त्तितः । अकारादि क्षकारान्तावर्णमाला प्रपीर्त्तिता - सनत्कुमारीये । अकारादि क्षकारान्तवर्णरूपैक पञ्चाशज्जपमाला । यथा, सनत्कुमारसंहितायाम् । **करमाला की आकृति अंतिमपृष्ट में दी गई है, यथा यहां भाषान्तर नहीं करते है ।**

माला संस्कार विधि - जपमालां विधायेत्थं ततःसंस्कारमारभेत् । भावयेत्पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ।। तथातथातोग्रथनं मालानां तत्र शोधनम्। पूजां विधाय भक्त्या तुशुचिः पूर्वमुपोषितः। एवं मन्त्रमुच्चार्य मालां वै शोधयेन्मुनिसत्तमः । अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारन्तु कारयेत् ।। तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकां मूलमुच्चरन् । क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ।। वाग्भवञ्च तथा लक्ष्मीमक्षादिमालिकां ततः। ङेऽन्तां हृदय वर्णान्तां मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ मन्त्रयेन्मूलमन्त्रेण क्रमेणोत्क्रमयोगतः। तथैव मातृका वर्णैर्मन्त्रयेत्तान्तु मन्त्रवित् ॥ अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः । सर्वं तद्विफलं विद्यात् क्रुद्धा भवति देवता ॥ मालासंस्कारस्य नित्यतामाह रुद्रयामल ।।
अर्थात् साधक सर्वप्रथम स्नान आदि से शुद्ध हो कर अपने पूजा गृह में पूर्वोत्तर की ओर मुह कर आसन पर बैठकर,शिखाबन्ध, आचमन, प्राणायाम, देहरक्षा और पवित्रीकरण करने के बाद गणेश - गुरु - मातृपितृ स्मरण करके, अपने इष्ट देवदेवी का पूजन सम्पन्न कर ले । तत्पश्चात पीपल के ९ पत्तो को भूमि पर अष्टदल कमल की भांति बिछा ले और एक पत्ता मध्य में तथा शेष आठ पत्ते आठ दिशाओ में रखने से अष्टदल कमल बनेगा अब इन पत्तो के ऊपर आप माला को रख दे तथा अब अपने समक्ष पंचगव्य तैयार कर के रख ले किसी पात्र में और उससे माला को प्रक्षालित(धोयें)करें - पंचगव्य से माला को स्नान

कराना है - स्नान कराते हुए अं आं इत्यादि सं हं पर्यन्त समस्त स्वर वयंजन का उच्चारण करे - ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं । यह उपरोक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए माला को पंचगव्य से धो ले और ध्यान रखे इन समस्त स्वर का अनुनासिक(नाक द्वारा)उच्चारण होगा । अब माला को पंचगव्य से स्नान कराने के बाद निम्न मंत्र बोलते हुए माला को जल से धो ले - ॐ सद्यो जातं प्रद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः भवे भवे नाति भवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः । अब माला को साफ़ वस्त्र से पोछे और निम्न मंत्र बोलते हुए माला के प्रत्येक मनके पर चन्दन - कुमकुम आदि का तिलक करे । ॐ वामदेवाय नमः जयेष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कल विकरणाय नमो बलविकरणाय नमः बलाय नमो बल प्रमथनाय नमः सर्वभूत दमनाय नमो मनोनमनाय नमः । अब धूप जला कर माला को धूपित करे और मंत्र बोले - ॐ अघोरेभ्योथघोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्य: सर्वेभ्य: सर्व शर्वेभया नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य: । अब माला को अपने हाथ में लेकर दाए हाथ से ढक ले और निम्न ईशान मंत्र का १०८ बार जप कर उसको अभिमंत्रित करे - अक्षमालिकोपनिषद् से भी अभिमंत्रित करे -
ॐ ईशानः सर्व विद्यानमीश्वर सर्वभूतानाम ब्रह्माधिपति ब्रह्मणो अधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ।अब साधक माला की प्राण -प्रतिष्ठा हेतु अपने दाय हाथ में जल लेकर विनियोग करे - ॐ अस्य श्री प्राण प्रतिष्ठा मंत्रस्य ब्रह्मा विष्णु रुद्रा ऋषय: ऋग्यजु:सामानि छन्दांसि प्राणशक्तिदेवता आं बीजं ह्रीं शक्ति क्रों कीलकं अस्मिन्माले प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः । अब माला को बाये हाथ में लेकर दायें हाथ से ढक ले और निम्न मंत्र बोलते हुए ऐसी भावना करे कि यह माला पूर्ण चैतन्य व शक्ति संपन्न हो रही है -ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों अस्य मालायां प्राणा इह प्राणाः । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों अस्य मालायां जीव इह स्थितः । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों अस्य मालायां सर्वेन्द्रयाणी वाङ् मनसत्वक चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण प्राणा इहागत्य इहैव सुखं तिष्ठन्तु स्वाहा । ॐ मनोजूतिजुर्षतामाज्यस्य बृहस्पति रयज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टंयज्ञं समिमंदधातु विश्वेदेवास इहमादयन्ताम् ॐ प्रतिष्ठ ।।

अब माला को अपने मस्तक से लगा कर पूरे सम्मान सहित स्थान दे ।इतने संस्कार करने के बाद माला जप करने योग्य शुद्ध तथा सिद्धिदायक होती है - नित्य जप करने से पूर्व माला का संक्षिप्त पूजन निम्न मंत्र से करने के उपरान्त ही जप प्रारम्भ करे -

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्व मंत्रार्थ साधिनी साधय -साधय सर्व सिद्धिं परिकल्पय मे स्वाहा । ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः । मालां प्रार्थयेत् - माले माले महामाले सर्वतत्तवस्वरूपिणी । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।
त्वंमाले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदामता । तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोस्तुते ।।
त्वंमाले सर्व देवानां प्रीतिदा शुभदा भव । शिवं कुरूष्व मे भद्रे यशोपीर्यं च सर्वदा ।।

माला को तर्जनी का स्पर्श नहीं होना चाहिए। माला ढकी हुई (गुप्त) रखनी चाहिए। तर्जन्यां न स्पृशेदेनां, गुरोरपि न दर्शयेत्। जपान्तेतु च मालांवै पूजयित्वा च पोषयेत्। जपकाले तु गोप्तव्या जपमाला तु सा शुभा - मुण्डमालातन्त्र ४१..४४।।

माला निर्माण - माला विज्ञान है, जिस प्रकार यंत्र निर्माण की रीत होती है, वैसे ही मालानिर्माण की विधि भी है। शास्त्र में रूद्राक्षादि मालानिर्माण का विधान -
मुखेमुखन्तु संयोज्य पुच्छेपुच्छन्तुयोजयेत्। गोपुच्छसदृशीमाला यद्वासर्पाकृतिःशुभा।।
मुखपुच्छनियमस्तु स्वच्छन्दमाहेश्वरे। रुद्राक्षस्योन्नतंप्रोक्तं मुखंपुच्छश्चनिम्नगम्।।
कमलाक्षस्य सूक्ष्मांशैसविन्दुद्वितयंमुखम्। सविन्दुकस्यस्थूलांशं दृढंश्लक्ष्णमितिस्थितम्।।
एवंज्ञात्वा मुखंपुच्छ रूद्राक्षाम्भोरुहाक्षयोः। तत्सजातीयमेकाक्षं मेरुत्वनाग्रतोन्यसेत्।।
एकैकंमणिमादाय ब्रह्मग्रन्थिंप्रकल्पयेत्। एकैकमातृकावर्णान्ग्रथनादौ तु संजपेत्।।
ग्रन्थिनियमस्तु स्वच्छन्दमाहेश्वरे। त्रिवृत्तिग्रन्थिनैकेन तथार्द्धेन विधीयते।।
अथवा नवभिस्तन्तुभिश्चाथरज्वुं कृत्वोपवीतवत्। सार्द्धद्वयावर्त्तनेन ग्रन्थिं कुर्य्याद्यथा दृढम्। नवतंतुयुक्त सूत्र में मुख (अग्रभाग), पृच्छ भाग को उपरोक्तानुसार ध्यानमें रखकर ही माला निर्माण करना चाहिए - जिससे ऋण-धन ऊर्जा का संतुलन हो और सकारात्मोर्जा प्रदिप्त हो। इससे अन्तःकरण में बुद्धि की निश्चयात्मकता बढती है। माला के विषय में विपुल चर्चा का अवकाश है, यद्यपि यहां इतना पर्याप्त है।

जप के प्रकार, फल एवं नियम - यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि - गीता। सभी यज्ञों में जपयज्ञ स्वयं परमात्मा का स्वरूप है। साधना मूलमंत्रस्य पुरूश्चरणमुच्यते। **ज**कारो जन्मविच्छेदः **प**कारः पापनाशकः। तस्याज्जप इति प्रोक्तो **जन्मपापविनाशकः** - अग्नि पुराण। बीजयोनि समापत्तिर्विसर्गोदय सुन्दरा। मालिनी हि पराशक्तिनिर्णीता विश्वरुपिणी। **जपयज्ञो महेशानिमत्स्वरूपो** न संशय:। जपेन देवता नित्यंस्तूयमाना प्रसीदति।। प्रसन्ना विपुलां कामान्दद्यान्मुक्ति च शाश्वतीम् - हे देवि! जप करना सर्वश्रेष्ट कर्म है। जपयज्ञ स्वयं मेरा ही स्वरूप है। जप करने से देवता प्रसन्न होकर समस्त कामनाओं की पूर्ति करके मुक्ति भी प्रदान करते हैं। मनु महाराज का कथन है - विधि यज्ञा जपयज्ञोविशिष्टों दशभिगुर्णै। आगम शास्त्रों में जप की महिमा का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है - जप यज्ञात्परो यज्ञोनापरोस्तीह कश्चन:। तस्मात्जपेन धर्मार्थं-काम मोक्षाश्च साधयेत्।। जपयज्ञ के समान श्रेष्ट कुछ भी नहीं है। अत: जप करके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। अन्य-सर्वयज्ञेषु सर्वत्र**जपयज्ञ:** प्रशस्यते। तस्मात्सर्व प्रयत्नेन जप निष्ठापरो भवेत्।। अत: समस्त प्रयास करते हुए जप में पूर्ण निष्ठा रखनी चाहिए। सर्वत्र तथा सर्वकाल में जप करना प्रशस्त है।तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदम्। जन: को जानीते जननि जपनीयं जप विधौ।। आचार्यपाद शंकराचार्य जी जप को ही योगक्षेम का कारण मानते हैं - आचार्यपाद के अनुसार जप यज्ञ अत्यन्त कठिन एवं गुरूमुखगम्य है। जप किसी मंत्र विशेष का किया जाता है तथा

मंत्र अक्षरों से बनता है । अक्षर = अ+क्षरण अर्थात् जिसका नाश नहीं होता वही अक्षर है तथा मंत्र ही अक्षर ब्रह्म है । अक्षरों से बना मंत्र इसी कारण शब्दब्रह्मकहा जाता है । वेदपाठ एवं स्तोत्रादि का उच्च स्वर से पाठ करते समय समीपवर्ती वातावरण भी पवित्र हो जाता है तथा आनन्द की प्राप्ति कराता है । मनन किये जाने के कारण, प्राणों का उत्थान करने के कारण, परमात्मा का ज्ञान उत्पन्न करने के कारण, अनुष्ठान किये जाने के कारण मन्त्र मन्त्र बनते हैं। जप पापो का क्षय करनेवाला एवं बन्धन से मुक्ति देनेवाला उत्तम साधन है ।

जप के प्रकार की चर्चा करेंगे । शास्त्रों में जप के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हुए उनकी पारस्परिक महत्ता का प्रतिपादन किया गया है :-

वाचिकश्च उपांशुश्चमानस त्रिविधि स्मृत: । त्रयांणा जप यज्ञांनांश्रेयान्स्यादुत्तरोत्तरम्।। उंच्चैजपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः । उत्तमो मानसो देवि ! त्रिविधः कथितो जपः॥ जिह्वाजपस्तु । पाद्मनारदीययोः। उच्चैर्जप उपांशुश्च सहस्रगुण उच्यते । मानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुण उच्यते । मानसश्च तथा ध्यानं सहस्रगुण उच्यते - याज्ञ.संहिता। मानसः सिद्धिकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः । वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः - गौतमीये । मनः सुहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगत मानसः । न द्रुतं न विलम्बश्च जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत् ॥ जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः । धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ॥ उच्चरेदर्मुनिद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः - मन्त्रनिर्णये । मानसं मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसः स्मृतः। जिह्नोष्ठौ चालयेत्किञ्चद्दवतागत मानसः ॥ किञ्चत्श्रवणयोग्यः स्यात् उपांशुःस जपःस्मत्तः। मन्त्रामुच्चरयेद्वाचा वाचिकः सं जपः स्मृतः ॥ उंच्चैजपाद्वशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः। जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥ निजकर्णागोचरो यो मानसः स जपःस्मृतः। उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः स प्रकीर्तितः॥निगदस्तु जनैर्वेद्यान्त्रिविधोऽयं जपः स्मत्तः - तन्त्रान्तरे । मानसं मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसः स्मृतः। जिह्वौष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः॥किञ्चत्श्रवणयोग्यः स्यात् उपांशुः स जपः स्मत्तः। मन्त्रामुच्चरयेद्वाचावाचिकः सः जपः स्मृतः॥उंच्चैर्जपाद्वशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः। जिह्वाजपःशतगुणः सहस्रोमानसः स्मृतः॥ उंच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः। उत्तमो मानसो देवि त्रिविधः कथितो जपः ॥ माहात्म्यं वात्तिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्तितम् । तसमाच्छतगुणोपांशु सहस्रोमानसः स्मृतः॥

उपरोक्त सब का सारांश यह है कि, जप के तीन मुख्य प्रकार है १. उपांशु, २. मानसिक, ३. वाचिक । स्थिरकाय, शरीर को स्थिर रखकर, मानसिक जप किया जाता है, जिसमें देवता का ध्यान हृदय में करके, मन में ही जप चलता रहता है, जिह्वा, होष्ठ, नेत्रादि बंद रहते है । इस जप को सर्वोत्तम माना गया है, उसमें जप का सहस्रगुना फल मिलता है एवं कार्यसिद्धि शीध्र होती है । उपांशु जप में मन्त्र का उच्चारण होता है, किन्तु उसकी ध्वनि मात्र स्वयंके श्रवण तक सिमीत रहती है, जप का यह मध्यम प्रकार है, उसका फल

शतगुणा है, कनिष्ठ जप होते है वाचिक, जो वैखरी रूप में बहार आते है और उनका श्रवण अन्य भी करते है । मन्त्रो की कैसेटवाले को तो कदापि जप नहीं मान सकते, ये उपरोक्त तीनों मे नहीं आते, क्योंकि उसमें जप तो यन्त्र करता है, जिसके पास न तो मन है, न भावना, उपासक निश्चिंत होता हैं, बीच में अन्य क्रियाए, वार्तालाप भी चलता रहता हैं ।

जप सदैव मानसिक होना ही उत्तम मानते है । उत्तमो मानसो देवि ! त्रिविध: कथितो जप: । **न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा** ॥ मानसिक जप में कोई दोष नहीं लगता ।

सारांश यह है कि, वाचिकजप से श्रेष्ट उपांशु जप तथा उससे श्रेष्ठ मानसिक जप माना गया है। जब तक सतत अभ्यास द्वारा साधक की वृत्ति अन्तमुर्खी नहीं हो जाती तब तक जप का उद्देश्य सफल नहीं हो सकता है। जप की सिद्धि का सम्बन्ध प्राणों (वायु) के आयाम (रोकना) से भी होता है। जप जितना अन्तमुर्खी होता जायेगा उस समय श्वास की गति उतनी ही कम (मन्द गति) हो जायेगी तथा एक आनन्द की अनुभूति होगी ।

मन्त्राधिराज कल्प में जप के १३ प्रकार माने गए है, जो इस प्रकार है, विस्तृत चर्चा नही करेंगे - रेचकपूरककुंभागुणत्रयस्थिरकृतिस्मृति हक्का । नादोध्यानंध्येयैक्तवं तत्त्वं च जपभेदाः ।जपेनदेवतानित्यं स्तूयमानाप्रसीदति।प्रसन्ना विपुलान्कामान्दद्यान्मुक्तिश्च शाश्वतीम् ॥ यह मात्र ज्ञातव्यर्थ ही देते हैं ।

मन्त्रों के अभ्यास से योग सिद्धियां भी सहजप्राप्य हो जाती है । अभ्यास करते-करते साधक को निम्न छ: प्रकार की स्थितियों से गुजरना पड़ता है यथा - परातीतजप, पराजप, पश्यन्ती जप, मध्यमा जप, अन्त:वैरवरी जप तथा बहिरवैरवरी जप । जिस जप में जीभ तथा होठों को हिलाया जाता है वह जप बहिरवैरवरी के अन्तर्गत आता है। जब जिह्वा तथा होठों का संचालन किए बिना जप आरम्भ हो जायेगा उस समय जप के स्पन्दनों का प्रवाह हृदय चक्र की तरफ होने लगेगा तथा श्वास की गति अत्यन्त धीमी हो जायेगी । बाहर की तरफ श्वास चलना लगभग बन्द हो जायेगा । गुरूमुख से प्राप्त चैतन्य मंत्र का जप करते समय साधक को इस स्थिति का लाभ अल्प समय में ही मिलने लगता है । यह केवल स्वानुभव का विषय है । ऐसा जप साधक के मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूरक चक्र में स्वयं उच्चरित होता हुआ प्रतीत होता है । यह स्थिति मध्यमा जप सिद्ध हो जाने पर आती है तथा वास्तविक जप का यहीं प्रारम्भ है। ऐसी अवस्था आ जाने पर साधक की वृत्ति अन्तमुर्खी हो जाती है और तब जप करने के लिए किसी आसन विशेष की आवश्यकता नहीं रह जाती । इस जप का साधक लेटे, सोये, उठे, बैठे, खाते-पीते भी अनुभव कर सकता है । शास्त्र बताते हैं कि मध्यमा जप की

स्थिति आ जाने पर अनाहत चक्र में कई तरह के नाद भी उत्पन्न होते हैं, जिन्हें जप कर्ता सुन सकता है। प्राय: साधक को अपना मंत्र अन्दर से स्वयं ही सुनाई देता है।

मध्यमा स्थिति के पश्चात् जप की तीसरी भूमिका पश्यन्ती पर साधक पदार्पण करता है। ऐसी स्थिति में साधक को अपना मंत्र आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य) में प्रतिविम्बित होता दिखाई देता है। आचार्यपाद शंकराचार्य जी ने पश्यन्ती जप का स्थान आज्ञाचक्र बताते हुए लिखा है - तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशि कोटिद्युतिधरं परंशम्भु वन्दे परिमिलत पार्श्वं परिचिता.... (सौन्दर्य लहरी) । जप से उत्पन्न नाद की स्थिति केवल विशुद्धि चक्र (कंठस्थान) तक ही सीमित रहती है। उसके बाद आज्ञा चक्र में स्वमंत्र प्रकाशमय अवस्था में दिखाई देता है। अत: आज्ञाचक्र के ऊपर के चक्रों में स्वमंत्र का दर्शन होना ही पश्वन्ती जप का सिद्ध हो जाना माना जाता है।

जब स्वमंत्र के सभी स्वर-व्यंजन सकुंचित होकर बिन्दु में लय हो जाते हैं तो यह अवस्था **पराजप** की अवस्था कही जाती है। इस स्थिति को प्राप्त साधक परमानन्द की अनुभूति करने लगता है। मंत्र के अवयवों का शुद्ध उच्चारण जिह्वा तथा हौठों के विभिन्न स्थानों पर स्पर्श के कारण होता है परन्तु मंत्र के अद्धर्मात्रा में स्थित बिन्दु का उच्चारण सही रूप से तभी हो पाता है जब गुरूमुखात् प्राप्त हो। इसके सम्बन्ध में निम्न प्रमाण है - अमोधमव्यंजनमस्वंर च अंकढ ताल्वोष्ट नासिकं च अरेफ जातोपयोष्ठ वर्जितंयदक्षरो न क्षरेत् कदाचित ।।

सहस्रार एवं उसके ऊपर के चक्र-स्थानों पर ब्रह्म संस्पर्श ही जप की अनुभूति कराता है। यहाँ पर समस्त बाह्य क्रियाऐं नष्ट हो जाती हैं। इस विषय पर आगम बचन है - प्रथमे वैखरी भावो मध्यमा हृदये स्थिता भ्रूमध्ये पश्यन्ती भाव: पराभाव स्वद्बिन्दुनी ।। महानिर्वाण तन्त्र में इनका सम्बन्ध वहिरर्चन, ध्यानादि के साथ निम्न प्रकार वर्णित हैं - उत्तमोब्रह्मसद्धावो यह परावाक् नाम अन्तिम स्थिति है। ध्यान भावस्तु मध्यम यह पश्यन्ती स्थिति है। जप-पूजा अधमा प्रोक्ता यह मध्यमा जप की स्थिति है। बाह्यपूजा अधमोधमा यह वहिरवैरवरी स्थिति है। इस प्रकार सतत जप से आत्म-साक्षात्कार रूपी लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

जपफल - जपफलमाह शिवधर्म्मे - **जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिल यज्ञफलं लभेत् । सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः** - पाद्मे ।। यक्षरक्षः पिशाचाश्च ग्रहाः सर्पाश्चभीषणाः। जापिनं नोपसर्पतिन्त भयभीताः समन्ततः - पाद्मनारदीययोः । यावन्तकर्मयज्ञाः स्युः प्रदिष्टानितपांसि च। **सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्** ॥ संसार मे जितने भी यज्ञ होते है उसमें सर्वश्रेष्ठ जपयज्ञ बताया है - भगवान ने गीता में भी कहा है कि **यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**। जप यज्ञ की कोई उपमा ही नहीं है। संसार के कोई दूरित जपकर्ता के पास टीक नहीं सकते।

जपविधि (संक्षिप्त-अनुष्ठान-पुरश्चरण-नियमाः) - आदौ **सङ्कल्प्य** उद्दिष्टः पश्चात्तस्य **समर्पणम्** । अकुर्वन्साधकः कर्मफलं प्राप्नोत्यनिश्चितम् - महा.भा. दानपर्व । प्रथमं मन्त्रगुरोः पूजा पश्चाच्चैव ममार्चनम् । कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत् ।६१ ॥ ध्यानादौ श्रीगुरोर्मूर्तिं पूजादौ च गुरोः पूजाम् । जपादौ च गुरोर्मन्त्रं ह्यन्यथा निष्फलं भवेत् ।६२ ॥ उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः - **मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्** । अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौलिकहारवत् - **भूतशुद्धि** शब्दब्रह्मस्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यते - देवीभागवत पुराण ११.१७ । जपादौ **पूजयेन्मालां** तोयैरयुक्ष्य यत्नतः। निधाय मण्डलस्यान्तः सयहस्तगताञ्च वा ॥ माला बीजन्तु जप्तव्यं स्पृशेन्न हि परस्परम् । **न मानसं पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते** । कण्ठतः पाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत् ।। न स्वयं लिखितं स्तोत्रं **नाब्राह्मलिपिं पठेत्** । पूर्वबीजं जपन् यसतु परबीजन्तु संस्पृशेत् । **जपत्वा मालां शिरोदेशेप्रांशुस्थानेऽथवा** न्यसेत् - कालिकापुराणे ५४ । **औष्ठौसंपुटौकृत्वा स्थिरचित्त स्थिरेन्द्रयः । ध्यायेच्च मनसा वर्मान्जिह्वौष्ठौ न चालयेत्** ।। **न कम्पयेच्छिरोग्रीवांदन्तान्नैव प्रकाशयेत्** । तदासिद्धिंविजानीत न सिद्धिश्चान्यथा भवेत् ।। शाक्तानन्द तरंगिणी । **पुस्तके लिखितान्मन्त्रानालोक्य** प्रजपन्ति ये । **ब्रह्महत्यासमं** तेषां पातकं परिकीर्तितम् । मे.तंत्र ।। पूर्वबीजं जपन्यस्तु परबीजन्तु संस्पृशेत् । जपत्वमालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथवा न्यसेत्॥ कालिकापुराणे ५४। ध्यायेत्तुमनसादेवीं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः। न कम्पयेच्छिरो ग्रीवा दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥ **विधिनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा । दशवारमशक्तो** वा नातो न्यूनं कदाचन ॥ १६ ॥ कूर्मपुराण.१८ । न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ।। १८.७९ ।। गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः । **एकान्ते सुशुभेदेशे** तस्माज्जप्यं समाचरेत् ।।१८.८०।। चण्डालाशौच पतितान् दृष्ट्वा चैव पुनर्जपेत् । तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव जपेत्पुनः ।। १८.८१ ।। **आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने** । सौरान्मन्त्रान्शक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः ।। १८.८२ ।। यदि स्यात्क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत् । अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः।। १८.८३।। सावित्रीं वै जपेत् पश्चाज्जपयज्ञः स वै स्मृतः ॥१८.७५॥ विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च । शतरुद्रीयमथर्वशिरः सौरान् मन्त्रांश्च सर्वतः ॥१८.७६॥ प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः । तिष्ठंश्चेदीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात् समाहितः ॥१८.७७॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने । सौरान्मन्त्रान्शक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः ॥१८.८२॥ **एकदा वा भवेत्पूजा न जपेत्पूजनंविना । जपान्ते वा भवेत्पूजा पूजान्तेवाजपेन्मनुम्** ।। **सदोपवीतिनाभाव्यं सदा बद्ध शिखेन** च । विशिखोव्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् । विण्मूत्रोत्सर्गशङ्कादियुक्तः कर्म करोति यत्। जपार्चनादिकं सर्वमपवित्रं भवेत्प्रिये ॥ मलिनाम्बरकेशादिमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः। यो जपेत्तं दहत्याशु देवता गुप्तिसंस्थिता ॥ **आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम्। नीचाङ्गास्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत्** ॥ एवमुक्तविधानेन विलम्बं त्वरितं विना । **उक्तसंख्यंजपं** कुर्यात्पुरश्चरणसिद्धये ॥ देवतागुरुमन्त्राणमैक्यं सम्भावयन् धिया । जपेदेकमनाः प्रातःकालं मध्यन्दिनावधि ॥

यत्सद्ध्या समारब्धं तत् कर्तव्यं दिने दिने।यदि न्यूनाधिकं कुर्यात् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥ मुण्डमालायाम् । व्यग्रताआलस्य निष्ठीव क्रोधपादप्रसारणम् । पद्मासनं समारूह्य समकायशिरोधरः । नाग्रदृष्टिरेकान्ते जपोदांकारमव्यचम् । यो.चू.उपनिषद् । **अन्यभाषां मृषां** चैव जपकाले त्यजेत्सुधी । नाक्षतैःहस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः । न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्या तु कारयेत् । कर्त्रंगानामनुक्तौतु दक्षिणांगं भवेत्सदा । यत्रदिङ् नियमोनास्ति जपादि कथंचन । तिस्रस्तत्रदिशःप्रोक्ता ऐन्द्री सौम्यांऽपराजिता । आसीनःप्रह्वऊर्ध्वोवा नियमोयत्रनेदृशः । तदासीने न कर्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता । यस्मिन्स्थानेजपं कुर्याद्धरेच्छक्रो न तत्फलम् । **तन्मृदालक्ष्म कुर्वीत ललाटेतिलकाकृतिम्** ।। यत्सद्ध्या समारब्धं तत् जप्तव्यं दिने दिने। न्यूनाधिकं न कर्तव्यमासप्तं सदा जपेत् ॥ प्रजपेदुक्तसङ्ख्यायाश्चतुर्गुणजपं कलौ॥अन्यत्रापि।कृते जपस्तु कल्पोक्तस्त्रेतायां द्विगुणो मतः। द्वापरे त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्गुणजपः कलौ - कलार्णवेऽपि॥ न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति कदाचन । यथाविधिकृतान्येव सत्कर्माणि फलन्ति हि॥ भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनमाचार्यसेविता । नित्यपूजानित्यदानं देवतास्तुतिकीर्तनम् ॥ नित्यं त्रिसवनं स्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम्। नैमित्तकार्चश्चैव विश्वासो गुरुदेवयोः॥ जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥ अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ॥ स्त्रीशूद्रपतित ब्रात्यनास्तिकोच्छिभाषणम् । **असत्यभाषणं न भाषेत जपहोमार्चनादिषु** । पुरश्चरणकाले तु यदि स्यान्मृतसूतकम्। तथा च कृतसङ्कल्पो व्रतं नैव परित्यजेत् - योगिनीहृदये ।। शयीतकुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा । प्रत्यहं क्षालयेत् शय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ॥ असत्यभाषणं वाचं कुटिला परिवर्जयेत्। वर्जयेद्गीत्वाद्यादिश्रवणं कृत्यदर्शनम् ॥ अभ्यङ्गं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च। त्यजेदुष्णोदकस्नानमन्यदेवप्रपूजनम् ॥ तत्रैव - नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा - वैशम्पायनसंहितायाम् । पतितानामन्त्यजानां दर्शनेजपमुत्सृजेत् ॥ विपर्यासं स कुर्याच्च कदाचिदपि मोहतः। उपय्यधो बहिर्वस्त्रो पुरश्चरणकृन्नरः ॥ तथा तस्य च तत्प्राप्तौ प्राणायामं षडङ्गकम्। कृत्वा सम्यक्जपेत्शेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ॥ आदिशब्दाद्विहिंन ब्राह्मणञ्च ॥ तन्त्रान्तरे । मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् । अव्यग्रत्वमनिर्बेदो जपसम्पत्तिहेतवः॥ उष्णीशी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गणावृतः । अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत्क्वचित् ॥ **अनासनः शयानो** वा गच्छन्भुञ्जान एव वा। अप्रावत्तौ करौ कृत्वा शिरसा प्रावृतोऽपि वा ॥ चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्षुब्धो भ्रान्तः क्षुणन्वितः। रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरालये ॥ उपानद्गूढपादो वा यानशय्यागतोऽपि वा । प्रासार्य न जपेत् पादावुत्कटासन एव च । न यज्ञकाष्ठे पाषाणे न भूमौ नासने स्थितः॥ तथा - मार्ज्जारंकुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानंशूद्रंकपिंखरम् । दृष्ट्वाचम्य जपेत्शेषं स्पृष्ट्वा स्नानंविधीयते ॥ सर्वत्र जपे त्वयं नियमः॥ **मानसे तु नियमो नास्त्येव**, तथा च, अशुचिर्बा शुचिर्बापि गच्छंसितष्ठन् स्वपन्नपि । मन्त्रैकशरणो विद्वान्मनसैव सदाभ्यसेत् ॥ **मनसा यः स्मरेत्स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत्** । उभयं निष्फलं याति भिन्नभण्डोदकं यथा - गौतमीये । **जपकाले न भाषेत** नान्यानि प्रेक्षयेद् बुधः । न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवः ।

कर्तव्यात्वक्षमालास्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता ॥ २.१८.७८ ॥ जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद्बुधः । न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ २.१८.७९ ॥ चण्डालाशौच पतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत् । तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव जपेत्पुनः ॥ २.१८.८१ - कूर्म । जिह्वाजपः स विज्ञेयः केवलं जिह्वया बुधैरिति ॥ अतिविलम्बातिशीघ्रजपे दोषमाह । अतिह्रस्वो व्याधि हेतुरति दीर्घो वसुक्षयः । अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिकारवत् । जपान्तेतु च मालां वै पूजयित्वा च पोषयेत् । **जपकाले तु गोप्तव्या जपमाला तु सा शुभा ।। मंत्रोद्धारक्रमेणैव मंत्रं जपति साधकः ।** तदासिद्धिं विजानीत न सिद्धिश्तात्यथा भवेत् ।। शाक्ता.तरं. । जपाच्छ्रान्त:पु नर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्त: पुनर्जपेत् । जपध्यानपरिश्रान्त:आत्मानं च विचारयेत् ।। **तज्जपस्तदर्थभावनम्** - योग ।। **जपाच्छ्रान्त:पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्त:** पुनर्जपेत् । जपध्यानपरिश्रान्त: आत्मानं च विचारयेत् ।। **मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां** न वेत्ति यः । शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्नजायते ॥शा.त.॥ न दोषोमानसेजाप्ये सर्वदेशेऽपिसर्वदा ॥ श्यामादिजपे तु ततन्मत्रोविशेषोवक्तव्यः ॥ **आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः** सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलाभे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।। सारांश मंत्र, आम्नाय एवं गुरूपरम्परा के अनुसार अनष्ठान एवं पुरश्चरण के नियमों में भिन्नता रहती है और यह विधि विद्वान या गुरूपसदन होकर ही ज्ञात करनी चाहिए । प्रत्येक कार्य में स्वयंशिस्त एवं शास्त्रानुशीलन आवश्यक होता है ।

जैसे कि, **यान्त्रिकी कार्यशाला में, या द्विचक्री वाहन चलाते** समय, हेलमेट, सेफ्टी शूज, पहनना अनिवार्य है **। कार्य के दरम्यान ध्यान कार्य पर ही रखना पडता है, अन्यथा हानि या अकस्मात हो सकता है । मोबाईल में या अन्य से बात नहीं करना चाहिए । मशीन के मेन्युअल के हिसाब से हि उसे ऑपरेट करना होता है । ये सब नियम कार्यसिद्धि व सलामति के लिए आवश्यक होते है** । उपासना क्रम में भी इसी प्रकार परम्परागत प्रणाली से भिन्नता होती है, अनुष्ठान के नियम मंत्र, आम्नाय, कामना के ही उपलक्ष्य में बदलते रहते है, यथा गुरूगम्य है । जपाभिमुख की दिशा, आसन, माला, वस्त्र, पूजनादि का समय भी भिन्न-भिन्न होता है । मन्त्र तब ही पूर्णरूपेण फलदायी होता है, जब वह शास्त्रानुशीलन पूर्वक किया जाए, जिस प्रकार संगीत के रागों को गाने का विशेष समय एवं नियत वाद्य होता है । तथापि श्रद्धा का विशेष महत्व रहता है ।

डॉक्टर जब ओपरेशन करता है, तब, जिस अंग का ऑपरेशन करता है, उनके अनुरूप साधनों का उपयोग करता है । कान की सर्जरी, आंख की सर्जरी, हार्ट सर्जरी, नी रिप्लेशमेन्ट के लिए निश्चत प्रणाली व साधन होते है, जिसे ध्यान में रखना पडता है । परिक्षण की उचित प्रक्रिया का भी अनुसरण करना पडता है । रेडियोलॉजि, पेथोलोजि, एन्ड्रोस्कोपी, सीटी स्केन, सोनोग्राफी की प्रक्रीया भिन्न-भिन्न होती है । ठीक ऐसे ही उपासना के विषय में भी है । पूर्वोक्त शास्त्रमतों का सारांश निम्नानुसार है ।

स्नान-संध्योपासनादि के पश्चात्, शिखाबद्ध, आचमन, प्राणायाम, गुरू-गणपति का स्मरण करते हुए, जप का संकल्प करना चाहिए । मंत्र के ऋष्यादि का विनियोग न्यास करके, देवता का ध्यान करना चाहिए । योगसूत्रानुसार जप करते-करते जब थक जाएं, तब ध्यान करें। ध्यान करते-करते थकें, तब फिर जप करें और जप तथा ध्यान से थकें, तब आत्मतत्व का विचार करें।पुस्तक में देखकर जप न करें । जप के समय अन्य भाषा में या अन्य वार्तालाप न करें । **ब्राह्मण लिपि के ही मन्त्र या स्तोत्र पढे, आजकल वेदमन्त्र प्रान्तिय भाषा में मिलने लगे है ।** अक्षर मन्त्रो के विग्रह है, उनका स्वरूप निश्चित है, **आज तो प्रायः देखा गया है कि गणेशचतुर्थी के पर्व में, हाथमें क्रिकेट का बेट लिए हुए, केप पहने हुए गणेशजी मिलते है, यह देवताओं के विग्रह के साथ मज़ाक ही तो है । परमात्मा के ध्यानानुसार विग्रह का स्वरूप होना चाहिए ।**

मन्त्रजप के समय मन्त्र के अर्थ, देवता का निरन्तर ध्यान करना होता है । जप मानसिक होना चाहिए, जिह्वा, होंठ या दन्त का चालन नहीं होना चाहिए । मन्त्रानुष्ठान के पूर्व मन्त्रदिक्षा होनी चाहए, मन्त्र कण्ठस्थ होना चाहिए । स्पर्शास्पर्शादि आशौच में स्नाय या आचमन प्राणायम मार्जन करना चाहिए । मन्त्र के अक्षरो के अनुसार जप संख्या मे ही जप करना चाहिए, माला पूर्ण करनी चाहिए । जप के पूर्व माला का पूजन, ध्यानादि पूर्वोक्तानुसार करना चाहिए, जप संकल्प-निवेदनादि करना चाहिए । जप के बाद भी ध्यान-पूजादि करना चाहिए एवं जप के बाद आसन के नीचे की मृदा का तिलक करना चाहिए, आसन वंदन करना चाहिए । कामनानुसार माला, काल, दिशाका अनुसरण करना चाहिए । जप निर्विघ्न हो ऐसे एकान्त में जप करना चाहिए । प्रतिदीन देवपूजा जपपूर्व आवश्यक हैं । अन्यथा जप निषिद्द हो जाता हैं । आलस्य, जंभाई, निद्रा, छींक, थूक, भय,गुप्तांग-स्पर्श, क्रोध,पांव फैलाना, वार्तालाप, असत्यभाषण, जप मन्त्र मे अन्य शब्दोका प्रयोग निषिद्ध हैं ।जहां कर्त्ता के हस्त आदि का नाम नहीं कहा गया हो कि अमुक अङ्ग से यह करे, वहाँ सर्वत्र दाहिना हाथ जानो । यहाँ जप होम आदि में जहाँ दिशा का नियम न लिखा हो, वहाँ सर्वत्र पूर्व-उत्तर और ईशान इनमें से किसी दिशा में मुख करके कर्म करे । जहाँ यह नहीं कहा गया हो कि खड़ा होकर, बैठकर या झुककर धर्म करे, वहां सर्वत्र बैठकर करना चाहिये । जिस स्थानपर जप किया जाता है, उस स्थानकी मृत्तिका जपके अनन्तर मस्तकपर लगाये अन्यथा उस जपका फल इन्द्र ले लेते है । स्तोत्र को मन ही मन पढ़ना तथा जप को वाणी से उच्चारण करना निष्फल हो जाता है । आहार शुद्धि को अग्रिमता देते हैं, क्योंकि अन्न के सूक्ष्मभाग से मन बनता है, यथा शुद्ध आहार शुद्धमन, हम जैसा खाएंगे वैसी हमारी शारिरीक संरचना एव विचारों पर असर होगी । नियम तो कई है, यद्यपि निष्ठा से जितनी अधिकतर ध्यान रख सके अच्छा ही हैं, क्योंकि व्याधिशमन में मात्र औषधि ही नहीं, किन्तु पथ्यापथ्य का अनुसरण का भी महत्व रहता है ।

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्द दायकः - तेजोबिन्दु उपनिषद् ३६॥ **ध्यान** के विषय में एक अति सुन्दर बात हमारे गुरूजी ने बताई थी । हम अभिषेकात्मक महारूद्र करते थे । शिवजी के ध्यान, में भगवान स्वयं ध्यान मुद्रा में बिराजमान है ऐसे ध्यान करना है । गुरूजी (पूज्य पं.राधाकृष्ण शुक्ल) कहते थे कि, **आप फोन करते हो, तब बोलनेवाले एवं सुननेवाले दोनों को फोन उठाना पडता है, तभी तो कनेक्शन होगा - बात हो पाएगी । भगवानने तो भक्त के ध्यान में आंखे बंद करके रक्खी है, अब आप भी करलो तभी, तो परमात्मा की अनुभूति होगी** ।

जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम् । पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते ॥ सामान्यतया मंत्राक्षरो के प्रतिमंत्र एककोटी, एकलक्ष वा एक सहस्त्र संख्या के हिसाब से अनुष्ठान-लघु अनुष्ठान होते है - जैसे कि नमः शिवाय के पंचाक्षरी मंत्रानुष्ठान की संख्या पंचकोटी या पंचलक्ष मानी जाएगी । जपं समर्पयेद्देव्या वामहस्ते विचक्षणः॥ जपान्ते प्रत्यहं मन्त्री होमयेत्तद्दशांतशतः। तर्पणञ्चाभिधेषकञ्च तत्तद्दशांशतोमुने- मुण्डमालायाम् । प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् न्यूनाधिकप्रशान्तये । **ततो जपदशांशेन होमं कुर्याद्दिने दिने** - पुरूश्चरण चंद्रिका । **होमाद्दशांशतः कुर्यात्तर्पणं देवतामुखे** । तर्पयेत्तद्दशाशेन विद्यानन्दकृतागमे ।। योगिनीहृदये - **होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणोजपः** । होमाभावे जपः कार्यो होमसंख्याचतुर्गुणः - मन्त्र महार्णव । जितने जप का अनुष्ठान होता है, उसके दशांश का होम, होम के दशांश का ब्रह्मभोजन, उसके दशांश का मार्जन, तर्पणादि होता है । होमाशक्ते (बहुमान्य) होम संख्या का द्विगुणी जप करना पडता है - यथा एक लक्ष का दश सहस्त्र होम करना पडता है, यदि होम न करे तो होमाभावे बीस सहस्त्र अधिक जप करें ।

दशांश होम - ब्रह्म भोजन - होम क्यों करते है - आगे हमने बताया है कि **अग्निर्वाग् भूत्वा शरीरं प्राविशत्** यथा अग्नि वाक् बनकर शरीर में प्रवेश किया है । हमने जो जपादि किया है, उससे उत्त्पन्न ऊर्जा को आज्य का भोग देना आवश्यक बनता है । दूसरा **मुखादग्निरजायत** भगवान के मुख से अग्नि की उत्त्पत्ति श्रुति बताती है, यथा यज्ञ एवं अग्नि में दिया हुआ हव्य, तत्तद मन्त्र के साथ परमात्मा को समर्पित करना ही हवन का उद्देश्य है । वैसे ही **ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्** ब्राह्मण परमात्मा का मुखारविन्द होता है, वहीं अग्नि का उत्पत्ति स्थान भी है । कितने भी स्वादिष्ट अन्न हो, मुख को कितना ही पसंद क्यों न हो, वह अपने पास न रखकर उदरस्थ वैश्वानर को देता है । पेट का अग्नि भी उसे पुरे देह के पुष्ट्यर्थ विनियोग कर देता है - हाथ-पांव-त्वचा-मन-बुद्धि का विकास इसी अन्न के द्वारा होता है । अग्नि यह कार्य हव्य पदार्थ एवं कामनानुसार फल सिद्धि हेतु करता है । जैसे कि शरीर की पुष्टि के लिए खाए हुए अन्न से देह की पुष्टि करता है, यदि कोई रोग हो तो, पेट में गया हुआ औषध रोग निवारण करता है । जठरस्थ अग्नि को ज्ञात है कि प्राप्त द्रव्य का क्या करना है । पांव मे सूजन हो, शिरदर्द

हो, कब्ज हो, अतिसार हो, अनिद्रा हो या अशक्ति, सब के लिए लिया हुआ औषध उचित स्थान पर जाकर, उचित असर करता है । यह पेट तक अग्नि को जाने का मार्ग मुख है, जो स्वयं कुछ भी न रखकर जठराग्नि के माध्यम से पूरे देहरूप ब्रह्माण्ड की रक्षा, पुष्टि करता हैं । हमारे यहां आध्यात्म विज्ञान में प्रत्येक विधि एवं संस्कारों में अग्नि एवं ब्राह्मणों का महत्व है, चाहे जातकर्म हो या उपनयन, विवाह हो या अन्त्येष्ठी, वास्तु हो या ग्रहशान्ति । शास्त्रों में अनेक प्रमाण है - यावतोग्रसतेग्रासान्हव्यकव्येषु मन्त्रवित् । तावतो ग्रसते पिण्डान्शरीरेब्रह्मणः पिता - यम स्मृति । यद्योको ब्रह्मविद् भुक्ते जगत्तर्पयेखलम् । तस्माद्ब्रहमविदे देयं यद्यस्ति वस्तुकिंचन ।। नाहं तथाद्मि यजमान हविर्वितानेश्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हतभुङ्मुखेन । यद्ब्राह्मणस्य मुतश्चरतोनुघासं तुष्टस्यमच्चवहितैर्निजकर्मपाकैः - श्रीमद्भागवत् ३.१६.८ ।।

अजपाजप - अजपा के विषय में पूर्वविभाग में चर्चा की है । अजपा ही जीवन है । शारदा तिलक में ऐसा ही शास्त्र वचन है - हसः परं परेशनि प्रत्यहं जपते नरः। मोहान्धो योन जानाति, मोक्ष तस्य न विद्यते। अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष दायिनी ॥ तस्या विज्ञान मात्रेण नरः पायै प्रमुच्यते । अनया सादृशी विद्या चानयो सादृशो जपः। अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥ अर्थात्- प्रत्येक श्वास के साथ मनुष्य सोहम् जाप करता है । जो उसे नहीं जानता उस मोहान्ध को कभी मोक्ष नहीं मिलता । आजपा गायत्री योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाली है। उसका विज्ञान जानने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इसके समान और कोई विद्या नहीं। इसके समान और कोई जप नहीं। इसके बराबर और कोई पुण्य न भूत काल में हुआ है न भविष्य में होगा । सांस का अन्दर जाना (आत्मिक), बहार नीकलना (वैश्विक) अन्तर्बाह्य तादात्म्य हैं । जीव, जगत एवं जगदीश्वर का अभेद्यानुसंधान हैं । हमारे पूज्य श्री राधाकृष्ण शुक्ल, हमें अति सरल भाषा में समझाते थे कि, सः तत्त्वमसि के तत् पद - ब्रह्म को प्रतिक्षण आत्मसात् करके, अहं जीवभाव को बहार निकालना-निवृत्ति सोऽहं है ।

अजपा - हंसगायत्री – प्रसङ्गाज्जपरहस्यं लिख्यते । पञ्चाशद्वर्ण संपूटत्वेनानुलोम्य प्रातिलौम्येन ब्रह्मरूपं मेरुंक्षकारं परिकल्प्य तया सह जपं कुर्य्यादिति दोषलेशैर्नवाध्यते । एतेन विश्वमेव हंसमातृकयोरेकाकारेण कालात्मना लोके चिदात्मउच्यते । अजपाविधानं विना श्रीविद्यादिसकलविद्याया अनधिकारी भवेत् । हंसज्ञानविमुग्धेन कृतमप्यकृतं भवेत् । अजपाधारणं देवि ! कथयामि तवानघे । यस्य विज्ञानमात्रेण परं ब्रह्मैव देशिकः ॥ हसः पदं परेशानि प्रत्यहं प्रजपेन्नरः । मोहरन्ध्रं न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते ॥ श्रीगुरोः कृपया देवि ! ज्ञायते जप्यते यदा । उच्छ्वासनिश्वासतया तदा बन्धक्षयो भवेत् ॥ उच्छ्वासे चैव निश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम् । तस्मात्प्राणस्तु हंसात्मा आत्माकारेणसंस्थितः । नाभेरुच्छ्वासनिश्वासात् हृदयाग्रेर्व्यवस्थितिः ॥

अस्य अजपागायत्री मंत्रस्य हंसऋषिः, अव्यक्त गायत्रीच्छन्दः, परमहंसो देवता, हं बीजं,

सः शक्तिः, परमात्मा प्रीतये, जपनिवेदने विनियोगः । अस्याजपागायत्री-मन्त्रस्य शिरसि हंसऋषये नमः। मखे अव्यक्त-गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि परमहंसदेवतायै नमः। लिङ्गे हं बीजाय नमः । आधारे सः शक्तये नमः ।

परमात्मप्रीतये उच्छ्वासनिश्वासाभ्यां षट्शताधिकैकविंशति सहस्र जपेन पूर्ब्बभूतेभ्यो निवेदयामि ।

मूलाधारमण्डपे स्वर्णवर्णं चतुर्द्दलपद्मे वादिसान्तचतुर्व्वर्णान्विते गायत्री सहिताय गणनाथाय षट्शतसंख्यजपमहर्निशं समर्पयामि नमः । **स्वाधिष्ठानमण्डपे** अनेक विद्युन्निभे वादिलान्तषड्वर्णान्विते षड्दलपद्मे सावित्रीसहिताय ब्रह्मणे अजपामन्त्रषट्सहस्रं निवेदयामि नमः । **मणिपूरमण्डपे** नीलोत्पल मेघनिभे डादिफान्तदशवर्णान्विते दशदलपद्मे लक्ष्मीसहिताय विष्णवे षट्सहस्रजपं समर्पयामि नमः । **अनाहतमण्डपे** तरुणरविनिभे द्वादश वर्णयुते द्वादशदलपद्मे गौरीसहिताय शिवाय अजपाषट्सहस्रजपं समर्पयामि नमः । **विशुद्धमण्डपे** षोडशदलकर्णिकामध्ये जीवात्मने अकारादि-अःकारान्ते अजपासहस्रसंख्यजपं निवेदयामि नमः । **आज्ञामण्डपे** श्रीचन्द्रप्रभे द्विदलपद्मेह-क्ष-वर्णान्विते मायासहितगुरुमूर्त्तये एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः । **ब्रह्मरन्ध्रमण्डपे** नानावर्णोज्ज्वले सहस्रपद्मस्थिताय परमात्मने अकारादि क्षकारान्त सहिताय एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः । सहस्रशब्दोऽसंख्यपर इति बोध्यम् । उक्तञ्च पद्मं कोटिसमन्वितमिति । इति जपं समर्प्य अष्टोत्तरशतसंख्यमजपाजपं कुर्य्यात् । अकारादिक्षकारान्ता वर्णा हंस इति शिवशक्तिबिन्दूना ब्रह्म अ इति विसर्गरूप बिन्दूभ्यां हरिहरयोरभेदः । सोऽहमित्याभेद भावनयाब्रह्मरूपतां स्वंस्वं परिभाव्य उक्तः ।

हंसस्यध्यानं - आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिङ्गं मायापुरी हृदयपङ्कज सन्निविष्टम् । श्रद्धानदी विमल चित्तजलावगाहं नित्यं समाधि कुसुमैरपुनर्भवाय ॥

अन्यग्रंथे - अस्य श्री हंसगायत्री महामंत्रस्य अव्यक्त परब्रह्म ऋषिः अव्यक्त गायत्रीच्छन्दः परमहंसो देवता हं सां बीजं – हं सीं शक्तिः – हं सूं कीलकम् परमहंस प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।। हंसां अंगूष्ठाभ्यां हृदयाय नमः हंसी तर्जनीभ्यां शिरसे स्वाहा हंसूं मध्यमाभ्यां शिखायै वषट् हंसैं अनामिकाभ्यां कवचाय हूम् हंसौं कनिष्टकाभ्यां नेत्रत्रयाय वौषट् हंसःकरतल - अस्त्राय फट् ओं भूर्भुवःसुवरोम् इति दिग्बंधः ।। **ध्यानम्** गमागमस्थं गमनादिशून्यं चिद्रूपदीपं तिमिरापहारम् । पश्यामि ते सर्वजनान्तरस्थं नमामि हंसं परमात्मरूपम् ।। **मंत्र** हंसो हंस परमहंसः हंस सोहं सोहं हंसः। ओं हंसहंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि । तन्नो हंसः प्रयोदयात् ।। गणेशब्रह्मविष्णुभ्यो हराय परमेश्वरि ॥ जीवात्मने क्रमेणैव तथैव परमात्मने । षट्शतानि सहस्राणि सहस्रञ्च तदेव हि । पुनः सहस्रं गुरवे क्रमेण च निवेदयेत् ॥

भुशुद्धि, भूतशुद्धि, पीठदेवता, अन्तर्मातृका, बहिर्मातृका -

भुशुद्धि - ॐ मूलमंत्रेणाचम्य प्राणायाम्य. आसन वंदनम्. पृथ्वित्येति मेरूपृष्ठ - कूर्मोदेवता - सुतल छन्दः - पृथ्वीत्वया.. ॐ विश्वशक्त्यै नमः महाशक्त्यै नमः कूर्मासनाय नमः योगासनाय नमः अनन्तासनाय नमः विमलासनाय नमः मध्ये परमसुखासनाय नमः आत्मासनाय नमः।

भूतशुद्धि-पीठन्यास - (शास्त्रों में वर्णन)
योनिस्थंतत्परं तेजः स्वयम्भूलिङ्ग संस्थितम् । परिस्फुरद्वादिसान्तं चतुर्वर्णंचतुर्दलम् ।
कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भू लिङ्ग संगतम् । हृदयस्थे अनाहतं नाम चतुर्थं पद्मजं भवेत् ।
पद्मस्थं तत्परं तेजो बाण लिङ्गं प्रकीर्त्तितम् । आज्ञापद्मं भ्रुवो र्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् ।
तुरीयं तृतीय लिङ्गं तदाहं मुक्तिदायकः । (शिवसंहिता, पटल ५)
तत्प्राप्यकुण्डीलीरुपं प्राणिनांदेहमध्यगं । वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।। मुं.मा.तंत्र ।।
उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः। षटचक्रं चिन्तयेद्देवि! प्राणायामपुरःसरम्॥
चतुर्द्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानन्तु षड्दलम्। नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यदलं हृदि॥
कण्ठे स्यात् षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलन्तथा।सहस्त्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे॥
आधारे कन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम्। त्रिकोणमध्ये देवेशि! कामबीजं सुलक्षणम्॥
कामबीजोद्भवंतत्र स्वयम्भुलिङ्गमुत्तमम्।तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् चित्कलां हंसमाश्रिताम्॥
ध्यायेत्कुण्डलिनींदेवींस्वयम्भुलिङ्गवेष्टिताम्।चित्कलयाकुण्डलिनींतेजोरूपां जगन्मयीम्॥
आधारादीनि पद्मानि भित्त्वा तेजःस्वरूपिणीम्। हंसेन मनुनादेवीं ब्रह्मरन्ध्रं नयेत्सुधीः॥
सदाशिवेन देवेशि! क्षणमात्रं रमेत् प्रिये! । अमृतं जायते देवि! तत्क्षणात् परमेश्वरि!॥
तदुद्भवामृतं देवि! लाक्षारससमोपमम् । तेनामृतेन देवेशि! तर्पयेत् परदेवताम्॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया । आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः॥
ततस्तु परमेशानि! अक्षमालां विचिन्तयेत् । चित्रिणी विशतन्त्वाभा ब्रह्मनाडीगतान्तरा॥
तथा संग्रथिता ध्येया साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी । अनुलोमविलोमेन मन्त्रवर्णविभेदतः॥
मन्त्रेणान्तरितान्वर्णान् वर्णेनान्तरितं मनुम् । कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वमन्त्रप्रकाशिनीम्॥
चरमार्णं मेरुरूपं लङ्घनं नैव कारयेत् । सबिन्दूं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेत् सुधीः॥
अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं ज्ञानेन संजपेत् । वर्गाणामष्टवर्गेण अष्टवारं जपेत् सुधीः॥
अ क च ट त प य शा इत्येवश्चाष्टवर्गकाः। योनिमुद्रा महेशानि! तव स्नेहात्प्रकाशिता॥
मन्त्रार्थंमन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रांनवेत्तियः।शतकोटिजपेनापि तस्यसिद्धिर्नजायते ॥ शा.तर.॥
निजभुवन निवासादुच्चलन्तीं विलासैः पथिपथि कमलानां चारूहासं निधाय ।
तरूणतपनकान्तिकुण्डलीदेवतानामं शिवसदनसुधाभिर्दिप्यतेआत्मतेज।। श्रीकरपात्रीजी
परशकत्यात्मकमिथुन संयोगानन्दनिर्भराः। मुक्तास्तेमैथुनं तस्यैतरेस्त्रीनिसेवकाः।। यो.तंत्र
सुषुम्नाशक्तिरूपाच जीवोयंतुपरःशिवः।तयोस्तुसंगमो देवाःसुरतं नामकीर्तितम् ।। मेरूतंत्र
सर्वमंत्रस्य चैतन्य श्रृणुपार्वतीसादरं, सहस्त्रारे महापद्मे बिंदुरूपं परंशिवम् ।
अंतःपूजा महोशानि बाह्यकौटिफलं लभेत्, भूतशुद्धिलिपिन्यासौ विनायस्तु प्रपूजयेत।
विपरितफलंदद्यात्भक्त्या पूजनेयथा । अंतर्मालामहामाला पंचाशद्वर्णरूपिणी । तोडलतंत्र

अकारः शिवरूपस्याद् हकारशक्तिमेव च । तयोःसम्मिलने चैव अहंकारोपजायते ।।
अकाराभ्य हकारान्तौ सर्वेवर्णासमाश्रिताः। अहंकारे स्थितं सर्वं ब्रह्माण्डे सचराचरम् ।।
सर्वेवर्णात्मकामन्त्रास्तेचशक्त्यात्मकाःप्रिये। शक्तिस्तुमातृकाज्ञेया साचज्ञेयाशिवात्मिका।।
पंचासत्युवतीसर्वा शब्दब्रह्मस्वरूपिणी । भजेहंमातृकादेवी वेदमातांसनातनीम् - का.तं।।
पशुभावेस्थिता मंत्राःकेवला वर्णरूपिणः, सौषुमम्णेध्यन्युच्चरिताःपतित्वं प्राप्नुवन्तिते । त्रिक्सार
मंत्रार्थदेवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि । वाच्यवाचकभावेन अभेदो मंन्त्रदेवयोः ।।
जपेनदेवतानित्यंस्तूयमानाप्रसिदति।जपात्सिद्धिजपात्सिद्धि जपात्सिद्धिनसंशयः।। शाक्त.
अकारादि लकारान्ता क्षकारं वक्त्रसंयुतम्, चरमाणसरन्ध्रं च निजपुच्छेन कामिनी।।
अकारःशिवरूपस्याद् हकारशक्तिमेव च । तयोः सम्मिलनेचैव अहंकारोपजायते।।
मूलाधारात्समुत्थाप्य कुण्डलींपरदेवताम्। सुषुम्णामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मरेत्।।
सहस्रसारंतुसंप्राप्य शिवंदृष्ट्वा तु कामिनी,मालाकारेणतंल्लिंगं संवेष्ट्य कुण्डलीस्तथा ।।
स्वब्रह्मरन्ध्रे परस्पराश्लिष्ट्य पराम्बापरमेश्वराभ्यां नमः ।।

भूतशुद्धि पीठन्यास, षोढान्यासादि ज्ञानोपासना की चरमसीमा है । इस उपासना में योग एवं तंत्र का समन्वय है, द्वैत से अद्वैतयात्रा की सुगम प्रणाली है, यह सेतुरूप है ।

हमारे शरीर में मूलाधार से आज्ञाचक्र पर्यन्त षड्चक्र है, मूलाधार, स्वाधीष्ठान, मणीपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रसार-ब्रह्मरन्ध्र । सर्वोपरि ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार है, जहां भगवान शिवजी का स्थान है । मूलाधार में पराम्बा कुण्डली महाशक्ति बिराजमान है, यहां एक शिवलिंग है - जिसमें तीन अर्धवर्तुलाकार सर्पिणी जैसी महाशक्ति है । मूलाधार से सुषुम्णा महानाडी (प्रधान नाडी) नीकलकर ब्रह्मरन्ध्र में जाती है, उपरोक्त सभी चक्रो में - कमल - पद्म अधोमुख है । साथ में अन्य दो नाडीयां ईडा, पिंगला भी नीकलती हैं, इन तीनों महानाडीयों से बहत्तर हजार नाडीयां पूर्ण शरीर में ऊर्जावहन करती हैं । उपरोक्त सभी पद्मों का भिन्न-भिन्न ध्यान है । मूलाधार में अम्बिका समेत गणेशजी का स्थान है । उसके उपर स्वाधीष्ठान ब्रह्मासावित्री, मणीपुर में लक्ष्मीनारायण, अनाहत में शिवशक्ति, विशुद्धि में जीवत्मा प्राणशक्ति, आज्ञा में गुरू एवं ज्ञानशक्ति, ब्रह्मरन्ध्र में परमशिव बिराजमान है ।

ध्यान-धारणा द्वारा मूलाधार से परम्बा, ब्रह्मरन्ध्र में बिराजमान शिव से मिलने जाती है। जगदम्बा का स्वरूप अतिसुन्दर दैदिप्यमान षोडशवर्षीय महासुंदरी युवतिरूपा है । जब वह महाशक्ति सुषुम्णा पथ से शिव को मिलने जाती है, तब सुषुम्णा मार्गस्थ अन्य पद्मों पर पदार्पण करती हुई उपर जाती है । जिस प्रकार कोई महापुरूष या राष्ट्रपति किसी नगर में शोभायात्रा करते हैं, तब वह मार्ग शुद्ध किया जाता है, उस मार्ग को सुशोभित एवं सुगन्धियुक्त बनाया जाता है । बीच में आनेवाले चौक पर अन्य वीआईपी लोग हाथ में पुष्पगुच्छ एवं पुष्पमाला से उनका सन्मान करते है । इसी प्रकार जब महाशक्तिरूपा जगदम्बा, अपने स्थान से इन भिन्न-भिन्न चक्रो पर पदार्पित करती हुई

उत्थान करती है, तब पद्मस्थ देवता उनके दर्शन से पुलकित होते है। **जगदम्बा शिवजी** के अङ्क में बैठकर आलंगित होती है - परस्पराश्लिष्ट होकर, परमशिवामृत वर्षण करती है । आनन्दकी इस चरमसीमा को योगमैथुन कहते है । दिव्य योगी मूलाधार स्थित पराशक्ति कुन्डलिनी को सहस्रार में स्थित शिव से मिलाकर दिव्य मैथुनानन्द की अनुभूति करके जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। अन्य सभी व्यक्ति तो मात्र स्त्री के सेवक हैं । सुषुम्ना को शक्ति तथा जीव को शिव कहते हैं। दिव्य योगी सुषुम्ना तथा प्राणरूपी जीव का संगम कराके वास्तविक सुरत का आनन्द भोगते हैं । हमारा पृथ्वीतत्त्व जलतत्त्व में, जलतत्त्व अग्नितत्त्व में, अग्नितत्त्व वायुतत्त्व में, वायुतत्त्व आकाशतत्त्व में, आकाशतत्त्व अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व में, महत् प्रकृति में प्रकृति पुरूष - विराट् में विलीन होता जाता है ।

हमारे शरीर में वामकुक्षी में एक संकोचशरीरात्मक पापपुरूष की कल्पना करते है, जो विकराल, क्रूर, अधोमुख, अदर्शनीय, दुर्मुख एवं समस्त दुरितों व दुर्मति का उद्गम स्थान है । **वैसे भी आपने देखा होगा कि जब हमे पक्षाघात होता है या महाव्याधि आती है, तब हमारे शरीर का वामभाग ही ज्यादा दुष्प्रभावी बनता है** ।

खलिल जिब्रान की एक सुन्दर उक्ति है - **मैं ही आग हूं, मैं ही कूडा हूं, मेरी आग में, मेरे कूडे को जलाकर, जीवन को सुन्दर बना सकता हूं । जितने भी खराब विचार, पाप, दुरित कर्मो का उद्भव होता है वह शरीर के अन्दर से ही होता है और उनका शमन-दमन भी अपने अन्दर ही होता है ।**

कुण्डलीनी के ऊर्ध्वगमन के बाद संकोच शरीरात्मक पापपुरूष का **यं** बीज से नाभिमें शोषित करते है - खींचके लाते है, **रं** बीजसे उसका दहन करते है, फिर शिवसंयोग से तृप्त महाशक्ति कुण्डलीनी को हृदय कमल में बिराजित करते है और जले हुए पापपुरूष की भस्म में उस महाशक्ति द्वारा परम शिवामृत की वृष्टि से उस भस्म का पिंड बनाते है। पुनः उस पिण्ड से एक शिवस्वरूप जीवात्मा का प्रागट्य होता है

अपने शरीर में पंचभूतों का आधिपत्य भिन्न-भिन्न भागों में है । सबसे नीचे पृथ्वी तत्त्व, पीतवर्ण के चतुष्कोण यंत्र का बीज **लं** है, उसके उपर वरूण तत्त्व का स्थान है, श्वेतवर्ण, धनुषाकार बीज **वं** है, उसके उपर त्रिकोण मण्डल में वन्हि तत्त्व का स्थान हैं, रक्तवर्ण एवं रं बीज है, उसके उपर वर्तुलाकार धुम्रवर्ण वायु मण्डल बीज यं है, उसके उपर अवर्ण नीराकार आकाशमण्डल बीज **हं** वर्ण है । भूतशुद्धि से पञ्चभूतात्म देह की शुद्धि होती है।

पुनः परिशुद्ध विराट ब्रह्म से सृष्टिक्रम से प्रकृति, महत्, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं जलसे पृथ्व्यादि पंचभौतिक देह की कल्पना करते है । फिर विराट में विलीन विशुद्ध शिवयुक्त जीव हृदय में प्रतिष्ठित करते है और कुण्डलिनी को पुनः सुषुम्णा मार्ग

को प्रकाशित करते हुए, मूलाधार के प्रति प्रयाण कल्पते है । शुद्ध जीवात्मा के उपर गर्भाधानादि षोडश संस्कार की भावना करते है । अपने शरीर को इष्टदेवता का पीठ मानकर उसके विधि अङ्गों पर पीठ देवताओं का इस प्रकार न्यास करना चाहिये ।

समस्त पद्मोचक्रो के पंखडीयों में एकावन वर्णों का स्थान है, जैसे आगे बता चूके है । पूरी वर्णमाला शरीरमें दिव्य कला - चेतना के रूपमें स्थित है, उसका ही उपयोग करके महाशक्तिप्रदा वर्णमाला-अक्षमाला का वर्णन आगम ग्रंथों में मिलता है । यही मन्त्रों का उद्गम एवं प्राण है । अन्तर्मातृका-बहिर्मातृका न्यास इसी वर्णो की अमोघ शक्तिका रसास्वादन कराती है ।

वैसे तो ये पूरी क्रिया भावात्मक एवं श्रद्धात्मक है । **यहीं बात एक उदाहरण से समझते है । एक व्यक्ति ऋषिकेष से गंगाजल एक कलश में ले आता है । घर में उसे एक जगह पर स्थापित करता है । दो-तीन पीढी के बाद यह बात विस्मृत हो जाति है । अब घर का नविनीकरण का काम चलता है, बच्चों के हाथ में यह गंगा जलका कलश आता है, उन्हें मालुम नहीं कि, उसमें क्या है, सब को संशय होने लगता है । कलश में गंगा होने का किसीको भी याद नहीं है । क्या होगा इस कलश में, किसका जल होगा, कुछ अभिमंत्रित करके रक्खा होगा - ऐसे अनेक संशय मन में उठते है । घरका ज्येष्ठ पुत्र समाधान देता है कि, जो भी होगा हमें मालुम नहीं, अच्छा यही है कि, इसे गंगा में विसर्जित कर दे । कोई दोष भी नहीं लगेगा । ऐसा विचार करके उस कलश जल को गंगा में प्रवाहित कर देते है । फिर मनमें आता है कि यहां तक आए हैं तो, गंगाजल लेकर ही जाए । कलश को पुनः शुद्ध करते है । उसमें गंगा जल भरके घर ले आते है । गंगा पूजन करके उसे पुनः देवस्थान में स्थापित करते है । ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व को जानने की क्रिया कुछ ऐसी ही है ।**

आपके शरीर के अंगो को भी चिकित्सक बहार निकालकर, सर्जरि करके पुनः शरीर में प्रस्थापित करते है - ओपन हार्ट सर्जरी करते है, वैसे ही शरीरस्थ अंगो का शोधन होता है । जो जैसी कल्पना करता है, वही उसके समीप आता है । वह वैसा ही बन जाता है - उसे **कीटभ्रमर न्याय** कहते है । भौरें की अवाज से कीडा भ्रमर बनता है । अविरत श्रद्धा एवं विश्वास से, साध्य समीप आ जाता है । **अज़गर ज्यादा चल नहीं सकता, तथापि दौडते पशु स्वयं शिकार बनकर उसके मुंह में आ जाते है । चिपकली दिवाल को चिपककर चलती है, उसका आहार है, उडते जंतु । इसकी धारणा शक्ति उडते जन्तु को, इसके मुंह मे लाकर रख देती है** । ध्यान एवं धारणा को अष्टांग योग के अंग माने है । मन की एकाग्रता एवं श्रद्धा से सबकुछ सहज प्राप्य हो जाता है ।

देहो देवालयो प्रोक्त - हृदयरूपी गुहा में आसन बनाकर अन्तःस्थ परामात्मा का पूजन करने के लिए स्वयं के शरीर में देवपीठ बनाते है, इस प्रक्रीया पीठन्यास कहते है ।

भूतशुद्धि - सर्वमंत्रस्य चैतन्य श्रृणुपार्वतीसादरं, सहस्रारे महापद्मे बिंदुरूपं परंशिवम् । अंतःपूजा महोशानि बाह्यकौटिफलं लभेत्, भूतशुद्धिलिपिन्यासौ विनायस्तु प्रपूजयेत।। मूलाधारात्समुत्थाप्य कुण्डलींपरदेवताम् । सुषुम्णामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मरेत्।। जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमंत्रेण साधकः - सहस्रसारं तु संप्राप्य शिवंदृष्ट्वा तु कामिनी,मालाकारेणतंल्लिंगं संवेष्ट्य कुण्डलीस्तथा ।। स्वब्रह्मरन्ध्रे परस्पराश्लिष्ट्य पराम्बापरमेश्वराभ्यां नमः ।। मूलाधार से कुण्डलिनी समस्त चक्रोपर पदार्पण करती हुई, ब्रह्मरन्ध्रमें अपने पति शिवसे मिलने जाती है ।

मातृकोप संहार - ॐ क्षकारं हकारे उपसंहरामि एवं आकारं अकारे उपसंहरामि ।। ॐ अकारः सहस्रदलाम्बुजाकारे ब्रह्मरन्ध्रे परमात्मनिलयं गत इति भावयेत् । ॐ शरीरस्यात्मा ऋषिः प्रकृतिच्छन्दः परमात्मा देवता शरीरभूत शुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।
१. लँ - पृथ्वीबीजमंत्र ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः पथ्वीदेवता पृथ्वीभूतशुद्ध्यर्थे - पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानं चतुरस्रं पीतवर्णं सबिन्दुकं लँ बीजसहितं ध्यायेत् ।। ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्याधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा -
२. वँ - वरूणबीजमंत्र हिरण्यगर्भऋषिः अनुष्टुप्छन्दः वरूणोदेवता वरूणभूतशुद्ध्यर्थे - जान्वादिनाभिपर्यन्तं वरूण मंडलं धनुषाकारं शुभ्रवर्णसबिन्दुकं वँ बीजसहितं ध्यायेत् ।। ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा -
३. रँ - वन्हिबीजमंत्र कश्यपऋषिः जगतीन्दः जातवेदोग्निर्देवता अग्निभूतशुद्ध्यर्थे - नाभ्यादारभ्यहृदयपर्यन्तं अग्निमंडलं त्रिकोणाकारं रक्तवर्णं सबिन्दुकं रँ बीजसहितं ध्यायेत् ।। ॐ ह्रूं रूद्राय तेजापतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा -
४. यँ - वायुबीजमंत्र किष्कन्दऋषिः बृहतीछन्दःवायुर्देवता वायुभूतशुद्ध्यर्थे - हृदयाद्भ्रूमध्यपर्यन्तंवायुमंडलं वर्तुलाकारंधूम्रवर्णं सबिन्दुकं यँ बीजसहितंध्यायेत् ।। ॐ ह्रैं ईशानाय वायव्याधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा -
५. हँ - आकाशबीजमंत्र रूद्रऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः परमात्मादेवता आकाशभूतशुद्ध्यर्थे - भ्रूमध्याद्ललाटपर्यन्तं आकाशमंडलं नीरूपं अवर्णं सबिन्दुकं वँ बीजसहितं ध्यायेत् ।। ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यातीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा -
ततो पृथिवीमप्सु प्रविलापयामि एवं जलमग्नौ - अग्निं वायौ - वायुमाकाशे - आकाशमहंकारे - अहंकारं प्रकृतौ - प्रकृतिं परमात्मनि प्रविलापयामि - ततः शिरसि कर्णिकाकैसरौर्युते अष्टदलपद्मे चन्द्रसन्निभं चित्प्रकाशितं शिवं स्मृत्वा शुद्धचिन्मयोभूत्वा - वामकुक्षिस्थितं कृष्णवर्णमंगुष्टपरिमाणकं विप्रहत्या शिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकं मदिरापान हृदयं गुरुतप्रकटीयुतं तत्संयोगिपदद्वन्द्वमुपपातकरोमकं खड्गचर्मधरं दुष्टमधोपक्त्रं दुःसहं पापपूरुषं चिन्तयेत् । यँ १० बीजेन संकोच शरीरं शोषय शोषय स्वाहा ..रँ बीजेन संकोच शरीरं दह दह पच पच स्वाहा सन्दहामि.. कुण्डलीं सच्चिदानन्दमयीं द्वादशान्तं नीत्वा तत्संसर्गात्द्द्रुत चिच्चन्द्रमण्डलाद्विगलित सुधाधारापूरेण वँ बीजेन परमशिवामृतं वर्षय वर्षय स्वाहा (जीव सन्दोहमाप्लावयामि)

- लँ बीजेन (घनीकृत्य भस्म तत्कनकाण्डवत्) अमृतपिण्डात्शाम्भवशरीरमोत्पादयोत्पादय स्वाहा - हँ हंसःसोहं अवतर अवतर शिवपदात् । ततः सृष्टिमार्गेण ब्रह्मणः सासाशादाकाशादिनि भूतानि उत्पाददयेत - ब्रह्मणःप्रकृतिः प्रकृतेर्महत् महतोहंकारः अहंकारादाकाशः आकाशाद्वायुः वोयोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोन्नरसमयः ॐ हँसःसोहम् ब्रह्मण्येकभूतं परमशिवेन एकीकृतं जीवं स्वहृदयाम्बुजे संस्थाप्य - जीवं सुषुम्नापथेन प्रविश मूलश्रृंगाटकं उल्लोसोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वलप्रज्वल हंसःसोहं स्वाहा - कुण्डलीं मूलाधारगतां स्मरेत् ।। एवं स्वशरीरं पुनरुत्पन्नं तेजोमयं पुण्यात्मकं सकलपुरूषार्थसाधकं निरस्तकिल्बिषं देवताराधन योग्यं विभावयेत् ।।

प्राणप्रतिष्ठा - ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि जगत्सृष्टिः प्राणशक्तिर्देवता आँ बीजं ह्रीँ शक्तिः क्रौँ कीलकं स्वशरीरे प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः। ऋष्यादि न्यासः- ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः – शिरसि, ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि –मुखे, जगत्सृष्टिः प्राणशक्तिर्देवता-हृदये, आँ बीजं-गुह्ये, ह्रीँ शक्तिः-पादयोः, क्रौँ कीलकं-नाभौ, प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ।

ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ अँ कँखँगँघँङँ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आँ -
ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ इँ चँछँजँझँञँ शब्दस्पर्शपूपरसगन्धात्मने ईँ -
ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ उँ टँठँडँढँणँ श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊँ-
ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ एँ तँथँदँधँनँ वाक्पाणिपादपायूपस्थानात्मने ऐँ -
ॐ आँह्रीँक्रौँओँ पँफँबँभँमँ वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मे औँ -
ॐ आँ ह्रीँ क्रौँ अँ यँरँलँवँ शँषँसँहँ ळँक्षँ मनोबुद्ध्यहंकारचित्तविज्ञानात्मने अः ।
ॐ आँ पाशबीजं नाभिरारभ्य पादान्तं न्यसामि -
ॐ ह्रीँ शक्तिबीजं हृदयादारभ्य नाभ्यान्तं न्यसामि -
ॐ क्रौँ अंकूशबीजं मस्तादारभ्य हृदयान्तं न्यसामि -
ॐ यँ त्वगात्मने हृदयाय - ॐ रँ असृगात्मने दोर्मूलाभ्यां - ॐ लँ मांसात्मने ग्रीवायै - ॐ वँ मेदात्मने कुक्षिभ्यां - ॐ शँ अस्थ्यात्मने दक्षिणकरे - ॐ षँ मज्जात्मने वामकरे - ॐ सँ शुक्रात्मने दक्षिणपादे - ॐ हँ प्राणात्मने वामपादे - ॐ ळँ शक्त्यात्मने जठराय - ॐ क्षँ बीजात्मने आस्याय । अकारादि क्षकारान्तं व्यापकं कुर्यात् - अंआं...क्षं इति ।।

पीठन्यास - प्रयोगविधि - ॐ मण्डूकाय नमः मूलाधारे, ॐ कालाग्निरुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने, ॐ कच्छपाय नमः नाभौ, ॐ आधारशक्तयै नमः हृदि, ॐ प्रकृतये नमः हृदि, ॐ कूर्माय नमः हृदि, ॐ अनन्ताय नमः हृदि, ॐ पृथिव्यै नमः हृदि, ॐ क्षीरसागराय नमः हृदि, ॐ रत्नद्वीपाय नमः हृदि, ॐ मणिमण्डपाय नमः हृदि, ॐ कल्पवृक्षाय नमः हृदि, ॐ मणिवेदिकयै नमः हृदि, ॐ हेमपीठाय नमः हृदि ।

पुनः धर्म अदि का तत्तस्थानों में इस प्रकार न्यास करना चाहिए। यथा -
ॐ धर्माय नमः दक्षिणस्कन्धे, ॐ ज्ञानाय नमः वामस्कन्धे, ॐ वैराग्याय नमः वामोरी, ॐ ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरीः, ॐ अधर्माय नमः मुखे, ॐ अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे, ॐ अवैराग्याय नमः नाभौ, ॐ अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे।
तदनन्तर हृदय में अनन्त आदि देवताओम का निम्नलिखित मन्त्रों से न्यास करना चाहिए। यथा - ॐ तल्पाकारायानन्ताय नमः हृदि,
ॐ आनन्तकन्दाय नमः हृदि ॐ संविन्नालाय नमः हृदि,
ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः हृदि ॐ प्रकृतमयपत्रेभ्यो नमः हृदि
ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमःहृदि ॐ पञ्चाशद्बीजाढ्यकर्णिकायै नम्ह हृदि
ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः
पुनः हृत्पद्म पर - ॐ कं भं तपिन्यै नमः ॐ खं बं तापिन्यै नमः
ॐ गं फं धूम्रायै नमः ॐ घं पं मरीच्यै नमः ॐ ङं नं ज्वालिन्यै नमः
ॐ चं धं रुच्यै नमः ॐ छं दं सुषुम्णायै नमः ॐ जं थं भोगदायै नमः
ॐ झं तं विश्वायै नमः ॐ ञं णं बोधिन्यै नमः ॐ टं ढं धारिण्यै नमः
ॐ ठं डं क्षमयै नमः।
पुनस्तत्रैव - ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः
ॐ अं अमृतायै नमः ॐ आं मानदायै नमः ॐ इं पूषायै नमः
ॐ ईं तुष्टयै नमः ॐ उं पुष्टयै नमः ॐ ऊं रत्यै नमः
ॐ ॠं धृत्यै नमः ॐ ॠं शशिन्यै नमः ॐ लृं चण्डिकायै नमः
ॐ लुं कान्त्यै नमः ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः ॐ ऐं श्रियै नमः
ॐ ओं प्रीत्यै नमः ॐ औं अङ्गदायै नमः ॐ अं पूर्णायै नमः
ॐ अः पूर्णामृतायै नमः।
पुनस्तत्रैव - ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः
ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः ॐ रं ऊष्मायै नमः ॐ लं ज्वलिन्यै नमः
ॐ वं ज्वालिन्यै नमः ॐ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः ॐ षं शुश्रियै नमः
ॐ सं स्वरुपायै नमः ॐ हं कपिलायै नमः ॐ ळं हव्यवाहनायै नमः
पुत्रस्तत्रैव - ॐ सं सत्त्वाय नमः ॐ रं रजसे नमः
ॐ तं तमसे नमः ॐ आं आत्मने नमः ॐ अं अन्तरात्मने नमः
ॐ पं परमात्मने नमः ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ॐ मां मायातत्त्वाय नमः
ॐ कं कलातत्त्वाय नमः ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः ॐ पं परतत्त्वाय नमः।

ध्यानम् - रक्ताभोधिस्थ पोतोल्लसदरूणसरोजाधिरूढा रकाब्जैः, पाशंकोदंडमिक्षु-द्भवमथगुणमप्यंकुशं पंचबाणान्। बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरूहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परानः।। मानसोपचारैः संपूज्य. योन्या प्रणमेत्। मंत्र - ॐ आंह्रींक्रौं यंरंलवं शंषंसंहंसःसोहम् मम प्राणा इह प्राणाः। मंत्र मम जीव इहस्थितः। मंत्र मम सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाणि पाद

पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखंचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । **पंचदशवारं** ॐकारं जपेत् । ओं गर्भाधानं संपादयामि. पुंसवनं संपादयामि. सीमन्तोन्नयनं संपादयामि. जातकर्म संपादयामि. नामकरणं संपादयामि. निष्क्रमणं संपादयामि. अन्नप्राशनं संपादयामि. चूडाकरणं संपादयामि. विद्यारम्भ संपादयामि. कर्णवेधन संपादयामि. उपनयनं संपादयामि. वेदारम्भ संपादयामि. केशांन्त संपादयामि. समावर्तन संपादयामि. विवाह संपादयामि ।। अनेन मम देहस्य गर्भाधानादि पंचदशसंस्काराः संपद्यताम् ज्योतिर्मयं स्वशरीरं भावयेत् - प्राणायामं कुर्यात् ।। आम्नायानुसारेण गुरूं सम्पूज्य - दिव्यौघां चैव सिद्धौघान्मावौघानिति क्रमात् । परप्रकाशानन्दनाथ. परमेशानन्दनाथ. परशिवानन्दनाथ. कामेश्वर्यम्बानाथ. मोक्ष्यम्बानाथ. कामानंदनाथ. अमृतानन्दनाथ. एते सप्तैव दिव्यौघाः । ईशानानन्दनाथ. तत्पुषानन्दनाथ. अघोरानन्दनाथ. वामदेवानन्दनाथ. सद्योजातानन्दनाथ. एते पंच सिद्धौघाः. । अमुकानन्दनाथ गुरवे. परमगुरवे. परात्परगुरवे. परमेष्टिगुरवे.. गुरवःपूजिताःसंतर्पिताः संतु ।। आत्मने - परमात्मने - जीवात्मने - योगात्मने - ज्ञानात्मने .मानवौघा.।

अन्तर्मातृका - अस्य श्रीअन्तर्मातृकान्यासस्य ब्रह्माऋषिः दैवीगायत्रीच्छन्दः अंतर्मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराःशक्तयःबिन्दवःकीलकम् अनुष्ठीयमान श्रीरूद्रपूजने न्यासे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासाः - ॐ ब्रह्मणे नमः शिरसि । ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे । ॐ अन्तर्मातृकासरस्वती दैवतायै नमः हृदि । ॐ हल्बीजेभ्यो नमः गुह्ये । ॐ स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः । ॐ बिन्दुकीलकाय नमः सर्वांगे न्यसेत् । त्रिःप्रणमेत् ।

करादि हृदयादि न्यासाः ।

ॐ अँ कँ खँ गँ घँ ङँ आँ अंगुष्टाभ्यां - हृदयाय नमः ।
औं इँ चँ छँ जँ झँ ञँ ईँ तर्जनीभ्यां - शिरसे स्वाहा ।
ॐ उँ टँ ठँ डँ ढँ णँ ऊँ मध्यमाभ्यां - शिखायै वषट् ।
ॐ एँ तँ थँ दँ धँ नँ ऐँ अनामिकाभ्यां - कवचाय हुं ।
ॐ ओं पँ फँ बँ भँ मँ औँ कनिष्ठिकाभ्यां - नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ अँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ ळँ क्षँ अः करतलकरपृष्टाभ्या - अस्त्राय फट् ।

ध्यानम् – पञ्चाशल्लिपिभिर्विभज्य मुखदोर् हृत्पद्मवक्षःस्थलां, भास्वन्मौलिनिबद्ध चन्द्रशकला मापीनतुङ्गस्तनीम् । मुद्रामक्ष गुणंसुधाढ्य कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजै, बिभ्राणांविशदप्रभांत्रिनयनां वाग्देवतांआश्रये ।।

कण्ठेषोडशदलपद्मे अकारादि स्वरान्यसेत् । हृदयस्थे द्वादशदल पद्मे कादिठान्तान्यसेत् । नाभौ द्वादशदलपद्मे डादिफान्तान्न्यसेत् । लिंगे षड्दलपद्मे बादिलान्तान्न्यसेत् । आधारे चतुर्दले वादिसान्तान्न्यसेत् । ललाटे द्विदले हँ क्षँ द्वौवर्णौ न्यसेत् ।। आधारे लिंगनाभौ

प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वेपत्रे षोडशारे द्विदशदश दले द्वादशार्धे चतुष्के । वासान्तेबालमध्ये डफकठ सहिते कण्ठदेशेस्वराणां हँ क्षँ तत्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि । बन्धूकाभां त्रिनेत्रां पृथुजघनलसत्कुक्षिमुद्रक्तवस्त्रां, पिनोत्तुङ्गप्रवृद्धस्तन जघनभरां यौवना रम्भरूढां । सर्वालंकारयुक्तां सरसिजवनां इन्दुसंक्रान्तमौलिं, ह्यम्बा पाशांकुशेष्टाभयवरदकरां अंबिकां तां नमामि । वर्णांगवर्णमालांङ्गी, भारतीं भाललोचनाम् । रत्नसिंहासनां देवीं वन्देहंसिद्धमातृकाम् ।।

बहिर्मातृका - अस्य श्रीबहिर्मातृकान्यासस्य ब्रह्माऋषिः दैवी गायत्री छन्दः बहिर्मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः बिन्दवः कीलकम् अनुष्ठीयमान श्रीरूद्रपूजनाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यासाः - ॐ ब्रह्मणे नमः शिरसि । ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे । ॐ अबहिर्मातृका सरस्वती दैवतायै नमः हृदि । ॐ हल्बीजेभ्यो नमः गुह्ये । ॐ स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः । ॐ अँ नमः मौलौ । ॐ आँ नमः मुखे । ॐ इँ नमः दक्षिणनेत्रे । ॐ ईँ नमः वामनेत्रे । ॐ उँ नमः दक्षिणकर्णे । ॐ ऊँ नमः वामकर्णे । ॐ ऋँ नमः दक्षिणनासपुटे । ॐ ॠँ नमः वामनासपुटे ।लृँ नमः दक्षिणकपोले । ॐ लॄँ नमः वालकपोले । ॐ एँ नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । ॐ ऐँ नमः अधोदन्तपौङ्क्तौ । ॐ ओं नमः उध्वोंष्टे ॐ औं नमः अधौष्टे ॐ अं नमः जिह्वामूले । ॐ अः नमः ग्रीवायाम् । ॐ कँ नमः दक्षिणबाहूमूले । ॐ खँ नमः दक्षिणकूर्परे । ॐ गँ नमः दक्षिणमणिबन्धे । ॐ घँ नमः दक्षिणकरांगुलिमूले । ॐ ङँ नमः दक्षिणकरांगुल्यग्रे । ॐ चँ नमः वामबाहूमूले । ॐ छँ नमः वामकूर्परे । ॐ जँ नमः वाममणिबन्धे । ॐ झँ नमः वामकरांगुलिमूले । ॐ ञँ नमः वामकरांगुल्यग्रे । ॐ टँ नमः दक्षिणपादमूले । ॐ ठँ नमः दक्षिणजानुनि । ॐ डँ नमः दक्षिणगुल्फे । ॐ ढँ नमः दक्षिणपादांगुलिमूले । ॐ णँ नमः दक्षिण पादांगुल्यग्रे । ॐ तँ नमः वामपादमूले । ॐ थँ नमः वामजानुनि । ॐ दँ नमः वामगुल्फे । ॐ धँ नमः वामपादांगुलिमूले । ॐ नँ नमः वाम पादांगुल्यग्रे । ॐ पँ नमः दक्षिणकुक्षौ । ॐ फँ नमः वामकुक्षौ । ॐ बँ नमः पृष्ठे । ॐ भँ नमः नाभौ । ॐ मँ नमः उदरे । ॐ यँ त्वगात्मने नमः हृदि । ॐ रँ असृगात्मने नमः दक्षिणांशे । ॐ लँ मासात्मने नमः ककुदि । ॐ वँ मेदात्मने नमः वामांशे । ॐ शँ अस्थ्यात्मने नमः हृदयादिदक्षिणहस्तान्तम् । ॐ षँ मज्जात्मने नमः हृदयादिवामहस्तान्तम् । ॐ सँ शुक्रात्मने नमः हृदयादिदक्षिणपादान्तम् । ॐ हँ प्राणात्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम् । ॐ ळँ शक्त्यात्मने नमः उदरे । ॐ क्षँ परमात्मने नमः मुखे । ध्यानम् - पञ्चाशद्वर्णभेदै र्विहितवदनदोः पादहृत्कुक्षिवक्षोदेशां भास्वत्कपर्दाँ कलितशशिकला मिन्दुकुन्दावदाताम् । अक्षस्त्रक्कुम्भचिन्ता लिखितवरकरां त्रीक्षणांपद्मसंस्था मच्छाकल्पाम तुच्छस्तनजघन भरां भारतीं तां नमामि ।।

भूतलिपिन्यास - भूतलिपिः शारदातिलके यथा - इस भूतलिपि में नववर्ग तथा ४२ अक्षर होते हैं - इसका विवरण इस प्रकार है - पाँच ह्रस्व (अ इ उ ऋ लृ) यह प्रथम वर्ग,

पञ्च सन्धि वर्ण (ए ऐ ओं औ) चार द्वितीयवर्ग, (ह य र व ल) यह तृतीय वर्ग (ङ क ख घ ग) यह चतुर्थ वर्ग इसी प्रकार (ञ च छ झ ज) यह पञ्चम वर्ग ण (ट ठ ढ ण) यह षष्ठ वर्ग (न त थ ध द) यह सप्तम वर्ग, (म प फ भ ब) यह अष्टमवर्ग वान्त (श) श्वेत (ष) इन्द्र (स) यह नवमवर्ग है ।

विनियोग - अस्या भूतलिपेर्दक्षिणामूर्तिऋषिः गायत्रीच्छन्दः वर्णेश्वरदेवता आत्मनो अभीष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः । भूतलिपि - अं इं उं ऋं लृं ऐं ऐं ओं औं हं यं रं वं लं ङं कं खं घं गं ञं चं छं झं जं णं टं ठं डं नं तं थं धं दं मं पं फं भं बं शं षं सं ।
षडङ्गन्यास - १. हं यं रं वं लं हृदयाय नमः, २. ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा
३. चं छं झं जं शिखायै वषट्, ४. णं टं ठं ढं कवचाय हुम्
५. नं तं थं धं दं नेत्रत्रयात् वौषट् ६. मं पं फं बं अस्त्राय फट् ।
वर्णन्यास - ॐ अं नमः गुदे, ॐ इं नमः लिङ्गे
ॐ उं नमः नाभौ ॐ ऋं नमः हृदि, ॐ लृं नमः कण्ठे
ॐ ऐं नमः भ्रूमघ्ये, ॐ ऐं नमः ललाटे ॐ ओं नमः शिरसि,
ॐ औं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ॐ हं नमः ऊर्ध्वमुखे, ॐ यं नमः पूर्वमुखे,
ॐ रं नमः दक्षिणमुखे, ॐ वं नमः उत्तरमुखे, ॐ लं नमः पश्चितामुखे,
ॐ ङं नमः हस्त्राग्रे ॐ कं नमः दक्षहस्तमूले, ॐ खं नमः दक्षकूपरे,
ॐ घं नमः हस्ताङ्लिसन्धी, ॐ गं नमः दक्षमणिबन्धे,
ॐ ञं नमः वामहस्ताग्रे, ॐ चं नमः वामहस्तमूले
ॐ छं नमः दक्षकूर्परे ॐ झं नमः वामहस्ताङ्गुलि सन्धौ,
ॐ जं नमः वाममणिबन्धे ॐ णं नमः दक्षपादाग्रे,
ॐ टं नमः दक्षपादमूले ॐ ठं नमः दक्षिणजानौ
ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिसन्धौ, ॐ डं नमः दक्षिणपादगुल्फे,
ॐ नं नमः वामपादाग्रे, ॐ तं नमः वामपादागुल्फे,
ॐ थं नमः वामजानौ, ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिसन्धौ,
ॐ दं नमः वामगुल्फे, ॐ मं नमः उदरे
ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे ॐ फं नमः वामपार्श्वे,
ॐ भं नमः नाभौं ॐ बं नमः पृष्ठे,
ॐ शं नमः गुह्ये, ॐ षं नमः हृदि, ॐ सं नमः भ्रूमध्ये ।
ध्यानम् - अक्षरस्त्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं,विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां, वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम् ॥

कभी मंत्र के छन्द-ऋष्यादि न मिले तो, निम्नोक्त न्यास करनेसे दोष नहीं रहता ।
छन्दःपुरूषन्यासः सर्वानिक्रमसूत्रविहितच्छन्दःपुरूषन्यासः ।।
ॐ तिर्यग्बिलाय चमसाय ऊर्ध्वबुध्नाय छन्दःपुरूषाय नमःमुखे।

ॐ गौतमभरद्वाजाभ्यां नमः नेत्रयोः।
ॐ विश्वामित्रजमदग्निभ्यां नमः श्रोत्रयोः।
ॐ वसिष्ठकश्यपाभ्यां नमः नासपुटयोः।
ॐ अत्रये नमः वाचि।
ॐ गायत्र्याग्निभ्यो नमः शिरसि ।
ॐ उष्णक्सवितृभ्यां नमः ग्रीवायाम् ।
ॐ बृहतीबृहस्पतिभ्यां नमः हनौ ।
ॐ बृहद्रथन्तरद्यावापृथिवीभ्यां नमः बाह्वोः।
ॐ त्रिष्टुबिद्राभ्यां नमः नाभौ ।
ॐ जगत्यादित्याभ्यां नमः श्रोण्योः।
ॐ अतिच्छन्दाप्रजापतिभ्यां नमः लिंगे ।
ॐ यज्ञायज्ञियवैश्वानराभ्यां नमः गुदे ।
ॐ अनुष्टुब्विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ऊर्वोः।
ॐ पंक्तिमरूद्भ्यो नमः जान्वोः।
ॐ द्वपदाविष्णुभ्यां नमः पादयोः।
ॐ विछन्दावायुभ्यां नमः नासपुचस्थप्राणेषु ।
ॐ न्यूनाक्षराछन्दोभ्यो नमः सर्वांगेषु ।

देवतत्त्वन्यास - ॐ प्रजनने ब्रह्मा तिष्ठतु । ॐ पादयोर्विष्णुस्तिष्ठतु । ॐ हस्तयोर्हरिस्तिष्ठतु । ॐ बाह्वोरिन्द्रस्तिष्ठतु । ॐ जठरे अग्निः तिष्ठतु । ॐ हृदये शिवस्तिष्ठतु । ॐ कण्ठे वसवस्तिष्ठतु । ॐ वक्त्रे सरस्वतिस्तिष्ठतु । ॐ नासिकयोर्वायुस्तिष्ठतु । ॐ नयनयोश्चन्द्रादित्यौ तिष्ठेताम् । ॐ कर्णयोरश्विनौ तिष्ठेताम् । ॐ ललाटे रूद्रस्तिष्ठतु । ॐ मूर्ध्न्यादित्यास्तिष्न्तु । ॐ शिरसि महादेवस्तिष्ठतु । ॐ शिखायां वामदेवस्तिष्ठतु । ॐ पृष्ठे पिनाकी तिष्ठतु । ॐ पुरतः शूली तिष्ठतु । ॐ पार्श्वयोः शिवाशंकरौ तिष्ठेताम् । ॐ सर्वतो वायुस्तिष्ठतु । ततो बहिः सर्वतो अग्निर्ज्वालामाला परिवृतस्तिष्ठतु । ॐ सर्वांगेषु सर्वाःदेवताः यथास्थानं तिष्ठन्तु मां रक्षन्तु ।।

इससे आगे अपने इष्ट मन्त्र का विनियोग, न्यास, देवता का ध्यान, पूजा करके ही विधिवत् जप करना चाहिए (स्वकीयाम्नायानुरेण) ।

इस पुस्तक का अर्थमूल्य न रखनेका मूख्य उद्देश्य यह है कि, यह विद्वानोंके लिए प्रकाशित कर रहे है, जिनके माघ्यम से यह ज्ञान एवं विचारधारा जनसामान्य तक प्रसारित हो । विद्वद्वर्ग का इस ग्रंथ विषये प्रतिसाद प्रार्थनीय है ।

प्राप्ति व सम्पर्कसूत्र - ppp.sidhpur@gmail.com ।। हरि ॐ तत्सत् ।।

परिशिष्ट - वेद-तंत्र-स्मृति-पुराण एक परिचय

वैदिकस्तांत्रिको मिश्र त्रविधो मख उच्यते - कर्मकाण्ड का आधार वेद-तंत्र एवं दोनों के मिश्र स्वरूप है । वेद निगम और तंत्र आगम के अंतर्गत आ गये। वेदों के कर्म, उपासना और ज्ञान के तीन विषय प्रसिद्ध हैं, किंतु इनमें यह विषय संक्षिप्त और गुँथे हुए रूप में वर्णित हैं।

तंत्रशास्त्र - तंत्र शास्त्र चार भागों में विभक्त है । १ आगम २ यामल ३ डामर ४ तंत्र ।

आगम ग्रंथो के अनुसार शिव जी पंचवक्त्र हैं, अर्थात इन के पांच मस्तक हैं, १. ईशान २. तत्पुरुष ३. सद्योजात ४. वामदेव ५. अघोर। शिव जी के प्रत्येक मस्तक, भिन्न भिन्न प्रकार के शक्तिओ के प्रतिक हैं; क्रमशः सिद्धि, आनंद, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया हैं।

भगवान शिव मुख्यतः तीन अवतारों में अपने आप को प्रकट करते हैं १. शिव २. रुद्र तथा ३. भैरव, इन्हीं के अनुसार वे ३ श्रेणिओ के आगमों को प्रस्तुत करते हैं १. शैवागम २. रुद्रागम ३. भैरवागम । प्रत्येक आगम की श्रेणी स्वरूप तथा गुण के अनुसार हैं।

शिवागम : भगवान शिव ने अपने ज्ञान को १० भागों में विभक्त कर दिया तथा उन से सम्बंधित १० अगम शिवागम नाम से जाने जाते हैं। तंत्र के शाक्त शाखा के अनुसार; ६४ तंत्र और यमल, डामर और संहिताये हैं।

आगम ग्रंथो का सम्बन्ध वैष्णव संप्रदाय से भी हैं, वैष्णव आगम, दो भागों में विभक्त हैं प्रथम बैखानक तथा दूसरा पंचरात्र तथा संहिता। बैखानक एक ऋषि का नाम हैं और उसके नौ शिष्य १ कश्यप २ अत्री ३ मरीचि ४ वशिष्ठ ५ अंगिरा ६ भृगु ७ पुलत्स्य ८ पुलह ९ क्रतु ये बैखानक आगम के प्रवर्तक थे। वैष्णवो कि पञ्च क्रियाओं के अनुसार पंचरात्र आगम रचे गए हैं। वैष्णव संप्रदाय द्वारा भगवान विष्णु से सम्बंधित नाना प्रकार की धार्मिक क्रियायों, कर्म जो पाँच रात्रि में पूर्ण होते हैं, का वर्णन वैष्णव आगम ग्रंथो में समाहित हैं। १ ब्रह्मारात्र २ शिवरात्र ३ इंद्ररात्र ४ नागरात्र ५ ऋषिरात्र, वैष्णव आगम के अंतर्गत आते हैं । सनत कुमार, नारद, मार्कण्डये, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अनिरुध, ईश्वर तथा भरद्वाज मुनि, वैष्णव आगमो के प्रवर्तक थे।

यामल : साधारणतः यमल का अभिप्राय संधि से हैं तथा शास्त्रों के अंतर्गत ये दो देवताओं के वार्तालाप पर आधारित हैं। जैसे, भैरव संग भैरवी, शिव संग ब्रह्मा, नारद संग महादेव इत्यादि के प्रश्न तथा उत्तर पर आधारित संवाद, यामल कहलाता हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार शिव तथा शक्ति एक ही हैं, इनके एक दूसरे से प्रश्न करना तथा उत्तर देना भी यामलो की श्रेणी में आता हैं।

यामिनी-विहितानी कर्माणि समाश्रीयन्ते तत् तन्त्रं नाम यामलम्।

डामर : डामर ग्रन्थ, केवल भगवान शिव द्वारा ही प्रतिपादित हुऐ हैं। डामरो की संख्या ६ हैं, १. योग २. शिव ३. दुर्गा ४. सरस्वती ५. ब्रह्मा ६. गंधर्व।

तंत्र : तांत्रिक ग्रन्थ देवी पार्वती तथा शिव के वार्तालाप के परिणाम स्वरूप प्रतिपादित हुए हैं। पार्वती द्वारा कहा गया तथा शिव जी द्वारा सुना गया, निगम ग्रन्थ तथा शिव द्वारा बोला गया तथा पार्वती द्वारा सुना गया, आगम ग्रंथो के श्रेणी में आता हैं। तथा इन सभी ग्रन्थ तंत्र, रहस्य, अर्णव इत्यादि नाम से जाने जाते हैं। तंत्रो, मुख्यतः शिव तथा शक्ति से सम्बंधित हैं, इन्हीं से अधिकतर तंत्र ग्रंथो की उत्पत्ति हुई ।

तंत्र पद्धति में, शैव, शाक्त, वैष्णव, पाशुपत, गणापत्य, लकुलीश, बौद्ध, जैन इत्यादि सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता हैं तथा शैव तथा शाक्त तंत्र ही जन सामान्य में प्रचलित हैं। ये दोनों तंत्र मूल रूप से एक ही हैं केवल मात्र नाम ही भिन्न हैं, ज्ञान भाव शैव तंत्र का मुख्य उद्देश्य हैं वही क्रिया का वास्तविक निरूपण शाक्त तंत्रों में होता हैं। शैवागम या शैव तंत्र भेद, भेदाभेद तथा अभेद्वाद के स्वरूप में तीन भागों में विभक्त हैं। भेद-वादी शैवागम शैव सिद्धांत के नाम जन सामान्य में जाने जाते हैं, वीर-शैव को भेदाभेद नाम से तथा अभेद्वाद को शिवाद्वयवाद नाम से जाने जाते हैं। शिव सूत्रों का उद्भव स्थल, हिमालय कश्मीर में हुआ हैं।

वेद - वेदो नारायण: साक्षात् । वेद स्वयं नारायण का स्वरूप है । जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । परमात्मा के निश्वास से उनका प्रागट्य मानते है ।

कहा जाता है कि वेद पहले एक ही था, भगवान वेदव्यास ने वेद को चार भागों में विभक्त कर दिया था, जिसके कारण उनका नाम **वेदव्यास** पड़ा और वेद ने ऋक्, यजु:, साम एवं अथर्व के रूप में चार स्वरूप धारण किया। महाभारत में इसे इस प्रकार बताया गया है–'जिन्होंने निज तप के बल से वेद का चार भागों में विस्तार कर लोक में 'व्यास' की संज्ञा पायी और शरीर के कृष्ण वर्ण होने के कारण कृष्ण कहलाए।' उन्होंने वेद को चार भाग में विभक्त कर अपने चार प्रमुख शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन कराया। **वेदव्यासजी ने पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद का सर्वप्रथम अध्ययन कराया था**। महाभारत-युद्ध के पश्चात् वेदव्यासजी ने तीन वर्ष के परिश्रम के बाद पंचम वेद महाभारत की रचना की जिसे उन्होंने अपने पांचवे शिष्य लोमहर्षण को पढ़ाया था। उन ऋषियों ने भी अपने-अपने शिष्यों को वेद पढ़ाकर गुरु-शिष्य परम्परा से वेदज्ञान को फैलाया है।

चार वेद - ऋग्वेद में स्तुति, यजुर्वेद में यज्ञ, सामवेद में संगीत तथा अथर्ववेद में आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, राष्ट्रीयप्रेम का चिन्तन मिलता है। जिसमें नियताक्षर वाले मन्त्रों की ऋचाएं हैं, वह ऋग्वेद कहलाता है। जिसमें स्वरों सहित गाने में आने वाले मन्त्र हैं, वह 'सामवेद' कहलाता है। जिसमें अनियताक्षर वाले मन्त्र हैं, वह यजुर्वेद कहलाता है। जिसमें अस्त्र-शस्त्र, भवन-निर्माण आदि लौकिक विद्याओं का वर्णन करने वाले मन्त्र हैं, उसे अथर्ववेद कहते है।

इन वेदों के चार उपवेद हैं – ऋग्वेद का उपवेद स्थापत्यवेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद के कर्ता धन्वन्तरि, धनुर्वेद के कर्ता विश्वामित्र, गान्धर्ववेद के कर्ता नारदमुनि और स्थापत्यवेद के कर्ता विश्वकर्मा हैं।

वेद गद्य, पद्य और गीति के रूप में विद्यमान हैं। ऋग्वेद पद्य में, यजुर्वेद गद्य में और सामवेद गीति (गान) रूप में है। वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड विशेष रूप से होने के कारण इनको 'वेदत्रयी' या 'त्रयीविद्या' के नाम से भी जाना जाता है। वेद में एक लाख मन्त्र हैं। अस्सी हजार मन्त्र केवल कर्मकाण्ड का व सोलह हजार मन्त्र ज्ञान का निरुपण करते हैं। केवल चार हजार मन्त्र उपासनाकाण्ड के हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त सोलह प्रकार के संस्कारों का भी वेद निरुपण करता है। आरम्भ में शिष्यगण गुरुमुख से सुन-सुनकर वेदों का पाठ किया करते थे, इसलिए वेदों का एक नाम 'श्रुति' भी है। 'श्रुति' माने 'सुना हुआ ज्ञान'। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने समाधि में जो महाज्ञान प्राप्त किया और जिसे जगत के कल्याण के लिए प्रकट किया, उस महाज्ञान को श्रुति कहते हैं। आज भी गुरुमुख से श्रवण किए बिना केवल पुस्तक के आधार पर ही मन्त्राभ्यास करना निष्फल माना जाता है।

वेदों की शाखाएं - कूर्मपुराण में बताया गया है कि ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएं, यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाएं, सामवेद की एक हजार एक शाखाएं और अथर्ववेद की नौ शाखाएं हैं। कुल ११३१ शाखाओं में से केवल १२ शाखाएं ही मूलग्रन्थ में उपलब्ध हैं। इन शाखाओं का अधिकांश भाग लुप्त है ।

इन शाखाओं की वैदिक शब्दराशि चार भागों में प्राप्त है - १ संहिता–इसमें वेद के मन्त्र हैं, २ ब्राह्मण–इसमें यज्ञ-अनुष्ठान की पद्धति और उनके फलप्राप्ति का वर्णन है, ३ आरण्यक–वानप्रस्थ आश्रम में अरण्य (जंगल) में इसका अध्ययन कर मनुष्य को आध्यात्मिक बोध कराने की विधि का निरुपण है इसलिए इसे 'आरण्यक' कहते हैं। वास्तव में इनका आरण्यक नाम इसीलिए पड़ा कि ये ग्रन्थ अरण्य (वन) में ही पढ़ने योग्य हैं; गांवों और नगरों के कोलाहलयुक्त स्थान में नहीं। गहन वन में ब्रह्मचर्य-व्रत धारणकर जिस ब्रह्मविद्या का ऋषिगण पाठन करते थे, वही ग्रन्थ आरण्यक के नाम से प्रसिद्ध हुए। ४ उपनिषद्–इसमें अध्यात्म चिन्तन की प्रधानता है।

वेद के प्राचीन विभाग मुख्य रूप से दो ही हैं – मन्त्र और ब्राह्मण। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मण के अन्तर्गत आ जाते हैं। वेदों की अति विशालता, गहनता को ध्यान में रखकर मनु, गौतम, याज्ञवल्क्य और पाराशर आदि ऋषि-मुनियों ने धर्म की व्याख्या करने वाले जिन ग्रन्थों की रचना की उन्हें **स्मृति** कहते हैं । स्मृतिया १०८ है ।

पुराण धर्म संबंधी आख्यान ग्रंथ हैं। पुराण का शाब्दिक अर्थ है, प्राचीन या पुराना। इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थ मुपबर्हयेत् अर्थात् वेद का अर्थविस्तार पुराण के द्वारा करना चाहिये। इनसे यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में पुराण तथा इतिहास को समान माना है। पुराण के पांच लक्षण है। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥१ सर्ग– पंचमहाभूत, इंद्रियगण, बुद्धि आदि तत्त्वों की उत्पत्ति का वर्णन,२ प्रतिसर्ग– ब्रह्मादिस्थावरांत संपूर्ण चराचर जगत् के निर्माण का वर्णन, ३ वंश– सूर्यचंद्रादि वंशों का वर्णन, ४ मन्वन्तर– मनु, मनुपुत्र, देव, सप्तर्षि, इंद्र और भगवान् के अवतारों का वर्णन,५ वंशानुचरित–प्रति वंश के प्रसिद्ध पुरुषों का वर्णन। पुराण अठारह हैं। मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्। अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

म-२, भ-२, ब्र-३, व-४ । अ-१,ना-१, प-१, लिं-१, ग-१, कू-१, स्क-१ ॥ विष्णु पुराण के अनुसार उनके नाम ये हैं - विष्णु, पद्म, ब्रह्म, वायु(शिव), भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्मांड और भविष्य।

पुराणों मे ब्रह्मा,वुष्णु,शिव का प्रधान वर्णन निम्नानुसार है।

विष्णु पुराण	ब्रह्मा पुराण	शिव पुराण
भागवत पुराण	ब्रह्माण्ड पुराण	लिङ्ग पुराण
नारद पुराण	ब्रह्म वैवर्त पुराण	स्कन्द पुराण
गरुड़ पुराण	मार्कण्डेय पुराण	अग्नि पुराण
पद्म पुराण	भविष्य पुराण	मत्स्य पुराण
वराह पुराण	वामन पुराण	कूर्म पुराण

उपपुराण की संख्या २२ है। श्रीमद्देवी भागवत मे शक्ति-देवी के अवतारों का वर्णन है, वैसे ही गणेशपुराण में गणेश इत्यादि। वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृति, गीता को शास्त्रप्रमाण ग्रंथ मानते है।

श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषदों को मिलाकर प्रस्थानत्रयी कहा जाता इसमें उपनिषदों को श्रुति प्रस्थान, गीता को स्मृति प्रस्थान और ब्रह्मसूत्रों को न्याय प्रस्थान कहते हैं। ब्रह्म सूत्रों को न्याय प्रस्थान कहने का अर्थ है कि ये वेदान्त को पूर्णतः न्याय व तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है। ये मोक्षमार्ग की प्रशस्ती कराते है।

।। हरि ॐ तत्सत् ।।

उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम पूरे भारत वर्ष में सत्यनारायण की कथा एक ऐसा व्रत है जो सर्वत्र प्रचलित है। व्रत की कथा स्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्ड मे आती है।

कथा में कई स्थान पर शंका होती है, जैसे कि भगवान को नारदजी को क्यों पूछना पडा कि **किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते** - यहां भगवान के अन्तर्यामित्व पर प्रश्न उठता है, तो कहीं पर लिखा है **भष्टप्रतिज्ञामालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान्** एवं **मा रोदीः शृणु मद्वाक्यं मम पूजा बहिर्मुखः** भगवान क्या हमारी पूजा के अपेक्षित है, ऐसे तो, उनके निजकामत्व-आप्तकामत्व पर संदेह होता है। आगे भी शत पुत्रों का होना एवं शत पूत्रों का नष्ट होना, नांव का अदृश्य होना, कथा के अन्तर्गत पात्रोंने कौनसा चरित्र सूना होगा।

एक प्रसिद्ध वक्ताने तो, अपनी सभामें कहां कि, मैने हमारे पण्डितजी को पूछा कि क्या ये कथा सत्य है, साधु-वणिक ने कौनसी कथा सुनी थी, चन्द्रचूड ने कौनसी कथा सूनी थी और पण्डितजी निरूत्तर रहे। ऐसे बहुश्रुत वक्ताओं को (जिस के पास शास्त्र-पुराण समझने की प्रज्ञा का अभाव हो) योग्य प्रत्युत्तर मिलना चाहिए।

पुराण के कर्ता भगवान वेदव्यास जी है, जो भगवान के ज्ञानावतार है। कहा जाता है कि, **व्योसोच्छिष्टं जगत्सर्वम्** भगवान वेदव्यासजी ने कोई विषय नहीं छोडा है, कोई भी शास्त्र या विद्या उनसे अछूती नही है। उनका एक एक अक्षर मन्त्र है, उनका प्रत्येक वाक्य सिद्धान्त है। तो फिर ऐसी शंका होनेका कारण क्या है।

सत्यनारायण कथा इस से पूर्व हिन्दी एवं गुजराती में प्रकाशित हुई है। उक्त पुस्तक में प.पू. जगद्गुरू श्री जयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज, कांची से दो पत्र, प.पू. प्रमुख स्वामिजी महाराज का गुजराती एवं हिन्दी में पत्र, प.पू.श्री कृष्णशंकर शास्त्रीजी जैसे अनेक महानुभावों के आशिर्वाद प्राप्त हुए है, जो मेरे लिए सद्भाग्य की बात है। यही मेरा प्रेरणास्रोत भी है। अब संशोधन के साथ तृतीयावृत्ति हिन्दी भाषा में प्रकाशनार्थ तैयार है। अर्थव्यवस्था होते ही शीघ्र विद्वज्जनों के करकमलों में समर्पित करूंगा। मेरा यह निर्णय है कि मैं, जो भी लिखुं - विद्वानों के लिए लिखु, इसलिए सारी पुस्तकों की प्रतें कम रहती है एवं निःशुल्क रहती है।

ब्रह्मानन्द-रसानुभूति-कलितैः पूतैः सुशीतैः सितैः
युष्मद्वाक्कलशोज्झितैः श्रुतिसुखैः वाक्यामृतैः सेचय ।
संतप्तं भवतापदावदहन-ज्वालाभिरेनं प्रभो
धन्यास्ते भवदीक्षण- क्षणगतेः पात्रीकृताः स्वीकृताः ॥

श्री मद्गुरू चरणरेणु... परन्तप प्रेमशंकर पण्डित.....
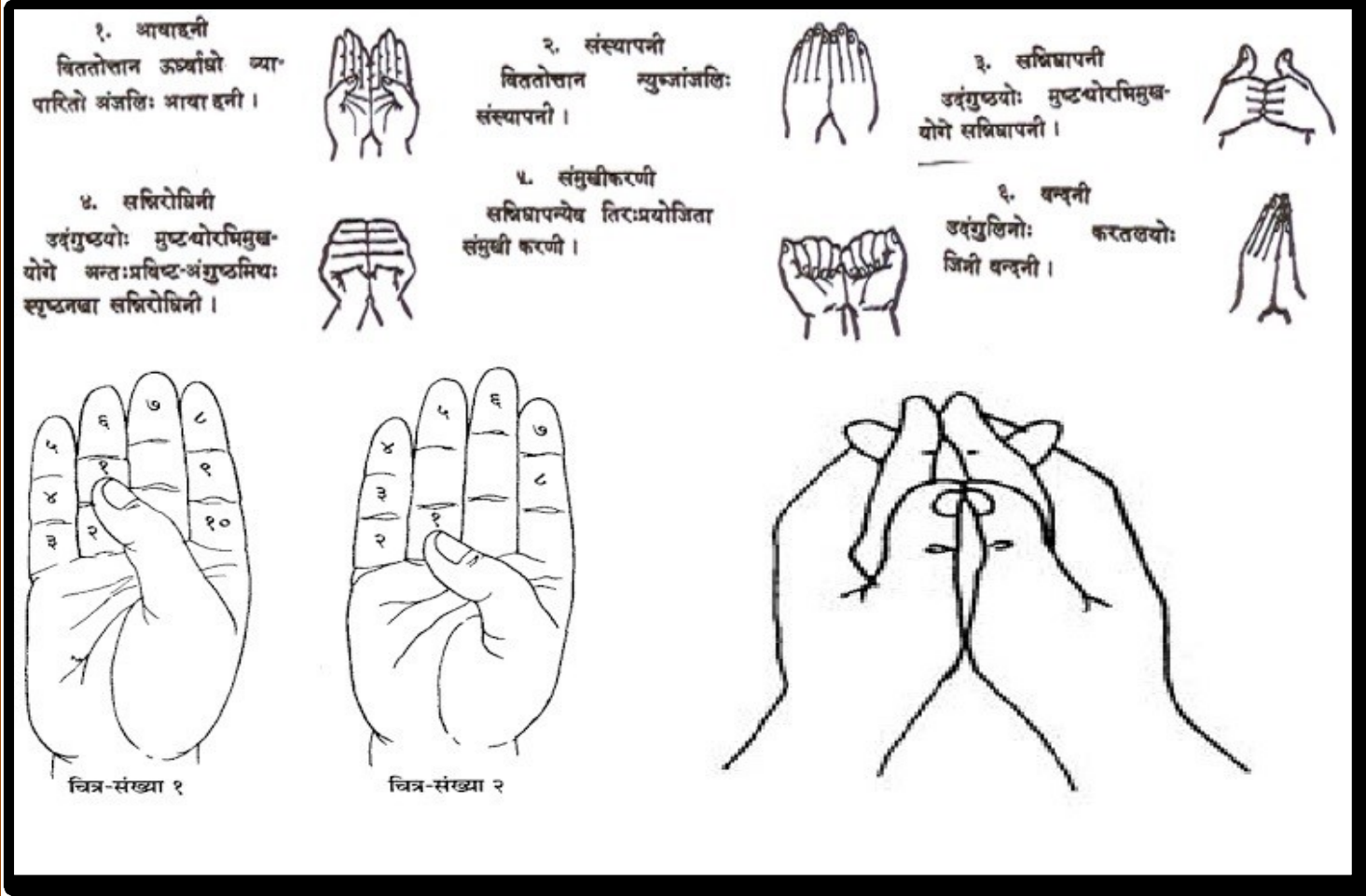
अन्य प्रकाशित पुस्तके....

१. सन्ध्या-गायत्री-षडकर्म......	गुजराती
२. यज्ञोपवित महत्त्व.............	गुजराती
३. ब्राह्मण एवं वर्णाश्रम.........	गुजराती
४. मूर्तिपूजा नी शास्त्रीयता.......	गुजराती
५. शास्त्रपर आक्रमण...........	गुजराती
६. सत्यनारायण कथायां सत्यदर्शनम्	गुजराती – हिन्दी
७. यज्ञ परिचय एवं बलिदान आवश्यकता	गुजराती
८. बंदउ गुरूपद परम...........	हिन्दी
९. मन्त्र शक्ति एवं उपासना रहस्य	हिन्दी
१०.सत्यनारायण कथा-शंका समाधान	अप्रकाशित

इस पुस्त के कुछ अंश... स्वल्पोपि दीप कणिका बहुलं नाशयेत्तमः एक छोटे से दिपक से बहोत सारा अन्धकार दूर होता है, प्राप्य पदार्थ दिखने लगता है - ऐसा ही यह एक छोटा सा प्रयास है ....

परमात्मा भले ही अनादि अनन्त हो - काल के प्रत्येक क्षण में एवं ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में उनकी सत्ता विलसित है और तभी तो वह पूर्ण है, इतना ज्ञात होते ही, परमात्मा का परिचय करने की हिंमत आ जाती है ..... एकेनविज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति - एक के ज्ञान से सबका ज्ञान, जैसे कोई बडे पात्र में चावल पकाते हैं, तो मात्र दो-चार चावल के दाने पात्र से निकालकर,उन्हें दबाकर निश्चय कर लेते है कि, चावल पके है या नहीं । अंश के ज्ञान से अंशी के ज्ञान का परिचय पाना दुष्कर भले ही हो, असम्भव नहीं है ......

जीव मात्र के जीवन का आधार मन्त्र है और यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि, मन्त्र के बीना जीवन ही असंभव है ..... हकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः । अजपानाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा । ध्यान से सुनेंगे तो साँस के प्रवेश समय सकार एवं निश्वास के समय हकार ध्वनि स्वतः स्वरित होता है, भले ही हम जाग्रत हो या स्वप्नाधीन या सुषुप्त अजपा जप, बिना यत्न या ज्ञान आजीवन चलता ही रहता है..

बीजभावेस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी (यो.हृ.तंत्र), ध्वनिरूपा यदा स्फोटस्त्व दृष्टाच्छिवविग्रहात् । प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनापूरयन्जगत् । ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का मूल स्रोत ध्यनि है । अर्वाचीन विज्ञान भी अब मानने लगा है । Everything in Life is Vibration – Albert Einstein. Earth is cause of high vibrations.......

एक सुन्दर उदाहरण देते हैं, जिस प्रकार इलेक्ट्रिक मोटर में विद्युत सप्लाय देने से, उसमें गति आती है, इससे विपरित इसी मोटर का आर्मेचर बनाके गति देने से पुनः विद्युत उत्पन्न होती है । तप माध्यम है - परमात्मा से सृष्टि एवं सृष्टि में पुनः ब्रह्मानुभूति का....

फिजियोथेरोफिस्ट से पास जाते है और उनके आदेशानुसार अंगों को मोडते है, यहि है समर्पित होना । बस, वैसे ही भवरोग निवृत्यर्थ गुरू को भी समर्पित होना पडता है । निष्ठा एवं दृढ श्रद्धा से सब प्राप्य है .....

आजकल प्रायः किसी की बर्थडे पार्टी, मेरेज एनिवर्सरि, लग्न, वास्तु, रिसेप्शन में रिटर्न गिफ्ट देते हैं । परमात्माने एक दिनकी १४४० मिनिट का हमे आयुष्य दिया, जब कई लोगों की मृत्यु हूई होगी, क्या हम भी हमे प्राप्त मिनिटों में से कुछ रिटर्न गिफ्ट पुनः परमात्मा को नहीं दे सकते ? शिवशक्त्यात्मरूपास्तु नित्यानुग्रहशालिनः - अतः मंत्र शिवशक्ति का